नाम – शान्ति सुमन

शिक्षा एवं वृत्ति – एम० ए०, पी-एच० डी०, पूर्व अध्यक्ष, हि० वि० म० द० दा० महिला कॉलेज, मुजफ्फरपुर (बी० आर० ए०, बिहार वि० वि०)।

प्रकाशित कृतियाँ – <u>गीत–संग्रह</u> – ओ प्रतीक्षित - '70, परछाई टूटती - '78, सुलगते पसीने - '79, पसीने के रिश्ते - '80, मौसम हुआ कबीर - '85, तप रहे कँचनार - '97, भीतर भीतर आग - '02, पंख-पंख आसमान - '04 (चुने हुये एक सौ एक गीतों का संग्रह), एक सूर्य रोटी पर - '06, धूप रँगे दिन - '07, मेघ इन्द्रनील - '91, (मैथिली गीतों का संग्रह), नागकेसर हवा - '11

<u>कविता–संग्रह</u> – समय चेतावनी नहीं देता - '94,
सूखती नहीं वह नदी - '09,

<u>उपन्यास</u> – जल झुका हिरन - '76

<u>आलोचना</u> – मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य -'93

सम्पादन – 'सर्जना', 'अन्यथा' (मुजफ्फरपुर), 'भारतीय साहित्य', 'कन्टेम्परेरी इन्डियन लिटरेचर' (दिल्ली), 'बीज' (पटना), देश-विदेश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में रचनायें प्रकाशित। देश के विभिन्न आकाशवाणी एवं दूरदर्शन केन्द्रों से गीतों की रिकार्डिंग एवं प्रसारण। गणतंत्र की पूर्व संध्या पर सर्वभाषा कवि सम्मेलन (दिल्ली) में तमिल कविता का हिन्दी में अनुवाद-पाठ और 2012 में गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर कलकत्ता में संस्कृत कविता का छंदबद्ध अनुवाद।

सम्मान एवं पुरस्कार – बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना से साहित्य सेवा सम्मान से सम्मानित एवं पुरस्कृत। हि०सा०स० प्रयाग से कविरत्न सम्मान, बिहार सरकार के राजभाषा विभाग से महादेवी वर्मा सम्मान से सम्मानित एवं पुरस्कृत। हि० शा० स० प्रयाग से साहित्य भारती एवं उ० प्र० हिन्दी संस्थान से सौहार्द सम्मान से सम्मानित एवं पुरस्कृत। इनके अतिरिक्त अनेक सम्मान एवं पुरस्कार।

सम्पर्क – 36 ऑफीसर्स फ्लैट्स, जुबली रोड, नार्दर्न टाउन, जमशेदपुर–831001

शान्ति सुमन की गीत-रचना : सौन्दर्य और शिल्प

सम्पादक - चेतना वर्मा

शान्ति सुमन की गीत-रचना : सौन्दर्य और शिल्प

संपादक - चेतना वर्मा

शान्ति सुमन की गीत-रचना : सौन्दर्य और शिल्प

संपादक
डॉ० चेतना वर्मा

शान्ति सुमन की गीत-रचना : सौन्दर्य और शिल्प

संपादक

डॉ० चेतना वर्मा

प्रकाशक

ईशान प्रकाशन

मीठनपुरा, क्लब रोड, रमना

मुजफ्फरपुर – 842002 (बिहार)

शान्ति सुमन की गीत-रचना : सौन्दर्य और शिल्प

संपादक डॉ० चेतना वर्मा

प्रकाशक ईशान प्रकाशन
मीठनपुरा, क्लब रोड, रमना,
मुजफ्फरपुर - 842002 (बिहार)

प्रथम संस्करण 2012

मुद्रक शिक्षा भारती मुद्रणालय
1/27, काशीडीह
जमशेदपुर - 831001

मूल्य पाँच सौ रुपये

SHANTI SUMAN KI GEET RACHNA :
SAUNDRAYA AUR SHILP
(Edited by Dr. Chetna Verma)

Rs. 500/-

सम्पादकीय

हिन्दी नवगीत की संरचना में जिन बड़े रचनाकारों ने अपने सक्रिय शब्दों को जोड़ने का काम किया, उनमें शान्ति सुमन का नाम भी जुड़ा हुआ है। इनका पहला नवगीत-संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' 1970 में लहर प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित होकर आया था। उन दिनों ठाकुर प्रसाद सिंह का 'वंशी और मादल', राजेन्द्र प्रसाद सिंह का 'रात आँख मूँदकर जगी', चन्द्रदेव सिंह का 'पाँच जोड़ बाँसुरी', शम्भुनाथ सिंह का 'समय की शिला पर', उमाकान्त मालवीय का 'मेंहदी और महावर', रमेश रंजक का 'किरण के पाँव', ओम प्रभाकर का 'पुष्पचरित', बाल स्वरूप राही का भी एक नवगीत संग्रह - यही कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। तब नवगीत एक सुपरिणत रचना का रूप ले रहा था। फिर भी उन दिनों नवगीत लिखना बड़े जोखिम का काम था। कुछ लोग इसको आन्दोलन बताकर अन्य काव्यान्दोलनों की तरह ही हल्के रूप में ले रहे थे। कवितावादियों का साम्राज्य छाया हुआ था। इसीलिए उन दिनों अधिकांश रचनाकार कविताएँ लिखकर स्वयं को कविता-धारा से संलग्न कर रहे थे और अपने भविष्य को सुरक्षित भी समझ रहे थे। बहुत समर्पित भाव से जो गीत लिख रहे थे, गीत के प्रति जिनको आपार निष्ठा थी, वे अपनी अलग जमीन तलाश रहे थे और जोखिम के बावजूद गीत लिख रहे थे। उनके मन में गीतकी चिरन्तनता, उसकी सतत् प्रवाहमयता का विश्वास भरा था। उन्हीं गीतकारों के बीच असुरक्षित भविष्य की चुनौती लेकर उत्तर बिहार के एक छोटे (तब कस्बेनुमा) शहर मुजफ्फरपुर से शान्ति सुमन गीत के पक्ष में खड़ी हुईं और अपनी गहरी संवेदनशीलता के कारण आज तक गीत से उनका जुड़ाव बना हुआ है।

अपनी रचनाशीलता के आरंभिक कुछ वर्षों तक शान्ति सुमन केवल गीत ही लिख रही थीं। इसके प्रमाण में इनके ग्यारह गीत-संग्रह प्रकाशित हैं। बाद में उन्होंने गद्य में भी रचना की। 1976 में उनका एक उपन्यास 'जल झुका हिरन' प्रकाशित हुआ। उन्होंने अनेक पुस्तकों की समीक्षायें लिखीं। 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य' नाम से उनकी एक आलोचना की पुस्तक भी प्रकाशित है। पर इनकी केन्द्रीय विधा गीत ही है। इन्होंने कई बार कई अवसरों पर कहा है कि गीत को ही वे सहजता से लिख पाती हैं।

यह बात महत्वपूर्ण है कि शान्ति सुमन को जीवन में अधिकांश असहज स्थितियाँ ही जीने को मिली हैं। अब तो लगता है कि उनकी रचनाधर्मिता ने पैंतीस-चालीस वर्षों की यात्रा भी तय की है और गीत के धरातल पर अपने होने की खुशी भी उनको है। अपने जीवन-यथार्थ से जूझती हुई इन्होंने अपनी रचनाशीलता को बचाकर रखा है। इनको अभी भी लगता है कि उत्तर बिहार का वह छोटा नितान्त पिछड़ा और जीवन के असुविधाजनक यथार्थ से भरा अपना गाँव कासीमपुर ने उनको पर्याप्त रचनात्मक संभावनाएँ दीं। वैसी उर्वर रचनाशीलता के लिए उनका मन बार-बार गाँव लौटता रहा। उनकी स्मृति में आज भी गाँव अपनी जगह बनाये हुए है। प्रकृति और समस्त संवेदनशीलता के लिए गाँव कभी उनकी स्मृति से अनुपस्थित नहीं हुआ। समाजार्थिक त्रास और संतापों के लिये भी गाँव की स्थितियाँ उनपर प्रभावी रहीं। निम्नवर्गीय जीवन-यथार्थ, किसान-मजदूरों के दैनंदिन संघर्ष के साथ प्रेम के प्रसन्न क्षण भी उनको गाँव से ही मिले। किसान परिवार में जन्म लेनेवाली शान्ति सुमन को अपनी कोमल भावानुभूतियों के लिए वृक्ष-वनस्पतियों, पोखर-पान-मखान, चिड़िया, नदी - हरापन का पूरा साम्राज्य वहीं से मिला। दूसरी ओर अजस्र दाहक प्रसंग भी उनको वहीं सें मिले। अर्द्धसामंती, अर्द्ध पूँजीवादी उपभोक्ता संस्कृति के सारे प्रदूषण, गरीबी, भूख-शोषण, अन्याय भी शहर की अपेक्षा गाँव में ही अधिक देखने को मिले। उन विपर्ययों के बीच छोटी-छोटी खुशी, फसल की हरियाली से रंगा तन-मन, आत्मीय उल्लास और अभावों में भी जीवन विरुद्ध स्थितियों में भी उद्दाम जीवनेच्छा के कारण गाँव बहुत अपने लगे। शहर की जिन्दगी गाँव की जिन्दगी से भिन्न है। इसलिये यहाँ के दुख, शोषण और बाजारवादी त्रास भी अलग हैं। शहर में मजदूरों के घर में भी क्रीम-पावडर मिलने लगे हैं। गाँव में उनको पहुँचने में देर लगती है। उनके चेहरे पर सनस्क्रीम लोशन धूप ही लगाती है और छाया में बिना पावडर के ही उसके पसीने सूख जाते हैं। शान्ति सुमन बताती हैं कि उनके गाँवों में तब एक सीधा रास्ता तक नहीं था। खेत खाली हो या फसल लगी हो, लोग खेत से होकर ही पास के गाँव, रेलवे स्टेशन या हाट-बाजार करने के लिए सुपौल जाते थे। छोटी-छोटी दूकानोंवाला बाजार सुखपुर में भी था, पर आवश्यकता की सारी चीजें वहाँ नहीं मिलती थीं।

मेरा जन्म तो मुजफ्फरपुर में हुआ। मैं स्नातक प्रतिष्ठा की पढ़ाई करने दिल्ली गई। दुर्गापुर, चण्डीगढ़, जमशेदपुर सब जगह जाना-आना

रहा। सोचती हूँ कि शान्ति सुमन ने गाँव से उस छोटे कस्बानुमा (तब) शहर (मुजफ्फरपुर) में आकर जहाँ जीने की हजार असुविधायें थीं - कैसे अपनी पढ़ाई की, घर संभाला, बच्चों को रास्ता दिखाया, नौकरी की (वे मुजफ्फरपुर के अंगीभूत महन्त दर्शनदास महिला कॉलेज में प्राध्यापन करती थीं और हिन्दी विभागाध्यक्ष के पद से सेवामुक्त हुईं) और साथ ही रचनात्मक जीवन में भी पूरी तन्मयता से सक्रिय रहीं। तब मुजफ्फरपुर में बिजली दो-चार घंटे के लिये ही आती थी और रात के अँधेरे लालटेन से ही जाते थे।

शान्ति सुमन केवल गीत लिखती ही नहीं थीं, रचना-संबंधी सारी समस्याओं की भी समझदारी रखती थीं। गीत को अधिक माँजने में वे इसलिये भी बेचैन रहीं कि कवितावादियों ने गीतों पर प्रहार कर उसकी अस्मिता की अनदेखी शुरू कर दी थी। गीत को मजबूत बेहद मजबूत बनने की जरूरत थी। अन्य बड़े गीतकारों की तरह शान्ति सुमन ने भी अपना रचनात्मक भविष्य रचा और गीत के पक्ष में एक सशक्त दीवार की तरह खड़ी रहीं। गीतकर्त्री होने के अतिरिक्त वे एक सुपठित विदुषी स्त्री हैं। वे एक प्रांजल वक्ता भी हैं। पूरे देश में काव्य-मंचों से वे अपने गीतों का सस्वर पाठ करती रही हैं। गीत-संग्रहों, पत्र-पत्रिकाओं के साथ काव्य-मंचों से भी उन्होंने गीत को लोकप्रियता दी है और उसको जनता से जोड़ा है। वे नितान्त पिछड़े इलाकों में भी गीत सुनाने गई हैं और गरीब, निरीह, अपढ़ जनता ने उनके गीतों को पूरे मन से सुनकर उत्साह का अनुभव किया है और उनमें जीवन की इच्छा जगी है। इस तरह उन्होंने गीत को दूर-दूर तक पहुँचाने का काम किया है। शान्ति सुमन ने किसानों के बीच ही नहीं, खदानों के इलाकों में भी अपने गीतों का सुरीले स्वर में पाठ कर जनता का मन जीता है।

निश्चय ही, शान्ति सुमन पहले नवगीतकार थीं। समय के अनुसार उन्होंने अपने गीतों की जमीन बदलकर जनवादी गीतों की रचना की। नवगीत की तरह जनवादी गीत के बड़े रचनाकारों में भी वे एक हुईं। इन्होंने नवगीत और जनवादी गीत दोनों ही फलक पर अपना होना सिद्ध किया है, रचनाधर्मिता को प्रमाणित किया है।

शान्ति सुमन के गीतों में मिथिला बहुत बार उभरता है। उनके गीतों में मिथिला के गाँव-घर-लोग बाँस की टाटी से उझकती हुई बच्ची की तरह बार-बार दीखते हैं। उनके गीतों के साथ मंच, हॉल और बजते हुए रिकार्ड भी हैं। उनके गीतों में गोबर लिपे आंगन में 'कनियाँ पुतरा'

खेलती बच्चियाँ, बँसवट में बैठी हवाओ के संग हिलती चिड़ियाँ, बारहमासी मौसमी फूल, पीली लहठियों वाले हाथ, बलुआहे बालों पर जलते केसर-बाग, पेबन्द लगी साड़ी पहने माँ, चाँदी की बिछिया पर कुबेर का कोष पा जाने वाली जीवन-संगिनी भी है तो चकमक बूँद पसीने की पहने टिकली वाले भाल, बच्चों की किलकारी सी अगहन की धूप, सुआपंखिया शाम, पिता जैसे दिन के माथे से चूता घाम, छोटी आमदमी से दुखता घर, धुआँ पहनते चौके और मिट्टी के प्याले सी दरकती उम्र - कितने-कितने क्या सब हैं। इनके बिम्बों पर मुग्ध हुआ जा सकता है। शान्ति सुमन की दृष्टि चीजों के बहुत गहरे उतरती है और उनके मर्म सहेज लाती है। बहुत आह्लादकारी हैं पारिवारिक संबंधों की आत्मीय मिठास से बुने उनके गीत। जहाँ आज के विघटनकारी समय में सब कुछ टूट रहे हैं यहाँ तक कि रिश्ते-नाते भी, शान्ति सुमन के गीतों में उनको बचाकर रखने की कोशिश ही नहीं, एक कोमल जिद भी है। बिम्बों के चयन ही नहीं, रंगों के संयोजन भी इनके गीतों की अपूर्व विशेषता है जिसमें पाठकों को आकृष्ट करने की प्रबल क्षमता है। नारी-जीवन की बेचैनी और युवाओं की बेरोजगारी दिखाने के बाद भी शान्ति सुमन ने कहीं पराजय, टूटन, थकान और गतिहीनता का पक्ष नहीं लिया है। इनका स्वप्नजीवी मन कुहासे को चीरकर उजाले को जमीन पर लाने के आग्रहों से भरा है।

सम्प्रति कहना चाहती हूँ कि शान्ति लता जो मेरी माँ है, कब से शान्ति सुमन बन गई थीं, मुझको प्रभात तारा स्कूल मुजफ्फरपुर के चौथे-पाँचवें स्टैण्डर्ड में पढ़ने के समय पता चला। उस समय तक सिलेबस की हिन्दी कविता को छोड़कर मुझको किसी कविता के बारे में पता नहीं था। माँ जब गोष्ठियों में जातीं तो आकर बहुत सी बातें बतातीं। पहले उन बातों में मेरी कोई विशेष रुचि नहीं होती थी, पर धीरे-धीरे मेरी रुचि बढ़ने लगी। अक्सर माँ काव्य-मंचों पर जाने के समय मुझको बगल की मामी के घर छोड़ देतीं और आते ही मुझको घर ले आतीं, पर बाद में वे मुझको और भैया को भी अपने साथ ले जाने लगीं। कोई परिचित वहाँ हुआ तो हम दोनों भाई-बहन के लिए समोसा और रसगुल्ला ले आता। भैया नहीं खाता, पर मैं खाने लगती। ऐसा स्थानीय आयोजनों में ही होता था। यह स्थिति बहुत दिनों तक नहीं रही। घर में कुछ लोग जैसे माँ की दादी मेरे बहुत बचपन के दिनों में हमारी देखरेख के लिए आ गयी थीं। कुछ लोग और भी थीं और माँ को परेशानी नहीं होती थी। बाहर के आयोजनों में मैंने जाकर देखा कि इनका बहुत स्वागत-सत्कार होता है। कौन सा

साबुन लगायेंगी, क्या खायेंगी - सब पूछे जाते थे। यह सब देख-सुनकर हम दोनों भाई-बहन कुछ-कुछ लिखना शुरू कर दिये। तब तक हमलोग छठे-सातवें वर्ग में पहुँच गये थे। भैया ने एक गरीब भिखारिन पर एक कहानी और अप्रैल फूल पर एक एकांकी लिखी जो 'चन्द्र खिलौना' पत्रिका में छपी। हमारी साहित्य के प्रति बढ़ती इस रूचि से माँ चिन्तित हुईं। हमलोग अपने सिलेबस की पुस्तकों से अधिक पत्रिकाओं में छपी कविता-कहानी पर सोचने और बोलने लगे थे। फिर माँ के परामर्श और वात्सल्य ने हमें सही रास्ता दिखाया। उन्होंने कहा कि इस देश में ही नहीं, किसी भी देश में बचपन से ही साहित्य को कैरियर नहीं बनाया जाता। तुम्हारे मन में साहित्य के अंकुर फूटे हैं तो ठीक है, उन्हें पलने दो, समय से वे फूल और फलों से भरेंगे। यह काम शान्ति सुमन नहीं कर सकती थीं, माँ कर सकती थी और माँ ने वैसा किया।

शान्ति सुमन बहुत हँसने-बोलने वाली स्त्री कभी नहीं रहीं। अनामंत्रित वे किसी से कुछ नहीं कहतीं। उनके हृदय की संवेदनशीलता और कोमलता उनके चेहरे पर बनी रहती है। उनके व्यक्तित्व में एक सहज आकर्षण है जो दूसरों के मन में अपने लिए स्नेह और आदर सिरजता है। मेरा सौभाग्य है कि ये मेरी माँ हैं और मैं इनकी ममता और वात्सल्य की छाँव में पलकर बड़ी हुई हूँ। आज मेरे पास सब कुछ है, पर जो नहीं है उसको भी ये अपनी चूक का परिणाम मानती हैं। मैंने उनका विषय हिन्दी-साहित्य नहीं पढ़कर आधुनिक भारतीय इतिहास को अपना विषय बनाया। इसमें पी-एच० डी० और पोस्ट पी-एच० डी० की उपाधि भी ली, पर साहित्य विशेषकर कविता की संवेदना मुझको इनके सान्निध्य में ही मिली। 2007 में जब मेरा पहला कविता-संग्रह 'उस दिन का इन्तजार' छपा तो उसमें भी इनके बहुत सारे सुझाव मिले। कविता-रचना की समस्याओं पर ये खुलकर बातें करती हैं और अप्रिय लगे इसलिये किसी बात को कहने से रोक नहीं लेतीं, अपितु बड़ी सहजता और कोमलता से उसको समझा देती हैं। कठोर कथन ऐसे भी इनके स्वभाव में नहीं है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है इनका बिम्ब-चयन। कठोर से कठोर परिस्थितियों की अभिव्यक्ति में भी ये भालू, चीता, गीदड़ आदि हिंसक जंगली जानवरों के नाम नहीं लेतीं। मौसमी फूलों, पत्तों, चिड़ियों, झील-झरने-नदी-सागर, खेतों-खलिहानों अर्थात् प्रकृति से ही अपने उपमानों, बिम्ब-प्रतीक और सौन्दर्य के सारे उपकरण तलाशती हैं।

अपने विचारों के प्रति शान्ति सुमन बहुत अधिक प्रतिबद्ध हैं। इस

प्रतिबद्धता के लिये वे बहुत सारे लोभ-लाभ को भी दरकिनार कर देती हैं। जिन दिनों ये जनवादी सांस्कृतिक मोर्चा से जुड़ी थीं, उन दिनों अपने गीतों के लिए विशेषकर उनकी सस्वर प्रस्तुति के लिये ये बहुत अधिक नाम-यश अर्जित कर चुकी थीं। उन दिनों कई व्यावसायिक कवि-सम्मेलनों का ये परित्याग कर चुकी थीं। उन्हीं दिनों लालकिला पर स्वतंत्रता दिवस के आयोजन में गीत-पाठ का आमंत्रण इनको मिला था। शान्ति सुमन ने वैसे भव्य ऐतिहासिक समारोह को अपने विचार के विपरीत जाने के कारण छोड़ दिया था। इनके कुछ वरिष्ठ और समवय नवगीतकारों ने लालकिला की शोभा बढ़ाई थी।

शान्ति सुमन 'ओ प्रतीक्षित' से लेकर 'नागकेसर हवा' 2011 तक ग्यारह गीत-संग्रहों, एक उपन्यास, दो कविता-संग्रह, एक आलोचना ग्रन्थ की रचनाकार हैं। उन्होंने ढेर सारी समीक्षाएँ लिखी हैं जिनमें अधिकांश प्रकाशित हैं। इन्होंने 'सर्जना', 'अन्यथा' और 'बीज' के साथ 'भारतीय साहित्य' तथा 'कन्टम्परारी इंडियन लिटरेचर' (अंग्रेजी – दोनों दिल्ली से प्रकाशित) पत्रिकाओं का संपादन किया है। देश के अनेक आकाशवाणी और दूरदर्शन केंद्रों से इनकी रचनायें – विशेषकर गीत प्रसारित हैं। दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास से लेकर बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बंगाल, उड़ीसा, आसाम और उत्तराखंड के अनेक आकाशवाणी और दूरदर्शन केन्द्रों के अतिरिक्त उन प्रान्तों के अनेक स्थानों पर इन्होंने काव्य-मंचों से अपने सस्वर गीत-पाठ किये हैं और अपार जनसमूह को अपनी स्वर-लय की अनुगूँजों से भर दिया है। कई कवि-सम्मेलनों की सफलता इनकी प्रस्तुतियों से ही तय हुई है।

अब 'शान्ति सुमन की गीत-रचना : सौन्दर्य और शिल्प' के बारे में कुछ जरूरी सूचनायें देना चाहती हूँ। इसमें अनुस्यूत पाँच आलेख उस समय की हैं जब 'शान्ति सुमन की गीत-रचना और दृष्टि' प्रकाशित हो रही थी। ये आलेख उसी में समाहित होने के लिये आये थे और उसमें नहीं आ सके थे। शेष इस पुस्तक के लिये ही लिखे गये हैं।

'शान्ति सुमन की गीत-रचना और दृष्टि' की तरह इसका भी पहला भाग 'केन्द्र' है जिसमें शान्ति सुमन के जनवादी गीत और नवगीत पर आलोचकों, समीक्षकों और विद्वानों के विचार अलग-अलग प्रस्तुत किये गये हैं। 'वृत्त' में शान्ति सुमन के व्यक्तित्व का संक्षिप्त आकलन और उनकी कृतियों की संक्षिप्त चर्चा है। इस 'व्यक्ति और कृति' को डॉ० सुनन्दा सिंह ने शान्ति सुमन से अपने सान्निध्य के बावजूद अत्यंत तटस्थ

दृष्टि से लिखा है।

'परिधि' में शान्ति सुमन के विस्तृत रचना-संसार का उनकी मूल प्रवृत्तियों और विशेषताओं के साथ आकलन और विश्लेषण किया गया है। इसके लिये लेखकों ने उनकी कृतियों को आधार बनाया है। इन आलेखों में कुछ कृतियों की समीक्षाएँ भी सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त इसमें तीन साक्षात्कार भी दिये गये हैं। यद्यपि ये साक्षात्कार कुछ पहले सम्पन्न हुए हैं, पर उनमें शामिल प्रश्न और बातें आज भी प्रासंगिक हैं। बातचीत के सभी अंशों में कहे गये उत्तर को शान्ति सुमन आज भी स्वीकार करती हैं। इन तीनों बातचीत में कला-साहित्य विशेषकर गीत की मँजी हुई छवि सामने आती है और प्रभावी कला के रूप में उसकी जनसम्पृक्ति तथा जन-संवाद की संभावना भी खुलती है। रचनाओं के क्रम में कहीं रचनाकारों की वरीयता को आहत करने का विचार नहीं है, अपितु सम्पादकीय सुविधा के लिये ऐसा संयोजन किया गया है। सभी आलोचक-समीक्षक हमारे लिये सम्मान्य हैं। इसमें गद्य में एक पाठकीय प्रतिक्रिया को सम्मिलित किया गया है और दूसरी छन्द-बद्ध है। एक तीसरा पत्रांश कवयित्री के एक समानधर्मा नवगीतकार का भी संलग्न है। इस पुस्तक के आलेखों में विद्वान् आलोचकों, समीक्षकों, लेखकों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। इसमें कोई सम्पादकीय हस्तक्षेप नहीं है।

एक बार 'पठार की खुशबू' नामक महिला कथाकारों की कहानियों के संकलन का मैंने डॉ० जूही समर्पिता के साथ सम्पादन किया था। दूसरी बार इस पुस्तक के सम्पादन से शान्ति सुमन के जीवनानुभवों के बीच अपने जीवनानुभवों को रंग दे रही हूँ। मैं इस पुस्तक में सम्मिलित सभी आलोचकों, समीक्षकों और विद्वानों के आभार मानती हूँ जिन्होंने अपने व्यस्त समय से कुछ अंश निकालकर इस पुस्तक का रूपाकार निर्मित किया।

– चेतना वर्मा

36, ऑफिसर्स फ्लैट्स,
जुबली रोड, नार्दर्न टाऊन,
जमशेदपुर – 831001, (झारखण्ड)

वसंत पंचमी,
28 जनवरी 2012 ई०
मो० – 8292675554

अनुक्रम

क्रम	शीर्षक		पृष्ठ
1.	संपादकीय	– डॉ० चेतना वर्मा	5

केन्द्र : आलोचकों के विचार

शान्ति सुमन के जनवादी गीत : आलोचना की दृष्टि में

2.	इन गीतों से गुजरना जनधर्मी अनुभव-संवेदनों की बहुरंगी, बहुआयामी, बेहद समृद्ध दुनिया से होकर गुजरना है	– डॉ० शिव कुमार मिश्र	21
3.	इतिहास दुहराने को नहीं बल्कि रचने के लिए गीत	– डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह	21
4.	संवेदनशीलता विचारधारा की आँच में सूखी नहीं	– डॉ० मैनेजर पाण्डेय	21
5.	समय से गहरे सरोकार और विधागत दायित्व के सहज बोध	– कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह	22
6.	नवगीतकारों की पहली पंक्ति में	– डॉ० रविभूषण	22
7.	सुभद्रा कुमारी चौहान की अगली कड़ी के रूप में	– डॉ० रेवती रमण	23
8.	गीतों में मौसमी फूलों की सुगंध से भरी हवाएँ और भूख की लड़ाई – दोनों की अनुगूँज	– मदन कश्यप	23
9.	अपने समय की बेचैनियों से जुड़े गीत	– भारत भारद्वाज	23
10.	नवगीत के भीतर से जनगीत के अंकुर	– नचिकेता	24
11.	क्रान्ति का सरलीकृत रूप नहीं	– डॉ० अरविन्द कुमार	24
12.	परिवर्तन और आस्था का स्वर	– डॉ० वशिष्ठ अनूप	25
13.	जनपक्षधर कला की ऊँचाई के गीत	– महेन्द्र नेह	25
14.	रोटी और जमीन के जलते हुए सवाल	– डॉ० वंशीधर सिंह	25

अनुक्रम

क्रम	शीर्षक		पृष्ठ
15.	जीवन की व्यापकता की कथा-यात्रा	– नन्द कुमार	26
16.	नवगीतकारों की अव्यवस्थित भीड़ से अलग	– डॉ० विष्णु विराट	26
17.	गंभीर सामयिक पकड़	– लालसा लाल तरंग	26
18.	शोषित-पीड़ित मानवता का साथ	– डॉ० राधेश्याम बंधु	27
19.	प्रथम श्रेणी की गीतकार	– डॉ० रामसनेही लाल शर्मा	27
20.	रचना-शिल्प की सानी नहीं	– डॉ० राधेश्याम शुक्ल	27
21.	राग से आग तक की यात्रा	– जय चक्रवर्ती	27

संदर्भ : 'सूखती नहीं वह नदी'

22.	स्मृति जीवन में कविता की नयी पहचान	– डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव	28
23.	जीवन से पैदा होते क्रान्तिकारी विचार	– डॉ० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	29
24.	अनुभव की प्रामाणिकता	– डॉ० शिवशंकर मिश्र	29
25.	सघन रागात्मक लगाव	– प्रणव सिन्हा	30

प्रस्तुति : अपूर्व वर्मा

केन्द्र : आलोचकों के विचार

शान्ति सुमन के नवगीत : आलोचना की दृष्टि में

26.	उनके कंठ-स्वर और उनकी लय में कविता सुनने का आनन्द	– आरसी प्रसाद सिंह	33
27.	नवगीत की एकमात्र कवयित्री	– उमाकान्त मालवीय	33
28.	चिन्तित अनुभूति के विस्तार	– भारतभूषण	33
29.	'नवगीत दशक' के अनेक नवगीतकार इस कवयित्री का पासंग भी नहीं	– डॉ० सुरेश गौतम	34
30.	गीत के पक्ष में खड़ी	– सत्यनारायण	34

अनुक्रम

क्रम	शीर्षक		पृष्ठ
31.	किसान-जीवन के जीवन्त चित्र	– डॉ० सीता महतो	34
32.	शीर्ष रचनाधर्मिता	– डॉ० संजय पंकज	35
33.	व्यापक परिवेश में हस्तक्षेप	– रत्नेश्वर झा	35
34	समय, समाज, जीवन से एकरूपता	– चन्द्रकान्त	35
35.	मध्यवर्ग की हिस्सेदारी के गीत	– डॉ० विश्वनाथ प्रसाद	36
36.	गीतों में एक पूरी दुनिया	– डॉ० अरुण कुमार	37
37.	अपनी जीवनानुभूति से लगते गीत	– देवेन्द्र कौर	37
38.	रचना-दृष्टि वैज्ञानिक एवं प्रासंगिक	– शरदेन्दु कुमार	37
39.	उच्चस्तरीय कवयित्री	– डॉ० महाश्वेता चतुर्वेदी	38
40.	समसामयिक जीवन-यथार्थ की अभिव्यक्ति	– नन्द भारद्वाज	38
41.	गीत के विकास में महती योगदान	– डॉ० इन्दु सिन्हा	38
42.	गीतों के इतिहास में नाम	– डॉ० कीर्ति प्रसाद	39
43.	लोक जीवन के संस्कार	– डॉ० अंजना वर्मा	39
44.	वस्तुजगत का यथार्थ	– अमित कुमार	39
45.	लोकगीतात्मक सौन्दर्य	– डॉ० मधुसूदन साहा	40
46.	विविधतापूर्ण रचना-संसार	– मधुकर अष्ठाना	40
47.	प्रमाण का दस्तावेज लेकर 'ओ प्रतीक्षित' प्रकाशित	– सम्पादकीय : 'शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि'	41
48.	आत्मीय रिश्ते कायम करते गीत	– मधुकर सिंह	41
49.	संस्कार की सुरक्षित मानवीय करूणा के गीत	– पंकज सिंह	41
50.	अज्ञेय जैसी काव्यात्मक भाषा	– मनीष रंजन	42
51.	अनेक कथ्य-बिम्बों के प्रथम प्रयोक्ता	– वीरेन्द्र आस्तिक	42
52.	प्रतिभासम्पन्न रचनाकार	– श्रीकृष्ण शर्मा	42
53.	आदमकद सामाजिक	– अनूप अशेष	43
54.	गीत की नई ऊर्जा	– शंकर सक्सेना	43

अनुक्रम

क्रम	शीर्षक		पृष्ठ
55.	गीत क्षमताओं का विस्तार कहीं अधिक	– कुमार रवीन्द्र	43
56.	अंतर्वाह्य रूप से जनता की रचनाकार	– डॉ० माधुरी वर्मा	44
57.	कविता को बड़ा फलक देने की पक्षधर	– यश मालवीय	44
58.	लय-सौन्दर्य से भरे शब्द-गठन, भाषा की अनुकूलता	– डॉ० चेतना वर्मा	44
59.	जनसमाज से जुड़ाव	– डॉ० लक्ष्मण प्रसाद	45
60.	बचे हुए गँवई मन और संरोकार	– डॉ० अशोक प्रियदर्शी	45
61.	वर्डस्वर्थ की तरह किसानों की महत्व-प्रतिष्ठा	– कनकलता रिद्धि	45
62.	कालजयी गीतों की रचना	– दिवाकर वर्मा	46
63.	बेसुरे समय में भी दुर्लभ गीत	– सूर्यभानु गुप्त	47
64.	बहुत दूर तक जानेवाले गीत	– डॉ० सुप्रिया मिश्र	47
65.	अछूती लय और छन्द	– माधवकान्त मिश्र	47
66.	और एक पाठकीय प्रतिक्रिया : गाँव की मिट्टी की सोंधी गंध	– शिशुपाल सिंह 'नारसरा'	47
67.	एक भावसम्पन्न काव्यप्रसून	– डॉ० महाश्वेता चतुवेदी	48
	प्रस्तुति : श्रुति सिन्हा		
	वृत्त :		
68.	शांति सुमन : व्यक्ति और कृति	– डॉ० सुनन्दा सिंह	51
	परिधि :		
69.	'ओ प्रतीक्षित' : एक समीक्षात्मक वक्तव्य	– आरसी प्रसाद सिंह	91
70.	गीत प्राण – शान्ति सुमन	– भारतभूषण	95
71.	सहज रचनाधर्मिता की कवयित्री : डॉ० शान्ति सुमन	– डॉ० मधुसूदन साहा	100

अनुक्रम

क्रम	शीर्षक		पृष्ठ
72.	शिखरस्थ पहचान	– विष्णु विराट	112
73.	शांति सुमन के गीतों में रागधर्मिता	– डॉ० विश्वनाथ प्रसाद	116
74.	लोकचेतना की सार्थक नवगीत – कवयित्री : डॉ० शान्ति सुमन	– डॉ० राधेश्याम बन्धु	119
75.	बहुआयामी सृजन की प्रतिमान : डॉ० शान्ति सुमन	– मधुकर अष्ठाना	124
76.	डॉ० शान्ति सुमन : एक गीत वसुन्धरा	– डॉ० राधेश्याम शुक्ल	135
77.	धुंध की कैद से सूरज की मुक्ति को आतुर नवगीतीय स्वर डॉ० शान्ति सुमन	– डॉ० रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'	146
78.	बादल और अगिन : डॉ० शान्ति सुमन	– अनूप अशेष	156
79.	जनपक्षधर कला की ऊँचाइयों को नापते हुए शान्ति सुमन के गीत	– महेन्द्र नेह	163
80.	शान्ति सुमन के गीत : गीतधर्मिता का विस्तार	– वीरेन्द्र आस्तिक	171
81.	'खारिज' पर 'काबिज' शान्ति सुमन की गीतयात्रा	– लालसा लाल तरंग	178
82.	निरंतर अमानवीय और अभद्र होते जा रहे जीवन यथार्थ से जूझती रचनाकर्त्री : शांति सुमन	– शंकर सक्सेना	196
83.	गीत में फंसे कबीर	– भारत भारद्वाज	200
84.	शान्ति सुमन की गीत रचना और दृष्टिः एक समग्र मूल्यांकन	– दिवाकर वर्मा	203
85.	लोकगीत के सांचे में ढले नवगीत : 'भीतर-भीतर आग'	– नचिकेता	209
86.	सुमन की सुवास और जनजीवन का संत्रास : 'धूप रंगे दिन'	– अशोक प्रियदर्शी	211

अनुक्रम

क्रम	शीर्षक		पृष्ठ
87.	शान्ति सुमन के गीतों के बारे में	– अमित कुमार	214
88.	सामाजिकता और मूल्य संस्कृति का संवेदनात्मक स्वर : 'मेघ इन्द्रनील'	– पंकज कर्ण	225
89.	भीतर की आग की खुशबू	– अंजना वर्मा	228
90.	'समय चेतावनी नहीं देता' में संकलित शान्ति सुमन की कविताएँ	– देवेन्द्र कौर	236
91.	भीतर भीतर आग : आग का राग	– डॉ० अरुण कुमार	240
92.	'सुबह हुई आंगन में गमकी धूप किसी पकवान-सी'	– शरदेन्दु कुमार	243
93.	संघर्ष और संवेदना का सशक्त हस्ताक्षर	– वंशीधर सिंह	246
94.	टुकड़ों में बंटा आकाश का परचम	– माधवकांत मिश्र	248
95.	डॉ० शान्ति सुमन : आग और राग की कवयित्री	– जय चक्रवर्ती	252
96.	जनगीत की लोक–संवेदना और सौंदर्य	– नंद भारद्वाज	256
97.	संवेदनशीलता की गीतकर्त्री : डॉ० शान्ति सुमन	– डॉ० इन्दु सिन्हा	261
98.	शान्ति सुमन : गीतों की अंतर्यात्रा	– डॉ० सुरेन्द्र प्रसाद जमुआर	266
99.	नवगीत की प्रथम कवयित्री : शान्ति सुमन	– श्रीकृष्ण शर्मा	272
100.	शान्ति सुमन – नवगीत से जनगीत की दूरी तय करती रचनाकार	– डॉ० कीर्ति प्रसाद	277
101.	भीतर-भीतर आग को दर्शाते कवयित्री शान्ति सुमन के गीत	– डॉ० महाश्वेता चतुर्वेदी	281
102.	नवगीत के बहाने एक सार्थक संवाद	– नचिकेता	284
103.	नागकेसर की सुगंध से आप्लावित गीत	– चन्द्रसेन विराट	289

अनुक्रम

क्रम	शीर्षक		पृष्ठ
104.	सीमा और शक्ति के दायरे के गीत	– डॉ० मधुसूदन शर्मा	292
105.	लोकराग की झंकार तथा जनाग्रही रूझान	– डॉ० विष्णु विराट	296
106.	नागकेसर हवा को महसूसते हुए	– विश्वनाथ	299
107.	समय में रचनात्मक हस्तक्षेप	– डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव	306
108.	...राग और स्मृति की नदी	– डॉ० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	308
109.	समय और समाज से जुड़ी सोच की कवितायें	– डॉ० शिवशंकर मिश्र	309
110.	संघर्ष की आँच में भावना की नमी बचाने की कोशिश : शान्ति सुमन की कवितायें	– प्रणव सिन्हा	311

साक्षात्कार :

111.	'गीत ही जन–भावना को सुरक्षित रख सकता है'	– मार्कण्डेय प्रवासी	319
112.	गीत रचना मेरी रचनात्मक विवशता है : शान्ति सुमन	– निर्मल मिलिन्द	324
113.	गीत : अपनी संवेदनाओं को व्यक्त करने की सहजता	– अमित प्रभाकर	331

गीत पर शान्ति सुमन के वैचारिक आलेख :

114.	नवगीत : समकालीन गीत की सशक्त परिणति	– डॉ० शान्ति सुमन	341
115.	गीत में बदलाव के संकेत	– डॉ० शान्ति सुमन	348
116.	गीत के बारे में	– डॉ० शान्ति सुमन	357
117.	जनवादी रचना–कर्म	– डॉ० शान्ति सुमन	361

♦ ♦ ♦

केन्द्र : आलोचकों के विचार

शान्ति सुमन के जनवादी गीत आलोचना की दृष्टि में

प्रस्तुति – अपूर्व वर्मा

इन गीतों से गुजरना जनधर्मी अनुभव-संवेदनों की बहुरंगी, बहुआयामी, बेहद समृद्ध दुनिया से होकर गुजरना है

– डॉ० शिव कुमार मिश्र

इन गीतों से होकर गुजरना जनधर्मी अनुभव–संवेदनों की एक बहुरंगी, बहुआयामी, बेहद समृद्ध दुनिया से होकर गुजरना है, साधारण में असाधारणता के, हाशिए की जिन्दगी जीते हुए छोटे लोगों के जीवन–संदर्भों में महाकाव्यों के वृत्तान्त पढ़ना है। स्वानुभूति, सर्जनात्मक कल्पना तथा गहरी मानवीय चिन्ता के एकात्म से उपजे ये गीत अपने कथ्य में जितने पारदर्शी हैं, उसके निहितार्थों में उतने ही सारगर्भित भी। मुक्तिबोध ने कविता को जनचरित्री के रूप में पारिभाषित किया है। शान्ति सुमन के ये गीत मुक्तिबोध की इस उक्ति का रचनात्मक भाष्य हैं।

●

इतिहास दुहाराने को नहीं बल्कि रचने के लिए गीत

– डॉ० विजेन्द्र नारायण सिंह

समय से संघर्ष करने के क्रम में शान्ति सुमन ने ईश्वर की चोरी न कर उसके समानान्तर, उसके सामने खम ठोककर खड़े इन्सान की जीवन्त प्रतिमा गढ़ी है। किसान और मजदूर का श्रम और संघर्ष लिखकर भी वे प्रगतिवादी नहीं बल्कि जनवादी गीतकर्त्री हैं। यानी वे इतिहास दुहराने को नहीं, वरन् इतिहास रचने के लिये गीत के क्षेत्र में आईं। इन गीतों में श्रम और पसीने का बहुत मर्मस्पर्शी भावन मिलता है।

●

संवेदनशीलता विचारधारा की आँच में सूखी नहीं

– डॉ० मैनेजर पाण्डेय

खुशी की बात है कि कई दूसरे गीतकारों की तरह शान्ति सुमन की संवेदनशीलता विचारधारा की आँच में सूख नहीं गयी है, इसलिये उनके गीतों में विभिन्न मानवीय जन कठिन जीवन जीते हुए भी अपनी मानवीयता की रक्षा

करता है। विचारधारा की सारी लड़ाई समाज को सचमुच मानवीय बनाने की ही लड़ाई है। इसलिये जन–जीवन में जीवित मानवीयता की रक्षा और उसके महत्त्व की पहचान कविता का दायित्व है। इस संग्रह (मौसम हुआ कबीर) में एक गीत है 'आँखों का सपना'। उसमें न कहीं ललकार है, न क्रांति का आख्यान, कठिन जिन्दगी का एक चित्र है, प्रतिकूल परिस्थितियों से लड़ते हुए जीने की इच्छा और कोशिश का चित्र –

टूटा ही है घर वह
पर कितना अपना है... /

●

समय से गहरे सरोकार और विद्यागत दायित्व के सहज बोध

– कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह

...यह सब समय से गहरे सरोकार और विधागत दायित्व के सहज बोध के कारण संभव हो सका है और यही शान्ति सुमन के अंदर पल रही वह शक्ति है जो उन्हें अपनी जमीन से हटने नहीं देती। लोकगीत और उसका विविध प्रकारों से आत्मीय परिचय होने पर भी आम रवैया में बहते हुए कभी उन्होंने किसी तर्ज या धुन पर कोई रचना खड़ी करने की कोशिश नहीं की – अपने गीतों में उनका पुट यहाँ–वहाँ अवश्य देती गयी हैं। बल्कि उन्हें अपनी सीमा का ज्ञान हमेशा रहा है और इसी में उनकी खूबसूरती है।

●

नवगीतकारों की पहली पंक्ति में

– डॉ० रविभूषण

हिन्दी के नवगीकारों में शान्ति सुमन का नाम बहुचर्चित और सुप्रसिद्ध है। इनके पहले गीत–संकलन 'ओ प्रतीक्षित' (1970) के पूर्व बहुत कम गीत–संकलन प्रकाशित हुए थे, जिनका संबंध नवगीत से जुड़ा। शान्ति सुमन पिछले चार दशक से गीत–रचना में निरन्तर सक्रिय हैं। वे नवगीतकारों की पहली पंक्ति में हैं और उन्हें छोड़कर नवगीत पर किया गया कोई भी विचार उचित और प्रामाणिक नहीं होगा।

●

सुभद्रा कुमारी चौहान की अगली कड़ी के रूप में

– डॉ० रेवती रमण

शान्ति सुमन छायावाद की महीयसी महादेवी से न मुठभेड़ करती हैं और न उनके चरण–चिन्हों का अनुसरण ही, पर कोई चाहे तो सुभद्रा कुमारी चौहान की अगली कड़ी के रूप में उनकी जन–सम्बद्धता परख सकता है। खास बात यह है कि उनके गीतकार की जड़ें मिथिला में हैं। उनके गीतों में जयदेव भी हैं, विद्यापति और शुरूआती दौड़ के नागार्जुन भी।

●

गीतों में मौसमी फूलों की सुगंध से भरी हवाएँ और भूख की लड़ाई - दोनों की अनुगूँज

– मदन कश्यप

उनके गीतों से होकर 'मौसमी फूलों की सुगंध से भरी हवाएँ' भी गुजरती हैं और 'छिड़ी हुई दुनिया में भूख की लड़ाई' की अनुगूँज भी मिलती हैं। गीतों के बारे में प्रायः यह माना जाता है कि उसके शिल्प और छन्द संवेदना के 'आर्गन' को नष्ट कर डालते हैं। शान्ति सुमन के गीत इस मान्यता का सृजनात्मक प्रतिकार करते हैं।

●

अपने समय की बेचैनियों से जुड़े गीत

– भारत भारद्वाज

शान्ति सुमन 'सुलगते पसीने' (1979), 'पसीने के रिश्ते' (1980) के बाद अपने नये गीत–संग्रह 'मौसम हुआ कबीर' तक जहाँ पहुंची हैं, न केवल लम्बी गीत–यात्रा तय की हैं, बल्कि इस संग्रह तक आते–आते अपनी जमीन एवं लोक संस्कृति से पूर्णतः जुड़ गई हैं। लोक संस्कृति की गंध ने उनके गीतों को न केवल अपने समय की बेचैनियों से जोड़ दिया है, बल्कि शोषित–प्रताड़ित जन के उस संघर्ष से भी, जिसके लिये वे शुरु से ही प्रतिबद्ध रही हैं।

●

नवगीत के भीतर से जनगीत के अंकुर

– नचिकेता

गीत (मंचगीत), नवगीत और जनगीत के बुनियादी फर्क के अनुशीलन, विश्लेषण और उद्घाटन के वास्ते एक ही गीतकार शान्ति सुमन के गीतों के अंतर्जगत का संक्षिप्त मुआयना किया जा सकता है। शान्ति सुमन के 'ओ प्रतीक्षित' में संकलित गीत शुद्ध रूप से नवगीत हैं, प्रभावी और वैचारिक दोनों अंतर्वस्तुओं के धरातल पर। इन्हें जनगीत का दर्जा नहीं दिया जा सकता। 'परछाईं टूटती' के गीत भी मूलतः नवगीत ही हैं। यह बात दीगर है कि इन गीतों के भीतर से जनगीत के अंकुर भी फूटते दृष्टिगत होते हैं। लेकिन 'सुलगते पसीने' और 'मौसम हुआ कबीर' में संकलित गीत पूर्णतः जनगीत हैं। इन्हें नवगीत मानना कठहुज्जती होगी। हालाँकि 'सुलगते पसीने' और 'मौसम हुआ कबीर' में संकलित गीतों की बनावट, बुनावट और रचाव में काफी अंतर है। इसे सरल, सपाट और इकहरे ढंग से नहीं समझा जा सकता है क्योंकि गीत की रचना–प्रक्रिया सरल, सपाट और इकहरी नहीं होती, अपितु द्वन्द्वात्मक, जटिल, दुहरी, आड़ी, तिरछी, चक्रीय और गझिन होती है।

●

क्रान्ति का सरलीकृत रूप नहीं

– डॉ० अरविन्द कुमार

शान्ति सुमन के साथ होना दरअसल अपने अहसासों के साथ होना है। आप जब उनके गीतों के मौसम में प्रवेश करते हैं तो एक पूरी दृश्यात्मकता साथ होती है। एक वैसा गाँव वहाँ सजीव हो उठता है जिसकी सुबह कपास सी होती है और दोपहरी रूबाई सी। यह तभी हो सकता है जब किसी में जड़ों से प्रेम का एहसास जगता हो। नागार्जुन भी जब 'सिन्दूर तिलकित भाल' में अपने गाँव को याद करते हैं तो वहाँ भी एक ऐसी ही दृश्यात्मकता उभरती है।

नचिकेता 'सुलगते पसीने' में गीतों की भूमिका का जो उल्लेख करते हैं, 'मौसम हुआ कबीर' में यह भूमिका थोड़ी बदली होती है क्योंकि इन गीतों में एक संघर्ष तो दिखाई देता है, अंधेरे के विरूद्ध रोशनी की लड़ाई का जिक्र तो आता है, पर इनमें आयी शब्दावलियों में कहीं कोई नारा नहीं दिखता या क्रान्ति का कोई सरलीकृत रूप नजर नहीं आता।

●

परिवर्तन और आशा का स्वर

– डॉ० वशिष्ठ अनूप

शान्ति सुमन परिवर्तनकामी और स्वप्नदर्शी रचनाकार हैं। उनकी दृष्टि वैज्ञानिक है, इसलिये वह ठहराव और यथास्थिति को स्वीकार न करके लगातार परिवर्तन की बातें करती हैं। वह हर प्रकार की नकारात्मक प्रवृत्तियों – शोषण–दमन, लूट–हिंसा, जोर–जबर्दस्ती और अन्याय–अत्याचार को देखते हुए भी निराश और हताश नहीं हैं। वह जानती हैं कि समय बदलेगा और आनेवाला समय बेहतर तथा गरीबों, मजदूरों, किसानों का होगा। यह परिवर्तन और आशा का स्वर उनके अनेक गीतों में मुखर हुआ है।

●

जनपक्षधर कला की ऊँचाई के गीत

– महेन्द्र नेह

मेरी अपनी मान्यता है कि शान्ति सुमन जहाँ 'मौसम हुआ कबीर' और 'एक सूर्य रोटी पर' के गीतों में मौजूद जन–करुणा, जन–बोध और जनपक्षधर कला की ऊँचाईयों को नापती हुई जनवादी कला–कर्म के नये द्वार खोल रही होती हैं, वहीं उनके नवगीतों को भी एक लेखक की क्रमिक विकास–यात्रा के रूप में देखा जाा चाहिये। उनके अनेक नवगीत ऐसे हैं, जिनमें उनके परवर्ती जनवादी गीतों के बीज अपनी पूरी आभा के साथ उपस्थित हैं।

●

रोटी और जमीन के जलते हुए सवाल

– डॉ० वंशीधर सिंह

'मौसम हुआ कबीर' में प्रायः इनके (शान्ति सुमन के) प्रतिनिधि गीत संगृहीत हैं। इन गीतों में जहाँ एक ओर वर्ग–दुश्मन को मात देने की ईमानदार कोशिश है, वहीं रोटी और जमीन के जलते हुए सवाल को छेड़कर मुठभेड़ की भी बात कही गयी है। बदलाव का गीत गाते हुए शान्ति सुमन प्रतिकूल सामाजिक परिवेश और अन्तर्विरोधों के बावजूद अँधेरे के बीच अपनी मुट्ठी भर इरादे को लेकर गलियों–चौराहों पर निकल पड़ती हैं।

●

जीवन की व्यापकता की कथा-यात्रा

– नन्द कुमार

शान्ति सुमन के गीतों में एक विलक्षण वैशिष्ट्य है। मुझे जो सबसे आश्चर्यजनक सुखद स्थिति लगी वह यह कि डॉ0 शान्ति सुमन के सारे गीत एक दूसरे से पूर्णतया सम्बद्ध हैं तथा जीवन की व्यापकता की कथा–यात्रा हैं।

●

नवगीतकारों की अव्यवस्थित भीड़ से अलग

– डॉ० विष्णु विराट

शान्ति सुमन हिन्दी गीतकाव्य की शिखरस्थ पहचान से जुड़ी एक ऐसी विदुषी कवयित्री हैं जिन्होंने सच्चे अर्थों में गीतों को जिया है अथवा कह सकते हैं, जीवन की विविधिआयामी सोच के साथ गीतों में समन्वित हुई हैं, गीतों से जुड़ी हैं। सामान्य मनुष्य की झोली भर पीड़ा और मुट्ठी भर खुशी उनके समग्र वैचारिक पटल को स्पंदित करती है। यही कारण है कि नवगीतकारों की अव्यवस्थित भीड़ में वह सम्मिलित नहीं हैं। उनकी अपनी संवेदनायें हैं, अपनी सोच है और अपने मानसिक उद्वेग हैं। जनाग्रही जीवन की कटुता से वह अलग नहीं हुई। निम्न मध्यम वर्ग की त्रासदी और अभावजन्य दैनंदिनी में भी वह सुख के क्षणिक अनुभास ढूँढ़ लेती हैं।

●

गंभीर सामयिक पकड़

– लालसा लाल तरंग

शान्ति सुमन की यह विशेषता है कि समकालीन यथार्थ और गँवई संवेदना से अत्यंत गहराई के साथ जुड़े होने के कारण आंचलिक बल्कि ग्रामीण भाषा के अत्यधिक देशज शब्दों का उन्होंने अपने जनगीतों में प्रयोग किया है। नवगीतों की अंतर्वस्तु की बारीकियों को सँजोने के क्रम में उन्होंने रंगीन बारीक धागों को आकार देते हुए अपने कला–कौशल और गंभीर सामयिक पकड़ का स्पष्ट एवं भरपूर परिचय दिया है।

●

शोषित-पीड़ित मानवता का साथ

– डॉ० राधेश्याम बंधु

यह सच है कि कविता कभी हथियार नहीं चला सकती, लेकिन बर्बरतापूर्ण क्रूर, अराजक, दमनकारी, अन्यायी भ्रष्ट व्यवस्था का विरोध तो कर ही सकती है। शान्ति सुमन के जनचेतना के जुझारू गीतों ने सदैव आम आदमी के मुक्तिकामी जनसंघर्षों और शोषित–पीड़ित मानवता का साथ दिया है। इन गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें समय और समाज की विडम्बनाओं तथा विद्रूपताओं को कठोर और खुरदुरे यथार्थ की बजाय कोमल शब्दों में व्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

●

प्रथम श्रेणी की गीतकार

– डॉ० रामसनेही लाल शर्मा

कहने की आवश्यकता नहीं कि डॉ0 सुमन प्रथम श्रेणी की गीतकार हैं। उनके गीत पूरी तरह छन्द के बंधन को स्वीकार कर चले हैं। इसलिये वे सहज गेय हैं और उनमें कहीं अपवाद स्वरूप भी लय–भंग का दोष नहीं है। इसलिये निर्विवाद रूप से वे ऐसी रचनाकार हैं जो कालजयी रहेंगी। वे ईश्वर की नहीं, अपना भाग्य स्वयं गढ़नेवाली मानव प्रतिमा की पुजारिन हैं। इस ठोस, यथार्थ, कर्मशील मानव की प्रतिमा गढ़नेवाले गीतकार के रूप में वे सदा–सर्वदा पठनीय रहेंगी।

●

रचना-शिल्प की सानी नहीं

– डॉ० राधेश्याम शुक्ल

जहाँ तक शान्ति सुमन के रचना–शिल्प की बात है उसकी कोई सानी नहीं। मुझे तो ऐसा लगता है कि अपने गीतों में डॉ0 शान्ति सुमन स्वयं ही अनुभूति बन गई हैं और स्वयं ही अभिव्यक्ति।

●

राग से आग तक की यात्रा

– जय चक्रवर्ती

गीत की 'राग से आग' तक की इस यात्रा में डॉ0 शान्ति सुमन का नाम

प्रथम पंक्ति में है। उन्होंने गीत के राग और गीत की आग को न सिर्फ अपनी लेखनी, अपितु अपनी साँस–साँस पर सजाया है। उनके लगभग एक दर्जन प्रकाशित गीत–संग्रहों से गुजरते हुए कोई भी संवेदनशील–सहृदय व्यक्ति मेरी इस बात की तसदीक कर सकता है। इन गीतों में कवयित्री को गीत के जन्म से लेकर गीत के प्रति उसकी अटूट आस्था और इस आस्था के विभिन्न आयामों के विस्तीर्ण फलक पर अपने समय की पूरी ऊर्जा, ईमानदारी और शिद्दत के साथ उकेरते हुए देखा–महसूसा जा सकता है। डॉ० शान्ति सुमन के समग्र रचना–संसार के बारे में यदि एक वाक्य में मुझे अपनी राय देनी हो तो बिना एक पल गँवाये मैं कह सकता हूँ कि उन्होंने अपने हिस्से के एक–एक क्षण को अपने रचना–कर्म में पूरी सजगता के साथ पिरोने का 'बड़ा' और 'ईमानदार' कार्य किया है।

●

संदर्भ : 'सूखती नहीं वह नदी'

स्मृति जीवन में कविता की नयी पहचान

– डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव

जानी–पहचानी कवयित्री शान्ति सुमन की पहचान प्रायः गीतकार या नवगीतकार के रूप में रही है। समय का दबाव ऐसा कि आज वे गद्य–लय में काव्य–सृजन कर रही हैं और 'सूखती नहीं वह नदी' संग्रह से यही नई पहचान संभव हो सकी है और विकसित भी। गाँव–शहर के सीमान्त पर शान्ति सुमन ने 'पेड़ों की शक्ल में लोग', 'रोटी के पेड़', 'नई बात नहीं', 'किशोरी अमोनकर को गाते हुए देखकर' जैसी कविताएँ लिखी हैं जो समय में रचनात्मक हस्तक्षेप के मानिन्द हैं।

शान्ति सुमन संवेदनशील कवि हैं और संबंधों का राग पहचानती हैं। उनके लिए 'चिड़िया' कभी माँ हो जाती है, कभी 'दियारे से शहर तक' का लैण्डस्केप सादगी में चकित करता है। चिमनियों से भरे शहर का धूल–धुआँ शान्ति सुमन के काव्य–समय में वर्जित नहीं है। 'पतझड़ में' कविता में पेड़ पत्तों से वंचित होते हैं, पर ऑफिसर्स फ्लैट में टाइल्स की चमक बढ़ती जाती है। आउट हाउस के बच्चे और उनके मजदूर पिता सभ्यता की अंधी दौड़ में शामिल हो जाना चाहते हैं।

....'सूखती नहीं वह नदी' में वैविध्य है और नयी काव्य संभावना की झलक

भी। सरलता है – पर सरलीकरण से बचकर। इस सरल वैविध्य में चुप्पी है, मितकथन की कला भी। प्रकृति और मनुष्य के बीच का अनवरत संवाद प्रीतिकर है। उसे विचारों में रिड्यूस करने का बड़बोलापन नहीं है। शान्ति सुमन नयी खिड़कियाँ खोलती हैं और स्मृति–जीवन में कविता को नयी पहचान देती हैं। शान्ति सुमन की कविता मंथर लय में चलकर जीवन वृत्तान्त बनती हैं।

●

जीवन से पैदा होते क्रान्तिकारी विचार

– डॉ० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी

शान्ति सुमन की कविताओं के नये संग्रह 'सूखती नहीं वह नदी' से गुजरते हुए महसूस किया जा सकता है कि इसमें सचमुच एक नदी प्रवहमान है। भावना और संवेदना, नमी और तरलता, आत्मीयता और कोमलता तथा राग और स्मृति की नदी। इन कविताओं में संबंधों का रागात्मक लगाव है – अलगाव के विरूद्ध। दादी, माँ, बेटी, बेटा आदि ही नहीं, पीपल के पत्ते का भी अपनी शाख से अलग होना कवयित्री में कम्पन पैदा करता है। कोई एक सूत्र है जो उसे गाँव और अपने उस बहुरंगी, बहुरूपी प्राकृतिक परिवेश से जोड़े रहता है जिसमें बसंत है, बरखा है, शिशिर और हेमंत है, अलग–अलग ऋतुओं में मौसम का मिजाज है।

इन कविताओं में गाँव के कुछ अछूते–टटके बिम्ब हैं, गाँव की स्त्रियों–बच्चों और मजदूरों के संघर्ष–चित्र भी हैं। पीने का पानी ढोती बेटियाँ, सुविधाओं से वंचित बच्चे, रोटी–कपड़े के लिये खटते मजदूर और ऊपर से सरकारी योजनाओं का खोखलापन। यही है वह जीवनधारा जिससे पैदा होते हैं विचार। यही है वह साधारण जन की धड़कन जिसे जनवाद के रूप में जाना जाता है। क्रांतिकारी विचारों से नहीं बनती कविता। जीवन से ही पैदा होते हैं क्रांतिकारी विचार।

●

अनुभव की प्रामाणिकता

– डॉ० शिवशंकर मिश्र

यह सच है कि ये कवितायें एक स्त्री की हैं, किसी स्त्रीवादी की नहीं। यह अच्छा है। इस तरह, मेरे मत में प्रतिक्रियात्मक अभिव्यक्तियों की बजाय अनुभव की प्रामाणिकता के लिए अधिक जगह बनती है। आपकी कविताओं में यह है।

जनवाद से आपके जुड़ाव ने भी कई कविताओं को अतिरिक्त मूल्यवत्ता और संवर्द्धन प्रदान किया है। फिर भी बात वाद–जनवाद की नहीं, बल्कि समय और समाज से जुड़ी सोच की है।

●

सघन रागात्मक लगाव

– प्रणव सिन्हा

कवयित्री के अनुसार उनके अंतर्वाह्य संघर्षों, जीवन की असुविधाओं और व्यवस्था की जटिलताओं ने इन कविताओं को लिखने की जमीन दी है। 'इन दिनों जमीन का मिलना भी बड़ी बात है।' इस जमीन को कवयित्री ने विस्तृत अर्थ–फलक तक पहुंचाया है। यह जमीन कविता के सारे अवयवों, रचनात्मक संहिति तथा रचना–प्रक्रिया के व्यूह को खोलती है। जीवन–संघर्षों से ही उनका रागात्मक लगाव सघन हुआ है। शान्ति सुमन के अनुसार उनकी संवेदनाओं में गाँव है, इसलिए शहर की चमक इनमें कम है, पर मुझको लगता है कि व्यवस्था के मकड़जालों को खोलती हुई उनकी कविता एक समकालीन समाजार्थिक विसंगतियों से मुठभेड़ करती हैं, तो गाँव क्या, शहर, जंगल, पहाड़ सभी आ जाते हैं। पर यह है कि गाँवों के लिये इनका आकर्षण, लगाव और अपनापन बेहद दीखता है।

●

प्रस्तुति – अपूर्व वर्मा

केन्द्र : आलोचकों के विचार

शान्ति सुमन के नवगीत आलोचना की दृष्टि में

प्रस्तुति – श्रुति सिन्हा

उनके कंठ-स्वर और उनकी लय में कविता सुनने का आनन्द

– आरसी प्रसाद सिंह

अभी इन गीतों को बोलते समय मुझे यह भी याद आता है कि अक्सर शान्ति सुमन से यों भी कवितायें सुनने का मुझे सुअवसर मिला है। उनका कंठ–स्वर कुछ वैसा है कि अभी जो मैं कह रहा हूँ उससे कई गुणा आनन्द उनके कंठ–स्वर से और उनसे उन्हीं की लय में कविता सुनने में आता है।

●

नवगीत की एकमात्र कवयित्री

– उमाकान्त मालवीय

नवगीत की एकमात्र कवयित्री शान्ति सुमन.....

●

चिन्तित अनुभूति के विस्तार

– भारतभूषण

एक बार वाराणसी के पास किसी छोटे से नगर में मंच पर शान्ति जी भी थीं। मैं प्रसन्न हुआ कि चलो जिसकी इतनी प्रशंसा सुनी है तो आज सुनें भी। शान्ति जी ने अपना लोकप्रिय गीत ही पढ़ा था – 'थाली उतनी की उतनी ही छोटी हो गई रोटी/कहती बूढ़ी दादी अपने गाँव की।' मैं इस गीत के सौन्दर्य और विस्तार–प्रस्तुति पर सिहर उठा था। नवगीत का सुन्दरतम गीत मुझे लौटते में यात्रा भर में गूँजता रहा। मैं जैसे धन्य हो गया। इस गीत का सौन्दर्य थाली और छोटी रोटी में नहीं है – 'कहती बूढ़ी दादी' में है। छोटी उम्र की बेटी या बहू को रोटी, थाली के नाप का पता नहीं हुआ है। ये अनुभूति की चिन्ता और दुख उसे पता है जो 60–70 वर्ष से इसे दृष्टि से अनुभव कर रही है। मैं इस चिन्तित अनुभूति के विस्तार पर निहाल हो गया। इसके बाद हर पत्रिका में मैं शान्ति सुमन को ढूँढ़ता रहा।

●

'नवगीत दशक' के अनेक नवगीतकार इस कवयित्री का पासंग भी नहीं

– डॉ० सुरेश गौतम

नवगीत दशकों में संकलित अनेक नवगीतकार तो इस कवयित्री का पासंग भी नहीं है। नवगीत की विकास–चेतना में रचयित्री शान्ति सुमन की गीत–पदचापें अंकित होनी चाहिये। इनका नकार गुटपरस्त साहित्यिक राजनीति का हिस्सा तो हो सकता है, नवगीत के साथ निष्पक्ष व्यवहार–न्याय नहीं। अतः शान्ति सुमन का नाम लिये बिना नवगीत का इतिहास अधूरा एवं अपंग होगा।

●

गीत के पक्ष में खड़ी

– सत्यनारायण

'ओ प्रतीक्षित' संकलन 1970 में प्रकाशित हुआ। इसमें संकलित गीत श्रेष्ठ पत्र–पत्रिकाओं में छपकर ध्यान आकृष्ट कर चुके थे। यह दौर नवगीत के उन्मेष का दौर था। उन्मेष अकारण नहीं था। यदि शम्भूनाथ सिंह की मानें तो नवगीत कोई आन्दोलन नहीं था। यह तो नई कवितावादियों द्वारा गीत पर किये जा रहे घताक प्रहार का परिणाम था। गीत की अस्मिता पर उंगलियाँ उठाई गईं। उसके अस्तित्व को नकारा जाने लगा। तबगीत के पक्ष में खड़ा होना खतरों से भरा एक साहसिक रचनात्मक पहल थी। किसी नयी प्रतिभा के लिये तो गीत लिखना अपने भविष्य को दाँव पर लगाना था। ऐसे में बिहार के एक छोटे से शहर मुजफ्फरपुर से नयी उम्र की एक कवयित्री ने अपने को बेहिचक दाँव पर लगाया और नवगीत के पक्ष में उठ खडी हुई।

●

किसान-जीवन के जीवन्त चित्र

– डॉ० सीता महतो

बाजूबन्द की जगह रक्तजवा, ट्रेन की छतों पर बैठकर सपनों का गाँवों में लौटना, गीत की पहली पाँती जैसा अपनापन का होना, बिन धुँआते छप्परों के घर की आँखों में अगहन का आँजना, बेटी सी कोमल हरियाली का सामने किलक कर खड़ा होना, कटे धान के खेतों में चिड़िया का दाना चुगने आना, कभी–कभी पोती–पोते का घुंघरू सा घर में बजना, गहना बननेवाले दिनों में

खेत खरीदना आदि ग्रामीण किसान–जीवन के जीवन्त चित्र हैं और इनमें विस्थापित मजदूरों की पीड़ा भी समायी हुई है।

●

शीर्ष रचनाधर्मिता

– डॉ० संजय पंकज

समकालीन कविता में जो कुछ भी मुक्तछंद में कहा जा रहा है, शान्ति सुमन गीत के माध्यम से उसी को जिस कुशलता से विस्तार देती हैं, वह एक चुनौती भी है और शीर्ष रचनाधर्मिता भी। इनके गीतों की लय में प्रलय का दिग्दर्शन है, राग में छिपी आग की रक्तिमता का प्रवाह है, और है समय–संताप का स्वर–विस्तार भी।

●

व्यापक परिवेश में हस्तक्षेप

– रत्नेश्वर झा

शान्ति सुमन हिन्दी में लिखती हुई मैथिली में आई हैं। भले इनकी मातृभाषा मैथिली हो, पर इन्होंने पहले हिन्दी में ही लिखा। इसलिये इनके मैथिली गीत हिन्दी गीतों से संस्कारित हुए हैं। लोकभाषा के गीतों में जो क्षेत्रीयता होती है, छोटा परिवेश होता है, सोच का प्रथित रूप होता है और संबंधों का सीमित विन्यास – शान्ति सुमन के गीतों ने इनका अतिक्रमण किया है। व्यापक परिवेश में हस्तक्षेप करते हुए इनके गीत व्यक्तिगत संबंधों से बाहर होकर सामाजिक संबंधों को गतिशील और विश्वसनीय बनाते हैं। अपने समकालीन मैथिली गीतकारों से इसलिये इनके गीत अलग और ऊपर के प्रतीत होते हैं।

●

समय, समाज, जीवन से एकरूपता

– चन्द्रकान्त

अपने गीतों की तरह शान्ति सुमन ने अपनी कविताओं में भी अपने समय, समाज और जीवन से अपनी एकरूपता बनाये रखी है। इनकी कविताओं का जीवन–यथार्थ इनके सामाजिक सरोकार से ही उत्पन्न हुआ है। समकालिक समाज में पल रहे जीवन–सत्य को कवयित्री ने अपने शब्दों में ढाला है।

इसलिये इनकी कविता किसी स्वप्न–लोक की कल्पना नहीं है और सच तो यह है कि इन्होंने आदर्श के छल–फरेब से भरे काल्पनिक इन्द्रजाल को भी काटने की कोशिश की है।

●

मध्यवर्ग की हिस्सेदारी के गीत

– डॉ० विश्वनाथ प्रसाद

शान्ति सुमन नवगीत की अकेली कवयित्री हैं। अभी तक 'ओ प्रतीक्षित' तथा 'परछाईं टूटती' नामक दो गीत–संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'ओ प्रतीक्षित' के गीत मध्यवर्ग की जिन्दगी की हिस्सेदारी के गीत हैं। इस हिस्सेदारी में यथार्थ का उत्पीड़न भी है और मुक्त क्षणों का उल्लास भी है। 'ओ प्रतीक्षित' में इन दोनों प्रकार की संवेदनाओं का जैसा निर्वाह है, वैसा 'परछाईं टूटती' में नहीं है। इसमें मुक्त क्षणों की भावुकता कहीं नये जीवन–संदर्भों में प्रगट हुई है और कहीं शाम या चाँदनी जैसे प्रकृति के उत्तेजक परिवेश में प्रकट हुई है। लेकिन शान्ति सुमन ने भावाकुल मनोदशा को लोक–संदर्भ से बिम्बों का चयन, रंगों के संयोजन और प्रतीकों की सृष्टि करके नियंत्रित किया है। उनकी यह संचेतना मुक्त क्षण के निजी प्रसंगों को लोक–संवेदना और सौन्दर्य के चौखटे में मढ़ देती है। शान्ति सुमन के लोक संदर्भों में मैथिल–परिवेश और सौन्दर्य–चेतना में रंगों की परख सर्वाधिक उल्लेखनीय है। 'ओ प्रतीक्षित' में समकालीन मध्यवर्ग की रिक्तता, तनाव, अकेलापन, उन्मुक्तता, बेपनाही, खीझ, उदासी, थकान, टूटन, बिखराव और निरुपाय विद्रोह के साथ उल्लास, उन्मुक्तता और रूमानीपन के दायरे में सिमट जाने वाला क्षण का मुक्त आभोग भी है। ये सब नारी मन की प्रतीतियाँ हैं, इसलिये इनमें अहसास की गहराई की जगह आवेग की तीव्रता अधिक है। इनके बीच से नारी की बेबस और बोझिल जिन्दगी उभरती है। 'परछाईं टूटती' में व्यक्ति और समूह दोनों स्तरों पर समकालीन जीवन की बेचैनी है, लेकिन यह भोगे हुए जीवन का अहसास नहीं, बल्कि मुहावरा है। शोर–शराबे की ऊब, बेरोजगारी का दर्द, भीड़ में खोये व्यक्ति की छटपटाहट, संवेदन–शून्यता, व्यर्थता का बोध, स्वप्न–भंग जैसी बातें शान्ति सुमन के निजी जीवन का अहसास न होने के कारण कथन मात्र बनकर रह जाती है। प्रेम में प्रतीकों और उपमानों से प्रगट होती हुई विह्वलता ही शान्ति सुमन का अपना अहसास है। 'ओ प्रतीक्षित' के बिम्बों में रूप की समग्रता और अनुभूति की गहराई है तो 'परछाईं टूटती' के छोटे–छोटे सधे बिम्बों में लोक–जीवन की परंपराओं, वस्तु–चित्रों और निर्धनता का चित्रण है। शान्ति सुमन ने रंग–बोध के लिए बिम्बधर्मी विशेषणों का बहुत प्रयोग किया है। लेकिन शान्ति सुमन का गीत–फलक

मुक्त क्षणों में नारी मन की तन्मयता, उल्लास और समर्पण को व्यक्त करने में जितना ओपदार है उतना अन्य संदर्भों में नहीं। यही कारण है कि एक राजनीतिक विचारधारा से प्रतिबद्ध होकर लिखे गये उनके बाद के जनगीतों में अन्तर्विरोध युक्त बिम्ब, बिखरा हुआ गीत–शिल्प और हठात् प्रयोग की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है।

('गीतायन' – पृष्ठ 20–21)

●

गीतों में एक पूरी दुनिया

– डॉ० अरुण कुमार

'भीतर–भीतर आग' के गीतों का संसार बहुत व्यापक है। इन गीतों के अन्तर में एक कथा बह रही है। ग्रामीण संस्कार ही नहीं, उनमें एक पूरी दुनिया है। शहर की ओर लौटते ही वह दुनिया अचानक विलुप्त होने लगती है। बहुत से इस व्यथा में ही अंत पा लेते हैं, लेकिन शान्ति सुमन इतने से मानती नहीं और आशा की नयी किरण लेकर गीतों में अवतरित होने लगती हैं।

●

अपनी जीवनानुभूति से लगते गीत

– देवेन्द्र कौर

शान्ति सुमन ने अपने जीवन में संघर्षों को अपनी रचनात्मक शक्ति माना है और उसे आत्मसात् कर अपनी लेखनी द्वारा ऐसा वातावरण सिरजा है कि हर वह व्यकित जो उनकी कविताओं से होकर गुजरता है उसे वह अपनी जीवनानुभूति–सी प्रतीत होती है।

●

रचना-दृष्टि वैज्ञानिक एवं प्रासंगिक

– शरदेन्दु कुमार

सृजन–कर्म को सामाजिक दायित्व माननेवाली उनकी (शान्ति सुमन की) रचना–दृष्टि निस्संदेह वैज्ञानिक एवं प्रासंगिक है, इस अर्थ में वे उन अधिकांश महिला रचनाकारों की जमात से अलग पहचान बनाती दीख पड़ती है, जिन्हें अपने नितान्त निजी भावजगत सेबाहर निकलना बिल्कुल रास नहीं आता।

●

उच्चस्तरीय कवयित्री

– डॉ० महाश्वेता चतुर्वेदी

जनवादी और मानवतावदी नवगीत की गंगा में अवगाहन करनेवाली शान्ति सुमन एक उच्च स्तरीय कवयित्री हैं जिनके सृजन में जागृति का स्वर है। सांकेतिकता–बिम्बों–प्रतीकों और प्रकृति के विविध परिदृश्यों के माध्यम से भावाभिव्यक्ति को सम्प्रेषणीय बनाना आपके गीतों की विशेषता है।

●

समसामयिक जीवन-यथार्थ की अभिव्यक्ति

– नन्द भारद्वाज

शान्ति सुमन के गीतों में सम–सामयिक जीवन–यथार्थ की सशक्त अभिव्यक्ति के साथ पारिवारिक संबंधों, मानवीय भावनाओं और प्रकृति के साथ मनुष्य के रिश्तों की अनूठी छवियाँ देखते ही बनती हैं। उनके प्रेमगीतों की खूबी यह है कि यहाँ प्रेमी या प्रेमिका के अन्तरंग प्रणय–निवेदन के स्थान पर जीवन–संघर्ष के बीच ही श्रमिक–दम्पत्तियों के प्रणय–भाव और श्रम का सौन्दर्य अपनी पूरी रागात्मकता के साथ प्रकट हुआ है।

●

गीत के विकास में महती योगदान

– डॉ० इन्दु सिन्हा

जब परम्परागत गीतों की धारा सूखने लगी थी, उसे दोयम दर्जे का साहित्य कहा जाने लगा था तब डॉ० शान्ति सुमन ने लोकचेतना, लोक संस्कृति से इसे संस्कारित किया। उसका पोषण किया और गीत के विकास में अपना महती योगदान दिया। लोकजीवन की सहज गंध से सुवासित इनकी रचनायें भारतीय जीवन के अधिक निकट हैं। इनकी सौन्दर्य–चेतना समय–सापेक्ष है। इनके गीतों में विलक्षणता एवं असाधारणता के बदले लोक संबंध–सहजता है। फलतः लोकप्रियता के निकष पर इनके गीत खरे उतरते हैं। नए चाक्षुष बिम्बों तथा लोकोक्तियों से मंडित इनके कई गीत आत्मीय छटा प्रस्तुत करते हैं।

●

गीतों के इतिहास में नाम

– डॉ० कीर्ति प्रसाद

इस प्रकार शान्ति सुमन ने गीतों के विशाल संसार में अपना महत्वपूर्ण स्थान सुनिश्चित कर गीतों के इतिहास में अपना नाम शामिल किया है। आनेवाले समय में जिसमें और भी कई पन्ने जुड़ने वाले हैं।

●

लोक जीवन के संस्कार

– डॉ० अंजना वर्मा

आज के संदर्भ में महानगरीय इन्द्रियबोध से उपजी कविताओं में जीवन का राग टूट सा रहा है और उस परिवेश में कवि–कर्म भी कठिन होता जा रहा है। ऐसे बिखरते हुए समय में जिन कवियों में लोकजीवन के संस्कार हैं वे सृजनशीलता को ऊर्जा प्रदान कर रहे हैं। यही तत्त्व शान्ति सुमन के गीतों को भी प्राणवान और सजल बनाये हुए है। उनके गीतकार का यह इन्द्रिय बोध अप्रस्तुतों, प्रतीकों और बिम्बों के रूपों में उनके रचना–संसार में दिखाई देता है जिसमें प्राकृतिक उपादान एक विशेष भूमिका अदा करते हैं।

●

वस्तुजगत का यथार्थ

– अमित कुमार

शान्ति सुमन ने गीत के धरातल पर तब प्रवेश किया जब नवगीत बनते हुए गीत को उनके जैसे रचनाकार की जरूरत थी। तब मुजफ्फरपुर एक छोटा शहर था जब अध्ययन और आजीविका के लिये उनको (शान्ति सुमन को) वह शहर मिला जहाँ अनगिनत असुविधाजनक स्थितियाँ थीं। फिर भी जीवन जीने की जिद उनकी कम रचनात्मक नहीं थी। कदाचित् कम उम्र में ही सयाने अनुभवों ने समय–साल के प्रति उनको चौकन्ना बना दिया था। इस चौकन्नापन के कारण उनकी आंतरिक कोमलता ने वस्तुजगत का यथार्थ ओढ़ना शुरू कर दिया था। इसलिए जिन दिनों उनके समानधर्मा रचनाकार प्रेम–गीत लिख रहे थे, शान्ति सुमन ने सामाजिक, आर्थिक विसंगतियों को देखना–समझना शुरू कर दिया था। ऐसी निरायास रचनाधर्मिता की धनी शान्ति सुमन ने अपने अनेक गीत–संग्रहों के द्वारा अपनी प्रामाणिकता सिद्ध की है।

●

लोकगीतात्मक सौन्दर्य

– डॉ० मधुसूदन साहा

लोकगीतात्मक सौन्दर्य और लोरी की कोमलता लिये उनके (शान्ति सुमन के) अनेक गीत हैं, जिनमें सहज बिम्बों के कुशल प्रयोग देखने लायक हैं। नये–नये बिम्बों और प्रतीकों की तलाश तो वे अवश्य करती हैं, किन्तु उनकी दृष्टि ज्यादातर अपने आस–पास बिखरी हुई जिन्दगी पर जाती है। वे अपने आंगन, चौबारे, कोठे, दलान, पोखर, बथान, खेत–खलिहान आदि से बिम्बों तथा प्रतीकों को पलकों की बरौनियों से पकड़–पकड़कर उठाती हैं और अपने गीतों में पिरोकर जीवन्त बना देती हैं –

कहीं–कहीं दुखती है घर की/छोटी आमदनी
धुआँ पहनते चौके/बुनते केवल नागफनी
मिट्टी के प्याले सी दरकी/उमर हुई गुमनाम

रोजमर्रे की जिन्दगी को उसी के मुहावरे में अभिव्यक्त करने में शान्ति सुमन को जितनी महारत हासिल है, उतनी बहुत कम रचनाकारों को है।

●

विविधतापूर्ण रचना-संसार

– मधुकर अष्ठाना

भाषा, कथ्य एवं कथन की दृष्टि से डॉ० शान्ति सुमन उन भाग्यशाली रचनाकारों में हैं जिन्होंने अपनी भावना के अनुकूल भाषा की खोज करने में प्रसिद्धि प्राप्त की है। उनकी प्रतिभाजन्य रागात्मक चेतना की उर्वर लेखनी से अनेक प्रतिमान ध्वस्त हुए हैं और अनेक प्रतिमान निर्मित हुए हैं। वर्तमान समय में वे हिन्दी क्षेत्र की प्रतिनिधि महिला रचनाकारों में अपना महत्व प्रतिपादित कर चुकी हैं और उन्हें नवगीत की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री कहने में आलोचकों को भी संकोच नहीं रह गया है। नवगीत के अनेक पक्षों में विपुल सृजन उनके विविधतापूर्ण रचना–संसार का द्योतक है। जहाँ वे नवगीत की जनोन्मुखी शाखा जनवादी गीतों की प्रमुख हस्ताक्षर हैं, वहीं मानव–जीवन से जुड़े अन्य पक्षों में भी संवेदना की गहराई का अवगाहन किया है। उनके संबंध में कहा जा सकता है कि नवगीत में उन्होंने इतिहास रचा है और दूर–दूर तक, विशेष रूप से महिला रचनाकारों में उनके शिखरीय व्यक्तित्व एवं कृतित्व का कोई स्पर्श भी नहीं कर सकता।

●

प्रमाण का दस्तावेज लेकर 'ओ प्रतीक्षित' प्रकाशित

शान्ति सुमन की गीत–रचना इस बात के प्रमाण हैं कि वे अपने समय की चुनौतियों से टकराती रही हैं, लगातार अमानवीय और अभद्र होते जा रहे जीवन–यथार्थ से जूझती भी रही हैं। नवगीत के उन्मेष के काल में जब कई वरिष्ठ रचनाकार नवगीत की प्रतिष्ठा के उन्नयन में जुड़े थे उन्हीं दिनों वाराणसी (शंभुनाथ सिंह), मुम्बई (वीरेन्द्र मिश्र), कलकत्ता (चन्द्रदेव सिंह), मुजफ्फरपुर (राजेन्द्र प्रसाद सिंह) की गीतात्मक धार को तेज करती हुई उमाकान्त मालवीय, ओम प्रभाकर, नईम, देवेन्द्र कुमार, सत्यनारायण, रामचन्द्र चन्द्रभूषण आदि के साथ मुजफ्फरपुर की एक युवा गीतकर्त्री अपने नवगीत–संग्रह के साथ गीत के मंच पर उपस्थित हुई। गीतकर्त्री शान्ति सुमन ही थीं और प्रमाण का दस्तावेज लेकर उनका नवगीत संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' प्रकाशित हुआ था।

– सम्पादकीय : 'शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि'

●

आत्मीय रिश्ते कायम करते गीत

– मधुकर सिंह

शान्तिसुमन के गीतों से गुजरते हुए अचानक केदारनाथ सिंह के गीतों का स्मरण हो आता है जो तत्काल आत्मीय रिश्ते कायम कर लेते हैं और सहसा एक पारिवारिक सुख–दुख के पूर्ण परिवेश में छोड़ देते हैं। तब तक एक अथक पीड़ा का बोझ कवयित्री का ही नहीं – पाठक का भी निजी बन जाता है।

●

संस्कार की सुरक्षित मानवीय करुणा के गीत

– पंकज सिंह

सारा का सारा जिया जाता हुआ वर्तमान का यथार्थ और उसके कई–कई संदर्भ शान्ति जी को जिस प्रक्रिया से गुजारते हैं वहाँ आक्रोश के बाद भी वे अपने संस्कार की सुरक्षित मानवीय करुणा भरी भावुकता और आस–पास के ठहरे हुए वातावरण को एक साथ अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों के स्तर पर गीतिल गतिमयता दे देती हैं।

●

अज्ञेय जैसी काव्यात्मक भाषा

– मनीष रंजन

एक सौ अंठानबे पृष्ठों में रचित 'जल झुका हिरन' एक उपन्यास से अधिक गीतिकाव्य ही लगता है। ऐसा उसकी भाषा के लावण्य के कारण लगता है। बहुत पहले अज्ञेय ने ऐसी काव्यात्मक भाषा का व्यवहार अपने उपन्यासों में किया था। कथ्य के कारण सही, पर भावात्मक सौन्दर्य के कारण उनके उपन्यास अधिक चर्चा में आये। भाषा की नाटकीयता अथवा उसके नाटकीय सौन्दर्य ने पाठकों को अधिक प्रभावित किया था। आज भी युवाओं में उनके उपन्यास अधिक लोकप्रिय हैं। 'जल झुका हिरन' उपन्यास का शीर्षक पहले तो एक ऐन्द्रीय बिम्ब ही प्रस्तुत करता है। जल पर झुका हिरन का चित्र ही बहुत कुछ कह देने में समर्थ है।

●

अनेक कथ्य-बिम्बों के प्रथम प्रयोक्ता

– वीरेन्द्र आस्तिक

रेखांकन योग्य एक तथ्य यह भी है कि कवयित्री नवगीत के इतिहास में अनेक काव्य–बिम्बों के प्रथम प्रयोक्ता के रूप में प्रसिद्ध है। मेरी दृष्टि में परवर्ती गीतों की जमीन के लिये ऐसे गीत बीज–गीत की श्रेणी में आते हैं। सन् 1970 की समयावधि में इस रचनाकार की खोजपूर्ण वैचारिकता और कल्पनाशीलता बेमिसाल है –

'माँ की परछाई सी लगती / गोरी–दुबली शाम, पिता–सरीखे दिन के माथे / चूने लगता घाम' या 'जब कोई बच्ची वर्षा में नहाती है / घर की याद आती है।'

सुमन जी की रचना प्रक्रिया में एक दूसरा तथ्य भी गोचर होता है, जहाँ गीतधर्मिता अपनी सीमाओं का विस्तार करती है अर्थात् उसने बनी–बनाई सीमा (मानक, सिद्धांत आदि) का अतिक्रमण किया है।

●

प्रतिभासम्पन्न रचनाकार

– श्रीकृष्ण शर्मा

शान्ति सुमन बहुमुखी प्रतिभा–सम्पन्न रचनाकार हैं। नवगीत व जनगीत के

अतिरिक्त उन्होंने लोकगीत भी लिखे हैं। उनके मैथिली गीतों का संग्रह 'मेघ इन्द्रनील' है। उनके गीतकार की जड़ें मिथिला में हैं।

●

आदमकद सामाजिक

– अनूप अशेष

शान्ति सुमन आदमकद सामाजिक हैं। इनके नवगीतों में एक अपील है, खिंचाव है जो मन को बाँधता है। शान्ति सुमन का छांदसिक कविता में आना या उभरना मैं बड़ी घटना मानता हूँ। उँगली पर गिनी कुछ पुरानी कवयित्रियों को छोड़ दें तो गीत–कविता का लोक एकदम सूना था। इनमें अधिकाश गुम गईं। शान्ति सुमन अपने लेखन, प्रकाशनकाल से लेकर आज भी नवगीत कविता की अकेली महत्वपूर्ण, समर्थ कवयित्री हैं। दूसरा कोई नाम ऐसा नहीं जिसे नोट किया जा सके।

●

गीत की नई ऊर्जा

– शंकर सक्सेना

बीती सदी के उत्तरार्द्ध में भ्रष्ट मंच और निरन्तर छीजते जीवन–मूल्यों ने साहित्यिक अस्मिता पर भी करारे प्रहार किये हैं। इस टकराव में निरन्तर अमानवीय और अभद्र जीवन–यथार्थ से दो–दो हाथ करते गीत को नई ऊर्जा और उसका पसीना सुखाकर प्राण–वायु देने का काम जिन लोगों ने किया उनमें प्रथम पंक्ति की दावेदारी में जो नाम स्वस्फूर्त स्वाभाविकता से उभरकर आये उनमें से एक नाम शान्ति सुमन भी है।

●

गीत क्षमताओं का विस्तार कहीं अधिक

– कुमार रवीन्द्र

डॉ0 शान्ति सुमन एक ऐसी गीत–कवि हैं जिनका अधिकांश सृजन 'जनगीत', 'जनवादी गीत' संज्ञाओं से पारिभाषित किया जाता रहा है। उनकी गीत क्षमताओं का विस्तार उनसे कहीं अधिक है। निश्चित ही जनबोध उनकी रचनाओं का मूल भाव है। किन्तु 'जनगीत' और 'जनवादी गीत' की परिधियों

से बाहर भी जनबोध है, जिसे तमाम अन्य काव्य–विधाओं में भी अभिव्यक्ति मिली है।

●

अंतर्वाह्य रूप से जनता की रचनाकार

– डॉ० माधुरी वर्मा

शान्ति सुमन को देखने और उनके गीतों को पढ़ने से ही लगता है कि वे एक अंतर्वाह्य रूप से जनता की रचनाकार हैं। अपने पाँव के नीचे की जमीन को उन्होंने कभी अपने से हटने नहीं दिया। आकाश उनके लिये सिर्फ छत है, उड़ने की कोई जगह नहीं। मौन आत्मपरक होता है। इसलिये इनके गीत में मौन के लिये कोई जगह नहीं है।

●

कविता को बड़ा फलक देने की पक्षधर

– यश मालवीय

रागात्मकता शान्ति सुमन के गीतों का रीढ़ तत्त्व है। यह व्यक्ति का राग तो है ही, वृहत्तर सामाजिक परिप्रेक्ष्य का अनुनाद भी है। वह काव्य–रूढ़ियों से समझौता नहीं करतीं। वह कविता को एक बड़ा फलक देने की पक्षधर हैं। इसलिये सामान्य बिम्ब एवं प्रतीक उठाकर भी उन्हें एक वैशिष्ट्य दे देती हैं। सामने की देखी हुई चीज भी लगता है जैसे पहली बार देख रहे हैं, वह अपनी कविता की आँख से वह कोण उपलब्ध कराती हैं जो सामान्य आँखों से प्रायः नजरअंदाज हो जाया करते हैं।

●

लय-सौन्दर्य से भरे शब्द-गठन, भाषा की अनुकूलता

– डॉ० चेतना वर्मा

'परछाईं टूटती' के इस गीत 'दुख रही है अब नदी की देह बादल लौट आ' – में कई पाठकों–समीक्षकों ने रूमानियत देखी, पर इस गीत की रचयित्री से मैंने जाना कि लगातार विपर्यय को जीते हुए मन ही कहाँ मन रह जाता है। वह देह हो जाता है। दीखने लगती हैं उसकी पीड़ायें, वे निशान जो समय

लगाते हैं। किसान–जीवन के वे परिताप इसमें व्यक्त हुए हैं जो बादल के नहीं बरसने पर फटी हुई धरती अनुभव करती है। बादल के बरसने से ही धरती अन्नमयी होती है।...

शान्ति सुमन के गीतों के संसार में गीतों को पृष्ठभूमि और संगति देते हुए उनके लय–सौंदर्य से भरे शब्द–गठन, भाषा की अनुकूलता, श्रमिक वर्ग की स्त्रियों के पहनावे, गहने और सौन्दर्य के अन्य उपकरण भी देखने योग्य हैं। कभी तो पसीने भी उनके लिये जेवर बन जाते हैं।

●

जनसमाज से जुड़ाव

– डॉ० लक्ष्मण प्रसाद

घर–द्वार और खेत–बधार उनकी रचना के प्राणाधार रहे हैं। यह चेतना किसी भी रचनाकार को जन–समाज से जोड़कर उसको सुख–दुख की अनुभूति तक ले जाती है। शान्ति सुमन जानती हैं कि परकाया–प्रवेश के लिए अपनी काया में परदुखकातरतापूर्ण हृदय होना आवश्यक है। यही रचनाकार की अपनी जमा पूँजी है जिसको लेकर वह सृजन के लोक में उतरता है।

●

बचे हुए गँवई मन और सरोकार

– डॉ० अशोक प्रियदर्शी

डॉ० शान्ति सुमन के गीतों को पढ़ते–सुनते हुए जब हमारी आँखों में आम जन की पीड़ा के रूप उभरते रहते हैं तभी यह आश्चर्य होता है कि यह विदुषी कवयित्री अपने गँवई मन, सरोकार और संस्कार को बचाये रही। अभिधात्मक विवरणों के बीच लाक्षणिक–व्यंजक संकेत छोड़ जाने की कला भी कवयित्री खूब जानती हैं।

●

वर्डस्वर्थ की तरह किसानों की महत्व-प्रतिष्ठा

– कनकलता रिछि

पाश्चात्य कवि वर्डस्वर्थ ने क्रांतिकालीन फ्रांस में उपेक्षित किसानों की

महत्व–प्रतिष्ठा हेतु उन्हें अपने गीतों का विषय बनाया। सामंती सोच के विरूद्ध यही जनवादी तेवर हम डॉ० शान्ति सुमन के गीतों में पाते हैं। वे अपने गीतों में शोषण से त्रस्त दुर्दशाग्रस्त अभावमय ग्रामीण जीवन को अभिव्यक्त करती हैं। उनके गीत गाँवों में बसनेवाली भारतमाता की आत्मा की मर्मान्तक पीड़ा को वाणी देते हैं।

●

कालजयी गीतों की रचना

– दिवाकर वर्मा

डॉ० शान्ति सुमन समकालीन कविता में गीत को सुप्रतिष्ठापित करने के अनथक प्रयास करते हुए सृजनरत हैं। इस प्रयास में उन्होंने नवगीत से जनगीत तक की यात्रा करते हुए अगणित कालजयी गीतों की रचना की है, किन्तु उनके रचना–संसार पर दृष्टिक्षेप से एक तथ्य उभरकर आता है कि उनके कालजयी गीत वे हैं जो राजनीतिक न होकर व्यापक मानवीय चिन्ता से सम्पृक्त हैं।

●

बेसुरे समय में भी दुर्लभ गीत

– सूर्यभानु गुप्त

साहित्य में आपके गीत पढ़ने के सुख मिले। आज के बेसुरे समय में ऐसे गीत अब दुर्लभ हो गये हैं और दुर्लभ हो चुके हैं ऐसे आयोजन जहाँ सुनने–सुनाने की ललक हो अन्दर से। अजीब समय है...। ....आपके गीत भीतर से उद्वेलित करते हैं, विचलित और तन्मय भी।

●

बहुत दूर तक जानेवाले गीत

– डॉ० सुप्रिया मिश्र

शान्ति सुमन के गीत बहुत दूर तक जानेवाले गीत इसलिये हैं कि उनके गीतों में गुँथे हुए संदर्भों, स्थितियों, परिदृश्यों के छोटे–छोटे तिनकों में भी बड़े–बड़े अर्थ भरे हुए हैं। इनके गीतों की धरती बड़ी है और आसमान तो नापने में नहीं आता। शान्ति सुमन ने गीतों को लिखा ही नहीं, जिया भी है। शान्ति

सुमन ने नवगीत से जनगीत की एक लम्बी दूरी तय की है। इस दूरी को तय करने में उन्होंने कहीं ठहराव का सहारा नहीं लिया।

●

अछूती लय और छन्द

– माधवकान्त मिश्र

शान्ति सुमन के गीतों में एक अजीब अछूती लय और छन्द एक सधी हुई ताल के साथ आत्मीय स्तर पर बातचीत के लिये पाठकों को विवश करते हैं। पाठक को बातचीत से रस इसलिय मिलता है कि जीवन के मौजूदा संघर्षों से वह बातचीत पाठक को कहीं गहरे जोड़ती है।

●

और एक पाठकीय प्रतिक्रिया : गाँव की मिट्टी की सोंधी गंध

– शिशुपाल सिंह 'नारसरा'

'समय सुरभि अनन्त' में आपकी काव्यकृति 'सूखती नहीं वह नदी' की श्री प्रणव सिन्हा द्वारा लिखी समीक्षा पढ़कर अभिभूत हुआ। आपका जन्म किसान परिवार में हुआ, यह जानकर अपार प्रसन्नता हुई क्योंकि मैं स्वयं ग्रामीण परिवेश एवं किसान परिवार से हूँ। आपकी कविताओं में गाँव की मिट्टी की सोंधी गंध है, नदी है, पटेर और सरपत के हरे–हरे पत्ते हैं, जौ, गेहूँ और सरसों हैं। गाँव का सरपंच है, गोबर उठानेवाली 'घसगढ़नी' है। आपकी कविताओं में समाज में आहत होती अस्मिता है। संवेदनाओं से लबालब इन कविताओं में समय का सच है, जीवन का यथार्थ है। आपने दुख, कुण्ठा, घुटन और त्रास को वाणी दी है। समीक्षक ने ठीक ही लिखा है – 'अपने समय और समाज के अंधेरों को खुरचती हुई ये कविताएँ यथार्थ की पहचान और सघन संवेदनाओं की कविताएँ हैं।' जीवन के झंझावतों के बीच भावनाओं की नमी को बचाकर रखनेवाले इस कविता–संग्रह के लिए आपको बधाई और साधुवाद।

– फतेहपुर (सीकर), राजस्थान–332301

●

एक भावसम्पन्न काव्यप्रसून

❑ डॉ० महाश्वेता चतुर्वेदी

भावुकता से हैं भरे शान्ति सुमन के गीत।
बात हृदय की कह रहे इसीलिए हैं मीत।।

नई क्रान्ति की दृष्टि से सरावोर हैं गीत।
अग्निपंख बन मेटते जाते हैं भव-भीत।।

कचनारी मन होसका कभी नहीं निरुपाय।
धूप रंगे दिन बन गये उन्नति का पर्याय।।

भव्य हिमालय प्राप्त कर पीड़ा अन्तर्धान।
अमृत देता दीखता शिव, करके विषपान।।

हों शतायु ये कामना करती बारम्बार।
हिन्दी के साहित्य को दें शोभित उपहार।।

स्मृतियाँ बन गुलमोहर देती हैं आलोक।
'शन्ति सुमन' 'श्वेता' कहे दीखीं सदा अशोक।।

■

प्रस्तुति - श्रुति सिन्हा

वृत्त :

❑ शान्ति सुमन : व्यक्ति और कृति

शान्ति सुमन : व्यक्ति और कृति

❑ डॉ० सुनन्दा सिंह

शान्ति सुमन सुप्रसिद्ध नवगीतकार एवं वरिष्ठ जनवादी गीतकारों में एक अपनी अलग पहचान वाली गीतकार हैं। समकालीन नवगीत एवं जनवादी स्त्री गीतकारों में इनका स्थान सर्वोच्च है। शान्ति सुमन ने गीत की इन दोनों धाराओं को उच्चस्तरीयता दी है। गीत की दुनिया में इनका अस्तित्व बहुत बड़ा है, पर ये मेरी/हमारी 'मैम' रही हैं। कॉलेज में प्रोफेसरों से 'मैम' कहकर ही हम बातें करती थीं, पर शान्ति सुमन जी को कभी यह सम्बोधन स्वीकार नहीं हुआ। वे कहती थीं – 'आपलोग मुझको दीदी ही कहिये। इस शब्द में जितनी आत्मीयता और सम्मानजन्य लगाव है, वह दूसरे सम्बोधन में नहीं। मैम शब्द की गलत आधुनिकता से हमारा व्यक्तित्व घटता है। यहाँ इसको ध्यान में नहीं रखा जाता कि आधुनिकता केवल शब्द और बाहरी आवरण में नहीं होती। आधुनिक अन्दर से हुआ जाता है, अपने संपूर्ण आंतरिक शिल्प से इसको व्यक्त किया जाता है। केवल पहनावे–ओढ़ावे नहीं, इसमें सामान्य व्यवहार से लेकर भाषा एवं लोकाचार की सारी सीमाएँ आती हैं। पश्चिमी देशों में तो बच्चे 'क्रेच' में पलते हैं, माँ से उनकी अपेक्षाकृत कम देखा–सुनी होती है। इसलिये मॉम या मम्मी शब्द चल जाता है, पर हमारे घर में तो बच्चे माँ की ममता की छाँव में ही पलते हैं। इसलिये माँ जैसा कोई दूसरा आह्लादकारी, वात्सल्य से भीगा हुआ शब्द हो ही नहीं सकता। हाँ, कार्यालयों में राज–काज में मैम शब्द इसलिये चला हुआ है कि वहाँ की सारी व्यवस्था अंग्रेजियत में डूबी हुई है। जिस तरह कभी 'बाबू' शब्द प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गया था, मैम सम्बोधन भी प्रतिष्ठा का पर्याय बन गया है। उन लोगों को मैम कह लीजिये जिनको यह शब्द अधिक गौरव देता है। मैं हिन्दी साहित्य पढ़ाती हूँ। इसलिये मुझको दीदी ही बनी रहने दीजिये। मुझको आदर से अधिक स्नेह और आत्मीयता में विश्वास है।' इस तरह ये हमारे लिये दीदी ही बनी रहीं।

अब तो मैं भी पचास के पास पहुंच रही हूँ। इतने लम्बे समय तक मैं गीतकार शान्ति सुमन के व्यक्तित्व की सहज गरिमा को देखने–सुनने का अनुभव संचित करती रही हूँ। महन्त दर्शनदास महिल कॉलेज के

हिन्दी–विभाग में बहुत वर्षों के बाद ऐसी लोकप्रिय प्रोफेसर आई थीं। इनकी विद्वत्ता और व्यवहार की सहजता से छात्रायें बहुत प्रभावित थीं। इनके वहाँ रहने तक कॉलेज के सारे सांस्कृतिक कार्यक्रम जिनमें कुछ तो बड़े ही भव्य और बिहार के किसी भी कॉलेज से अलग और ऊपर के कार्यक्रम हुए, शान्ति सुमन जी के संचालन और तैयारी की पूरी प्रक्रिया से ही संभव हुए। कलाकार छात्राएँ उनके स्नेह और मार्गदर्शन से इतनी उत्साहित होती थीं कि घंटों रिहर्सल करने के बाद उनको थकान का अनुभव नहीं होता था। शान्ति सुमन जी की बोलचाल से ही अपनापन झरता था। वे कहती थीं कि कभी हमलोग भी आपकी जगह होती थीं। आज हम यहाँ हैं तो आपलोग भी कुछ वर्षों में यहाँ पहुंचने ही वाली हैं। छात्राएँ जिनमें प्रथम वर्ष से लेकर ऑनर्स अंतिम वर्ष तक की होती थीं, शान्ति सुमन के शब्द उनमें नये विश्वास भर देते थे।

बहुत वर्षों तक महाविद्यालय पत्रिका का प्रकाशन बन्द था। प्राचार्या के परामर्श से शान्ति सुमन जी ने पत्रिका प्रकाशन की नयी शुरूआत की। पत्रिका का नया नाम रखा – 'दर्शना'। उनके कुशल संपादन में उसके कई अंक प्रकाशित हुए। खोज–खोज कर उन्होंने नयी से नयी छात्रा की रचनाओं का संचयन किया। उनकी रचनाशीलता को प्रोत्साहन दिया। सारी रचनाओं की परिशुद्धि से लेकर प्रूफ देखने तक का कार्य किया और इस तरह महन्त दर्शनदास महिला महाविद्यालय की रचनात्मक छवि उजागर की और कॉलेज में साहित्यिक वातावरण को ऊर्जा दी।

फिर भी शान्ति सुमन जी कॉलेज की व्यवस्था से प्रसन्न नहीं थीं। जितने वर्षों तक कॉलेज में इन्होंने प्राध्यापन किया, इनको लगता रहा कि इतने समयों को इन्होंने अपने विरुद्ध जिया है। इस अनुभव को इन्होंने व्यक्त किया भी है। अपने उपन्यास 'जल झुका हिरण' (स्मृति प्रकाशन), इलाहाबाद, वर्ष – 1976 ई0) में 'कुछ पहले' शीर्षक से लिखते हुए इन्होंने कहा है – 'अपने संघर्ष के जिन दिनों में यह उपन्यास लिख रही थी, उनमें पुत्र मुकुल और पुत्री चेतना का अन्यतम सहयोग रहा था। कॉलेज से नित्य प्रति ऊबी मनःस्थिति लेकर लौटती थी, इधर रचनात्मक तनाव से मन बेचैन होता था। लिखने की स्थिति नहीं होती थी और लिखे बिना रहा नहीं जाता था। वैसे कठिन क्षणों में मैंने कष्ट को आत्मीयता दी और पक्ष–विपक्ष सबको अपना बना लिया। जीवन के

प्रति आत्मविश्वास तभी मुझमें जागा था। उन तमाम तनावों और प्रतिरोधों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मेरी रचनात्मक क्षमता को सम्पन्न किया।'

मैं शान्ति सुमन के व्यक्तित्व के बारे में अपने अनुभव कहूँ उससे पहले मैं उनके ही शब्दों में उनके व्यक्ति को समझने की चेष्टा करती हूँ। वे बड़े उदास दिन बीते थे। कई वर्ष अस्थायी व्याख्याता के पद पर रहने से उनका मानसिक सौमनस्य थोड़ा विचलित हुआ था। यद्यपि '72 से उनकी सेवा स्थायी हो गई थी, फिर भी मन से वह तकलीफ नहीं गई थी। लोगों की कही हुई बातें, पैसे और पैरवी के तंत्र उनके मन में कौंधते रहते थे। एक ओर इतनी डिग्रियाँ, विदुषी लोकप्रिय प्रोफेसर होने का गौरव और दूसरी ओर अस्थायी व्याख्याता होना अपने लिये ही नहीं, अपनी तरह के और लोगों के लिये भी उनको अन्याय और अपमान लगता था। सुनने में आता रहता था कि 'उसका' कमीशन में इसलिये हुआ कि उसने अध्यक्ष के निर्माणाधीन घर के लिए पचास बोरे सिमेन्ट और दो ठेले लोहे के छड़ पहुंचाये। यह सब सुनना भी उनको मिहनत के मुंह पर तमाचा जैसा लगता था। अपनी इस मनःस्थिति की अभिव्यक्ति उन्होंने 8 जनवरी 1973 के 'अभिमान' (साप्ताहिक पत्र) में की है। 'सूत्रपात' नामक उस संक्षिप्त नोट्स में उन्होंने लिखा है –

'किसी कविता की शुरूआत और नए वर्ष की शुभकामनाएँ देने के पहले मेरे मन में हर बार एक उदास बाँसुरी बजती है और कविता की रचना प्रक्रिया पर विचारने को विवश हो जाती हूँ। मुझको सम्बन्धों के ढेर सारे धागे उलझे हुए लगने लगते हैं और साठ के बाद जन्मे संबंध की व्यापार–भावना पर ढेर सारी मक्खियों की भिन–भिनाहट सुनाई पड़ने लगती है। ईलियट ने सही कहा है कि लेखन अपने व्यक्तित्व से पलायन का ही दूसरा नाम है। लेकिन अपने लिये – वही व्यक्तित्व वास्तविक है जो मेरी रचनाओं में है। इससे अलग या सम्पृक्त कुछ भी नहीं। मैं हूँ – मेरी रचनायें हैं – उन रचनाओं का सूत्रपात होता है, सूत्रपात का कोई कारण विशेष भी होता है – पर उसमें और मुझमें कुछ दूरी होती है – जैसे बाँहों से साँसों की दूरी। अपने लेखन व्यक्तित्व में – मैं अकेली हूँ – लेकिन लेखन के बाहर मैं अकेली हूँ ही नहीं। वह सब मेरा व्यक्तित्व बनाता है जो मेरे आसपास रहा है, वे स्थितियाँ और

लोग – भी मेरे इस जीवन के हिस्सेदार हैं जिन्हें अगर गिनाना शुरू करूँ तो डाल से उड़नेवाली फुर्र–फुर्र चिड़िया की कहानी बन जाए – लेकिन लेखन के पीछे वाले व्यक्ति को इसके बिना – पा सकना – भी संभव नहीं। एक बात है कि मेरे लिये किसी खास आदमी या चीज का प्रश्न एक और अवसर जरूर देता है। मेरे दोनों रूप आमने–सामने खड़े होकर एक दूसरे को अजनबी निगाहों से तोलने–परखने लगते हैं, शायद! कभी–कभी मिलते भी हैं – और जब मिलते हैं तो मैं जान ही नहीं पाती कि वे एक दूसरे का स्वागत कर रहे हैं या फिर एक और विदा का सूत्रपात.....।

फिर एक और विदा का सूत्रपात.... पता नहीं कौन क्या अर्थ निकाले। मुझे तो हमेशा यही लगता है कि मेरा हर संपर्क हर पल एक नई विदाई है। मिलना शायद गति और विदाई नियति है – और शायद यह नियति ही अपने चिह्न छोड़ जाती है। जगह–जगह प्लोटफार्म हैं, न वे बिछे हैं, न वे उठे हैं। जगह–जगह रूमाल हिल रहे हैं – हाथ हिल रहे हैं – टा–टा–बाई–बाई। डब्बे बदलते – आदमी बदलते हैं, लेकिन कुछ तार हैं जो खंभों पर हर जगह लिपटे हैं – साथ हैं और हर यात्रा के दूर खड़े गवाह हैं। उनकर कहीं नीलकंठ, कहीं कौवा – कहीं कोई कटी पतंग लटकी है। लाल साहब कहते हैं कि तुम बेहद निर्णय–दुर्बल हो – नहीं जानती कि निर्णयदृढ़ कौन है ? मैं तो नहीं ही हूँ। सच कहूँ, मुझे तो लगता है – आज हर व्यक्ति नहीं है। जिसका परिस्थितियों पर नियंत्रण नहीं – वह हो भी कैसे ? हर पल कसम खाती हूँ कि पैदल सफर करूँगी – पर घंटे आध घंटे पैदल चलने के बारे में कह अर्थात् पैदल चलने की संभावना की पूरी–पूरी छूट ले चुकने के बाद रिक्शा कर लेती हूँ। पता नहीं संकल्प गन्तव्य तक पहुंचने में है या यात्रा में साधनों को बहुत गंभीरतापूर्वक लेने में....। गन्तव्य को लेकर मन में कोई दुविधा होती तो शायद आज मैं कोई शिवानी जैसी लेखिका होती।

मुकुल के आठवें वर्ग में नाम लिखाने की समस्या है और लगता है, नया वर्ष आ गया है। चेतना की कोर्स की फिर से नई किताबें खरीदनी हैं और लगता है कि नया वर्ष आ गया है। नया कुछ हो न हो, वर्ष नया है। इसी से संतोष है। नया वर्ष विदा का एक और सूत्रपात।'

1966 के बाद '72 के पूर्वार्द्ध तक शान्ति सुमन के अनुभव में व्यवस्था

का वैसा अन्तर्विरोध घर बना रहा था जिसमें जनतंत्र के सारे जनविरोधी रवैये खुलकर सामने आ रहे थे। शान्ति सुमन कोई एक उदाहरण नहीं थीं, उनके जैसे कई मेधावी और सुपठित लोगों की वही स्थिति थी। 'बिहार डाक' (मुजफ्फरपुर से प्रकाशित पत्र) के 12 मार्च 1973 के अंक में सम्पादक सुरेश अचल ने बिहार डाक के लिये विशेष लेख लिखकर रेखांकित करते हुए 'अपनी मुलाकात' को बॉक्स में छापकर 'हिन्दी की अपनी पहचानवाली एकलौती कवयित्री डॉ0 शान्ति सुमन से बकलम खुद' शीर्षक से उनकी बड़ी सहजता से कही गई बातों को प्रकाशित किया है। उन्होंने जो कुछ लिखा है, यहाँ प्रस्तुत है –

जीवन में जो घटित हुआ है, सबका हिसाब करना संभव नहीं। पर इतना है कि अब तक दो काम मैंने किए ही नहीं। लॉटरी के टिकट नहीं खरीदे और घर में मनी–प्लांट नहीं लगाया। कोई पूछे भी कि ऐसा क्यों नहीं किया तो इतना ही कहूँगी कि ऐसा अकारण नहीं है।

जीवन जहाँ से शुरू हुआ, वहाँ से शुरू करूँ तो हिन्दी तिथि से कोई आश्विन पूर्णिमा की रात थी, जब मेरा जन्म हुआ जो बाद में गलत होकर अनन्त चतुर्दशी की तिथि हुई। बाबूजी की डायरी में देखा था कि वह सन् 44 का सितम्बर महीना था। मेरा जन्म उत्तर बिहार के सहर्षा जिले में कासीमपुर नामक ऐसे निपट देहात में हुआ जिसके पोर–पोर में अन्धविश्वास और रूढ़ियों के ताबीज बँधे थे (हैं भी)। अंग्रेजी शासन तंत्र में बाबूजी डिफेन्स की किसी अच्छी आयवाली नौकरी में लगे थे। इसीलिए बचपन के बहुत सारे वर्ष जमालपुर (मुंगेर) में बीते। वहीं मेरी प्रारंभिक शिक्षा भी प्रारंभ हुई। परन्तु फिर भी, गांव में सरस्वती पूजा के दिन मेरे छोटे भाई दिनेश के साथ वैदिक रीति से मेरा भी अक्षरारंभ हुआ। संयुक्त परिवार होने के कारण उसकी खूबियों और खामियों को निकट से देखने का मौका शुरू से ही मिला। पर अपने जन्म के समय मैं अकेली शिशु थी अपने पूरे घर में और काफी दिनों तक यह स्थिति रही जब तक मुझसे मेरा छोटा भाई नहीं हो गया। अतएव मुझे जो प्यार मिला उसमें सम्मान के भाव की किंचित् गंध भी शामिल रही। मेरे चचेरे दादा उस समय जीवित थे जो मुझे अपनी आँखों की ज्योति समझते थे। किसी चीज को अस्वीकार कर देना मेरे लिए बहुत सहज था। दो बच्चों की लड़ाई में भी मेरी बात ही मान ली जाती थी। इस तरह मेरे संस्कार

में स्वाभिमान, अहं और रोब–दाब के साथ–साथ व्यक्तित्व की पृथक पहचान भी सम्मिलित होती गयी। मेरी एक चचेरी छोटी बुआ थी जिसको मैं बहुत तंग करती थी। हाईस्कूल तक यह बात रही कि जब कोई मेरा सहपाठी या साथ खेलने वाले बच्चे मेरी शिकायत करते थे तो अन्दर ही अन्दर मुझे खुशी होती थी कि मैं कहीं इनसे विशिष्ट हूँ।

अपने पड़ोस के कस्बेनुमा गाँव सुखपुर हाईस्कूल से मैंने प्रवेशिका की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। अब मेरे आगे पढ़ने की समस्या थी। बाबूजी बहुत चाहते थे कि मैं पढ़ूँ पर घर के लोग तथा अन्य संबंधियों ने उन्हें सलाह दी कि अब विवाह के बाद ही मेरा अध्ययन–क्रम जुड़ सकेगा क्योंकि तब बेटी को गांव से बाहर भेजकर पढ़ाना पूरे समाज के मुँह पर तमाचा मारने के समान था और मेरे बाबूजी ऐसा नहीं कर सके। मेरे घर के लोगों को लगा कि मैं सयानी हो गई हूँ। पर मेरा मन अब भी बचपन की उन्हीं याद – रही कहानियों के जंगल में भटक रहा था जहाँ कई घरौंदे मैंने वैसे ही बनाकर तोड़ दिये थे और कुछ टूट रहे घरौंदों को बड़े एहतियात से रख छोड़ा था।

फिर 25 फरवरी 1959 को मेरा विवाह पूर्णिया जिले (तब) के भद्रेश्वर (फारबीसगंज) नामक गांव में हुआ। श्री जागेश्वर लाल दास मेरे पति हैं। उसी वर्ष जुलाई में लंगट सिंह महाविद्यालय मुजफ्फरपुर में मेरा नामांकन प्री–यूनिवर्सिटी में हुआ। मैं अत्यंत प्रसन्न थी कि मेरी संवेदना को समझने वाले लोग मिले थे। फिर मैंने बी0 ए0 प्रथम भाग की परीक्षा भी पास कर ली। इस बीच 16 फरवरी '61 को मेरे प्रथम पुत्र का जन्म हुआ। हमने बड़े प्यार से उसका नाम 'मुकुल' रखा। तब इस नाम से प्यारा कोई नाम नहीं लगा था। यद्यपि घर में मुकुल की देखभाल के लिए काफी लोग रखे गये थे, पर मुझे बहुत अधिक समय उस पर देना होता था। कभी–कभी पढ़ने के लिए बहुत समय पास नहीं होते थे। यह एक संदर्भ ही था कि मेरे एक जेठ के एक पुत्र भी मेरे सहपाठी थे। प्री में फिर भी मुझे प्रथम श्रेणी मिली। आनर्स की परीक्षा बड़ी–बड़ी वाधाओं के बीच मैंने दी। परीक्षा के बाद मेरी पुत्री चेतना का जन्म हुआ। घर के काम–काजों में भी समय देना था – क्योंकि घर के कामकाज के लिए जो लोग रखी गयी थीं, वे अधिक समय अपने को मेहमान ही समझती थीं निश्चित रूप से 'दादी' की भूमिका मेरे जीवन की निर्मिति में अन्यतम

है। उसकी स्नेहिल छांव में मेरा हर दुख सुखद हो उठता था। दादी का लहू और पसीना मेरे व्यक्तित्व के रेशे–रेशे में समाया हुआ है। उसने जितना त्याग मेरे लिए किया, उतना प्रतिफल देना मुझसे संभव कहाँ हुआ ? इस प्रकार 1965 में मैंने एम0 ए0 (हिन्दी) प्रथम श्रेणी में किया। बी0 ए0 में कुछ अंकों से मुझे प्रथम श्रेणी नहीं मिली थी। यह भी एक संदर्भ ही है कि एम0 ए0 में कुछ अंकों से मुझे स्वर्ण पदक नहीं मिला। अपनी नियति को अब तक मैं स्वीकार करने की मुद्रा में आ गयी थी। जिस आवोहवा में मैं साँस ले रही थी, वह मेरे लिए एक अलग वातावरण बुनती जा रही थी जहाँ मैं नितान्त अकेली थी। मुझको कोई प्रोत्साहित करने वाला भी नहीं था। मुजफ्फरपुर मेरा शहर नहीं था। वह अब भी मेरा शहर नहीं हुआ है, पर तब तो इसकी मिट्टी में मेरे लिए गजब की वीरानगी थी। हाँ, सम्बन्ध एक आन्तरिक सम्बन्धहीनता से भरा दीखता था। यह सब मेरे लिए नया अनुभव था। जो कुछ भी हो उन समस्याओं और उलझनों का आभार स्वीकारती हूँ जिन्होंने मुझे इस बिन्दु पर स्थित किया। 1971 में मुझको पीएच0–डी0 की उपाधि मिली। पर यह उपाधि अबतक रेगिस्तानी मृगजल ही सिरज सकी है।

लिखने की प्रवृत्ति की प्रेरणा हाईस्कूल के दिनों में ही जाग्रत हो गयी थी। उस समय की कविताएँ आज भी मेरे पास पड़ी हैं, पर अब लगता है कि छठे–सातवें स्टैण्डर्ड में पढ़ते हुए मुकुल ने जो कवितायें लिखी है, मेरी उन कविताओं से ये कहीं बेहतर हैं। अबतक बिहार से बाहर भारत की अधिकांश प्रमुख पत्र–पत्रिकाओं में छपती रही हूँ। प्री–पार्टवन–काल में 'सर्जना' नामक मासिक पत्रिका का संपादन भी किया।' '62 से लेकर दिसम्बर' 71 तक दिल्ली से प्रकाशित 'भारतीय साहित्य' और 'कंटेम्पररी इंडियन लिटरेचर' की सह–संपादिका रही। '61 से लेकर अबतक आकाशवाणी के केन्द्रों से रचनाओं का प्रसारण होता रहा है। '70 में इलाबाहाद से मेरे नवगीतों का पहला संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' के नाम से प्रकाशित हुआ। मुख्य रूप से कविता और आलोचनाएँ लिखी हैं। सम्प्रति एक उपन्यास पूरा करने में संलग्न हूँ। अपनी विशेष अभिरूचि के बारे में ठीक से नहीं जान पाई हूँ। एक अच्छा शब्द भी कोई कह दे तो मन उसके प्रति आभार से झुक जाता है। कभी–कभी मौसम के बदलने का इंतजार भी एक बहुत अच्छी व्यस्तता हो जाती है। पर एन्टी रोमान में

गहरी आस्था है। आर्थिक और वैयक्तिक प्रसंगों में मोहभंग की इतनी स्थितियों से गुजर चुकी हूँ कि मुझे हर रंग में पानी नजर आता है। सहज भाषा के प्रति मोह है पर इतना तय है कि भाषा जीवन की स्थितियों और अनुभव खंडों से ही जन्म लेती है। जिसके पास विभिन्न प्रकार की आसक्तियों के टूटने का तनाव अधिक है, उसकी भाषा अधिक धारदार है। इसीलिए 'एक पति के नोट्स' और 'एक थी विमला' की भाषा तब पसंद आई थी तथा जो भी नहीं है सबके पीछे अपनी दुखती स्थितियों का बोझ ही अधिक है। फिलहाल 'अन्यथा' के नवगीत–अंक के संपादन से जुड़ी हुई हूँ। प्राध्यापन के जड़ वातावरण में भी साहित्य की सुगबुगाहट कहीं अन्दर महसूस करती हूँ तो लगता है अभी जीवित हूँ।

'प्रगति' नामक एक पत्र में शान्ति सुमन ने एक स्थान पर लिखा है कि 'जानने और लिखने में बड़ा फर्क होता है। कभी–कभी शब्द इतने कमजोर लगने लगते हैं कि विश्वास ही नहीं होता कि हर जानी हुई बात का बोझ वे उठा सकेंगे। जब मैं पढ़ती थी तो अक्सर यह विरोधाभास मेरे साथ होता था कि जिन प्रश्नों के बारे में कम जानती थी, उनको अधिक सम्पन्न रूप से लिख लेती थी और जिन प्रश्नों के लिए ढेर सारे ज्ञान मेरे पास होते थे, उनको मैं ठीक ढंग से संयोजन नहीं दे पाती थी। उनमें सामग्रियों की इतनी भरमार होती थी कि जानकारी का कम होना वहाँ एक अपेक्षा बन जाती थी। आज भी कभी किन्हीं मौकों पर मैं उसी असंतुलन से गुजरने लगती हूँ।' बहरहाल, मुजफ्फरपुर प्रवास के अपने चौदहवें वर्ष में (जनवरी 1973) ये इस असंतुलन को जी रही थीं तो निश्चय ही उसके पीछे कई सामयिक–मानसिक तनाव रहे होंगे। घर–परिवार, आजीविका और रचनाधर्मिता के दबाव अवश्य ही उनके मन पर गहरे रहे होंगे। उस समय मुजफ्फरपुर में एक स्त्री के लिए इतने कुछ बहुत कुछ की तरह थे। सबमें संतुलन और सौमनस्य जोड़ना सचमुच कठिन होगा। शान्ति सुमन ने सबका समुचित निर्वाह किया। घर में सदैव अतिथियों का आना–जाना लगा रहता था। व्यस्त रहते हुए भी पिता और पति के घर से आने–जाने वाले लोगों के आदर में इन्होंने कभी कमी नहीं होने दी।

शान्ति सुमन कभी बहुत हँसने–बोलने वाली स्त्री नहीं रहीं। सेमिनार

और परिचर्या–गोष्ठी में भी अपेक्षा के अनुकूल ही बोलती रही हैं। आज भी जब वे मंच पर जाती हैं, कोई भी, किसी से भी अनावश्यक बातें नहीं करतीं। किन्तु जहाँ बोलना है, वहाँ चुप नहीं रहती हैं। किसी का समर्थन वे पूरे मन से करती हैं, पर उनका विरोध कभी संवेदनहीन नहीं होता। मौसम के बारे में जब कभी उनसे बातें हुईं, उन्होंने हेमन्त–शिशिर और वर्षा के पक्ष में अपना विचार रखा। वसन्त की प्रशंसा वे बहुत खुलकर नहीं करतीं। इसके पीछे जीवन की वे कुछ घटनायें हैं जो उनकी खुशी को निरापद व्यक्त नहीं होने देतीं। खुशी उनके निकट एक डर भी बुनती है। कई खुशियों को वे इस तरह जी लेती हैं कि जो उनको जानता नहीं, वह समझ ही नहीं सकता। इस संकोच और अंतर्मुखता के कारण लोग उनको कई बार अभिमानी समझ लेते हैं, पर ऐसा है नहीं। शान्ति सुमन स्वभाव से बहुत कोमल और विनीत हैं। खुशियों के प्रति उनके मन में कैसा आकर्षण है, यह उनके एक ललित आलेख से व्यक्त होता है जिसका साक्ष्य हैं 'बिहार डाक' के 19 मार्च '73 में प्रकाशित 'अंगों से सट गये भरे दिन रंगों से फागुन के' शीर्षक उनकी अभिव्यक्ति की पंक्तियाँ –

ऋतुराज वसन्त के आते ही ऋतु एक रंगीन भंगिमा में भर गई है। बसन्त उस उन्माद का नाम है जिसमें पेड़–पौधे, नदी–झरने, बाग–बगीचे, स्त्री–पुरुष सभी एक अज्ञात जीवन–रस से उमगने लगते हैं। नसो–शिराओं में रंगों की नदी तैरने लगती है। एक उन्मादक संगीत नई कोपलों, पत्तियों और मधुबौरित शाखों पर हिलने लगता है। भीतरी प्रदेशों की जड़ीभूत एकरसता को भंग कर एक नया सौंदर्य–राग फूट पड़ता है। हर उठती, गिरती साँस के साथ एक गीत होता है। कुल मिलाकर होता है रंगों, गंधों, स्पर्शों और गीतों का मौसम। ऐसा मौसम जिसमें आंतरिक हर्षोल्लास बाहर छलक आता है। ढोल के धमाके, मादल के मधुर स्वर और मृदंग के उत्तेजक बोल। मूर्च्छना में मीड़ों में बजता हुआ तिलक कामोद, भीमपलासी और इमन। हर बिरहिनी की छत पर कागा बोल उठता है। उसकी आँखों में प्रिय के पदचाप उभरने लगते हैं और बजने लगती है होली की आगमनी। द्वार का वह पथिक जो अतिथि नहीं है, होठों पर उसका नाम आते ही गन्धमादन सा बरसने लगता है। वातावरण के इस गीतिल रूपबंध के कारण मन झरनामुख सा हो जाता है और रूप के सरोवर में वह उतरने के पहले की काँपने लगता हैं और

दिन गीतों के छंद बन जाते हैं –

'गीतों से भरे दिन फागुन के ये
गाये जाने को जी करता'

ठिठुरन की रातें बीतीं नहीं कि दर्दीले दिन शुरू हो गए और पतझड़ के कारण जो एक उदास बांसुरी बजने लगी थी, फागुन के छलियापाहुन के आते ही मोहक लय में बदल गई। उदासी काई सी फट गई और एक रंगिम सौंदर्य अंग–अंग में समा गया। अजंता उँगलियों में जाने किन अज्ञात–अनाम संकेतों पर थिरकनें भर गईं, मन की सौ आँखें हो गईं। *'यह कैसा वातास कि मन को नयन–नयन कर दिया/गीत को चुप्पी से भर दिया/भर दिया – यह कैसा वातास!/कर थर–थर/वन थर–थर सारा जीवन थर–थर/यह कैसा उल्लास!'*

मंजरियों की भाषा में जाने क्या बजने लगता है। रंगों की बोली गुलाल सी लगती है। गीत सी बजती हुई एक सरस बेचैनी! पाने की शीघ्रता में छूट जाने की लाचारी –

'अँट नहीं रही है
फागुन की आभा
तन सट नहीं रही है।'

यही मन होता है कि मन के कटोरे को कोई सुरों से भर देता। रचने की नई–नई प्यासों से लबालब कर देता। अपनों–परायों का रिश्ता टूट जाता है। आत्मीयता के कगार बहुत पास–पास दिखने लगते है। चीजें सहजता से समझ में आने लगती हैं और वसन्त अपने होने की अनुभूति जगाता है। मानो यह वसंत नहीं, किसी चक्रवर्ती सम्राट का छोड़ा हुआ दिग्विजयी अश्व हो जिसे रोकना बड़ी मुश्किल है –

'फागुन का रथ कोई रोके
टूटी शाखें पतियाने लगीं
घेर–घेर कर बतियाने लगीं
ऐसे में कौन इन्हें टोके।'

इस रोकने–टोकने में कितनी अनजानी स्थितियाँ पैदा हो जाती हैं, कितने तरह के राग–रंग के मेले लग जाते हैं। कहीं हास–परिहास, कहीं उपालंभ के दहके गुलमुहर, कहीं रंगों के छीटों से ताने। कुल

मिलाकर सुख की अनेकांत अनुभूतियाँ जो जीवन को गीतिकाव्य बना देती हैं – गाने लायक कोई उर्दू की बहर। कहीं पुरानी स्मृतियों के घेराव, कहीं करने के लिए ढेर सारी रंगीन बातें। प्रेम का एक पुल यहाँ से वहाँ तक बन जाता – प्रेम में प्रेषणीयता कहाँ नहीं होती। मौसम एक हुआ तो क्या – व्यक्ति की स्थितियाँ विभिन्न होती है। सोचने का सुख कितना बड़ा होता है।

'बड़े–बड़े गुच्छों वाली
सुर्ख पत्तों की लतर
जिसके लिये कभी जिद थी
यह फूले तो मेरे ही घर।'
'हिलती हुई पंखुड़ियों में यह कामना
शेष रह गई कि,
बहुत संभव है इसी उन्माद में
वह दीख जाए
जिसे हम और तुम चाहकर भी
कह न पाए।'

इसी अनकहे आवेश में कहीं 'उत हरि इतहि राधिका गोरी' नाचती हुई दीखती है। मृदंग, झाल–डफ और बीच–बीच में बाँसुरी की धुन। फिर कहना नहीं पड़ता –

'पाहुन चुपचाप खड़े हो नजर झुकाए
बात क्या हुई ? कैसे आए ?'

बन्द या खुली आँखों में भोगा हुआ सुख लरज उठता है – सतरंगे सपने इन्द्रधनुष के फूलों से खिल उठते हैं अपने–अपने प्रियों के लिए –

'तुम खुले नयन के सपने हो'

फागुन जब बीतने लगता है और अबीर की झोली साफ होने लगती है, घुलते हुए रंगों को मन सहेज कर रखने लगता है तो फिर महक उठता है वसन्त–वन में गुलाल का फूल और पागल मन बिसूरने लगता है –

वहीं कहीं छूट गया फागुन
कोई दे जाए

वहीं की वहीं रुकी राहें
कोई पतिआए

इस तरह फागुन प्यार के किसी शुभारम्भ सा आकर झेलने को क्या कुछ नहीं दे जाता है.... ।'

सुविधायें मिलने पर भी शान्ति सुमन अपने जीवन में कभी 'हाइ–फाइ' नहीं रहीं। विवाह में मिले गहने भी वे दो–चार महीने नहीं पहन सकीं। विवाह 25 फरवरी 1959 को हुआ और उसी वर्ष जुलाई में कॉलेज में उनका नामांकन हुआ था। लंगट सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर के प्राचार्य के कठोर अनुशासन में इन्होंने खादी की साड़ी पहनी। वहाँ छात्राओं के लिए साज–श्रृंगार पूरी तरह निषिद्ध था। अन्य छात्राओं ने तो थोड़ी–बहुत छूट ले भी ली थी, पर ये अनुशासन के विरूद्ध कभी नहीं हुईं। कॉलेज के उन दिनों की सादगी इनमें अभी तक बनी हुई है। तब से लेकर आज तक एक अंगूठी भी इनकी उंगली की शोभा नहीं बढ़ा पाई। गहनों और कपड़ों से आई सुन्दरता की सराहना ये कभी नहीं करतीं।

एक बार एक मित्र ने शान्ति सुमन से चुप रहने का कारण पूछा तो उन्होंने सीधे कहा कि चुप रहने से बहुत सारी चीजों को समझने का अवसर मिलता है। 'दैनिक आज' में होली के समय कुछ प्रसिद्ध कवियों और लेखकों के साथ शान्ति सुमन (केवल एक कवयित्री) के होली के संदर्भ में संस्मरण छपे थे। उस संस्मरण में उन्होंने जो कुछ कहा है उनसे इनके जीवन के अनछुए–अचीन्हे प्रसंग सामने आते हैं। उनकी बातों को उनकी भाषा में सुनना अधिक सार्थक और सुखद है। शान्ति सुमन ने उस संस्मरण का शीर्षक दिया था – 'रंग जो छुड़ाये नहीं छूटते थे।' 'दैनिक आज' ने उनको गीतों की मलिका डॉ0 शान्ति सुमन कहकर संबोधित किया। मैं उस संस्मरण को अविकल देना चाहती हूँ –

'गीतों की मलिका डॉ0 शान्ति सुमन होली से जुड़े संस्मरण की बात पर कहती हैं – होली का संस्मरण लिखना या सुनाना चाहूँ तो आज की होली का रंग मुझसे अपना दाय मांगने लगता है। आज होली के रंग उतने प्रसन्न नहीं लगते जितने पहले लगते और होते थे। कभी–कभी तो ये उदास भी कर जाते हैं और रंगों की फुहारों के बीच भी आदमी अकेला रह जाता है।

संयोगवश पिता के घर में मुझसे बड़ी न कोई बहन थी, न भाई। स्वभावतः बहनोई और भाभी की अनुपस्थिति ने मेरे रंगों को कहीं कम कर दिया। परिवार में उन्नीस भाई–बहनों में मैं सबसे बड़ी थी। खेल–खेल में अनायास उन पर रंग डाल भी दिया तो मुझको यह याद रहता था कि मैं उन सबसे बड़ी हूँ। इसलिए परंपरा के अनुसार वे सभी मेरे पांव पर अबीर लगाते थे और मैं भी प्रदान में उनको अबीर लगा देती थी। एक बड़प्पन का भाव तभी से मुझमें जग गया था। आशीष देना, क्षमा करना जैसे गुण तभी मुझमें आ गये थे।

मेरा जब विवाह हुआ तब भी ऐसा संयोग जुड़ा कि उस घर में मेरी न कोई छोटी ननद थी, न देवर। चार भाई और दो बहनों में मेरे पति सबसे छोटे हैं। यहाँ भी रंग सीधे मुझ तक नहीं पहुंचा। अपने घर की बगल के परिवार में जो लोग थे उनमें अधिकांशतः आदरणीय थे। शेष की मैं ही सम्मानयोग्य थी। इसलिये वे मेरे पैर पर ही अबीर लगाकर अपने कर्त्तव्य बोध को सम्पन्न कर लेते थे।

जीवन के इस अंतर्विरोध पर मुझको आज भी हँसी आती है कि पिता के घर में अपनी पीढ़ी में सबसे बड़ी थी और लोगों की तरह मैं होली नहीं खेल सकती थी। प्रकारान्तर से यही स्थिति बाद में भी बनी रही जब पति–गृह में मैं सबसे छोटी हो गई।

फिर भी जीवन इतना निष्करूण तो होता नहीं है। मुझको याद आता है कि एक बार गांव में टोले का एक पाहुन आया था। सुधा मेरी बाल सखी–संबंध में तो वह मेरी फुआ लगती थी, पर एकवय और एक साथ पढ़ने के कारण वह मेरी निकट की सहेली थी।

एक बार सुधा और टोले की कुछ लड़कियों के साथ मैंने भी उस पाहुन पर लुक–छिपकर रंग डालने का मन बनाया। टोले के कुछ लड़कों को फुसलाकर तैयार किया कि पाहुन जबनिकले तो इधर से ले आना और हमलोग रंग तैयार कर खिड़की के पीछे छिपकर उसकी प्रतीक्षा करने लगे। पाहुन चालाक था, सो तुरंत निकला ही नहीं और हमलोग उकताने लगे। इस बीच किसी के आने की आहट सुनाई पड़ी तो एक लड़की ने कहना शुरू किया – आ रहा है, आ रहा है, तैयार हो जाओ। हममें से कुछ के पास पिचकारियाँ थीं और कुछ ने बोतल में

रंग भरकर पिचकारी बनाई थी। सारे रंग एक साथ खिड़की से उड़ेल दिए गये। फिर तो एक क्षण के बाद होली क्या हुई अनर्थ हो गया। पाहुन के बदले लालाबाबा पर रंग पड़ गये थे। होली के रंग जितने लाल नहीं थे, उतनी लाल–पीली उनकी आँखें देखकर हमारी जान सूख गयी। सबके बाप के नाम लेकर ही वे पुकारने लगे। दरअसल छोटे–बड़े सभी टोलेवालों से वे उम्र, रोब–दाब और गुस्से में बड़े थे। बहुत को तो उनको टोकने की हिम्मत भी नहीं होती थी। सबके साथ मुझको देखकर वे और आग–बबूला हो गये। कहा – 'कुँवर के बेटी से हो...' मेरे पिता जो आज कुँवर बाबा हैं, गांव में लोग उनको कुँवर जी कहकर पुकारते थे। मेरे तो दुहरे संकट थे। इनके बाद बाबूजी की डांट का भय भी सता रहा था। हम सिर झुकाये खड़े ही थे कि एक लड़की पर उनका झन्नाटेदार तमाचा गूँजा। मैं तो भागी और दादी के आंचल में छिप गई। वह ऐसा अभय क्षेत्र था जहाँ से मुझको निकालना किसी के लिए भी मुश्किल था। बिना मार लगे ही मैं फूट–फूटकर रोई। मेरा रोना देखते ही दादी की विह्वलताने मेरे आँसुओं को पोंछ दिया और लालाबाबा को भी माफ नहीं किया। दादी ने जो उनको कहा – उसका अर्थ था कि लड़कियाँ होली खेल रहीं थीं, आप उधर क्यों आये। लालाबाबा पहली बार चुप हुए थे।

जीवन की वह घटना आज भी वैसी की वैसी याद है। तमाचा आज भी गूंजता है और सखी के गाल पर लगी चोट महसूस करती हूँ। दादी की करूणा से ओत–प्रोत हो जाती हूँ। मुजफ्फरपुर के मीठनपुरा में रहकर भी अपना गाँव–घर सदैव याद आता है।'

जीवन में कभी किसी ने अच्छी बात कही, एक अच्छा शब्द भी, तो शान्ति सुमन उसको याद रखती हैं – उस बात या शब्द को कहनेवाला भले परिवार का कोई व्यक्ति हो, मित्र, बड़े अधिकारी या कोई रिक्शावाला, घर में काम करने वाली दाई ही सही। इनके मन में ऐसे शब्द घर बना लेते हैं। ठीक उसी तरह कहीं का सुना अपशब्द या अपमानजनित व्यवहार भी इनसे नहीं भूलते। मन ही इनकी सबसे बड़ी संपदा है जो पल–पल इनको संवेदना से जोड़े रहती है। आज की उपभोक्ता संस्कृति में सबसे अधिक नुकसान मन का ही हुआ है जिसके भावना से भरे इन्द्रकमल को बाजार ने परती पर गिरा दिया है। घर के भीतर तक

हस्तक्षेप करते हुए बाजार से इनका हरदम विरोध रहा, पर बच्चे जब कपड़ों में ब्रान्ड की बातें करते हैं, टी0 वी0, क्रीम–पावडर–परफ्यूम आदि में बाजार की धड़कनें महसूस करना चाहते हैं तो शान्ति सुमन उनके तर्कों के सामने स्वयं को हल्की मुस्कान के हवाले कर देती हैं।

शान्ति सुमन के व्यक्ति को और अधिक समझने के लिए थोड़ा और पीछे जाना होगा। शान्ति सुमन का जन्म बिहार प्रदेश के सहर्षा जिला स्थित कासीमपुर गांव में हुआ। वह एक मध्यवर्गीय किसान–परिवार था जिसकी मुख्य आय खेती पर निर्भर करती थी। उनके पिता श्री भवनन्दन लाल दास जिनके बोलचाल के नाम पर अब वे श्री कुँवर बाबा हैं के अतिरिक्त दूसरा कोई पारिवारिक सदस्य नौकरीपेशा नहीं था। इनके पिता ने भी जमालपुर से इलाहाबाद और फिर स्थानान्तरण होने पर मद्रास जाने की स्थिति में गांव की खेती और घर–परिवार की देखभाल के लिए नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और इस तरह अंग्रेजी शासन का साथ छोड़ दिया था। शान्ति सुमन नौ भाई–बहन हैं – छः भाई और तीन बहनें। अब तो सबके अपने–अपने सुखी–स्वस्थ परिवार हैं। शान्ति सुमन सभी भाई–बहनों में बड़ी है। दिनेश, अरुण, विनोद, नवीन, पूनम और कमलेन्दु भाई हैं और रेखा और नूतन बहनें। इनका विवाह हुआ तो चार भाइयों और दो बहनों का परिवार इनको मिला। इनके पति भाई–बहनों में सबसे छोटे हैं। अब तो दोनों ही परिवार इतने बड़े हो गये हैं कि सबके नाम लेना कठिन है। अपने जेठ के पुत्रों में ये बालेश्वर, नरेन्द्र, महेश, वीरेन्द्र, अमरेन्द्र, सत्येन्द्र और प्रभात रंजन के नाम लेती हैं। अरविन्द जिनके बचपन का नाम मुकुल है, उनका पुत्र है और चेतना वर्मा उनकी बेटी है। शान्ति सुमन का अपना परिवार बहुत छोटा है। इसमें इनका पुत्र और पुत्रवधू डॉ0 विशाखा वर्मा और इनके दो बच्चे – पुत्री शालीना और पुत्र ईशान हैं। चेतना के दो बच्चे हैं – पुत्र अपूर्व और पुत्री श्रेयसी। शान्ति सुमन के जमाता अब नहीं हैं। 2003 के सितम्बर में उनका असामयिक निधन हो गया। बेटी की सूनी मांग शान्ति सुमन का मर्मान्तक दुख है। चेतना वर्मा एक प्रतिभाशील कवयित्री हैं। उनकी रचनाधर्मिता उनके दुखों को सृजनात्मक बनाती है।

शान्ति सुमन का बचपन जिस परिवेश में बीता, वह साधारण किसानों और खेतिहर मजदूरों का परिवेश था। इनका गाँव खेत–खलिहान,

आम–जामुन, अमरूद, कटहल और शिरीष की हरियाली से घिरा एक नितान्त पिछड़ा हुआ गांव था। शिक्षा की वहाँ कोई व्यवस्था नहीं थी। पिता के वैयक्तिक शिक्षा–प्रेम से इनका पढ़ना–लिखना शुरू हुआ। शान्ति सुमन ने कहा कि उनकी प्रारंभिक शिक्षा में उनके बच्चाकाका श्री मदन मोहन लाल जिनका असली नाम रामेश्वर लाल है, का योगदान अप्रतिम है। कोई जान नहीं सकता कि उस पिछड़े देहात में जहाँ एक सीधा रास्ता तक नहीं था, बच्चा काका कैसे किताब लाते थे। तब परिवार में पैसे का स्रोत खेती से प्राप्त अन्न ही था जिसको बेचकर कुछ भी खरीदा जा सकता था – नमक, तेल, किताबें भी। बच्चा काका कभी–कभी शहर जाते थे। वहीं से किताबें, कापियाँ, कागज और गुलाब काकी के लिए चप्पल भी लाते थे। तब गाँव में स्त्रियाँ चप्पल नहीं पहनती थीं। बूढ़ी औरतें तो साया (पेटीकोट), ब्लाउज भी नहीं पहनती थीं। बच्चाकाका शहर जाकर वहाँ की बदलती जिन्दगी को देखकर आते थे। वे गांव को सुधारना चाहते थे, पर गांव का अंधसंस्कार इतना जड़ था कि वे बहुत कुछ सोचकर भी नहीं कर पाये। तब इस टोले से उस टोले तक लड़कियों का आना–जाना भी नहीं था। बच्चाकाका ने इस जड़ता को तोड़ा। उन्होंने पढ़ने–लिखने में बहुत लोगों की मदद की अपूर्व बात यह है कि उनके मूल नामवाले सर्टिफिकेट पर उनके समान नामवाले मित्र ने आजीविका की पूरी अवधि तक नौकरी की। बच्चाकाका ने स्वयं नौकरी नहीं की। वे राजनीति में भी रहे, पर कभी किसी टिकट पर खड़े नहीं हुए। उनके इस स्वच्छंद जीवन में शान्ति सुमन के पिता का अन्यतम सहयोग था। बच्चाकाका के पिता ने ही शान्ति सुमन के पिता को अपने अंतिम समय में घर की देखभाल की जिम्मेदारी और घर का स्वामित्व सौंपा। इसलिये शान्ति सुमन के पिता घर की श्रीवृद्धि के बारे में अधिक सोचते थे। वे जब खेत देखने जाते थे तब उनके बच्चाकाका बखार से धान निकलवा लेते थे और उसको सुपौल की हाट में बिकने के लिए भेज देते थे। उन पैसों से बच्चाकाका अपनी कुछ चीजें खरीदते थे और घर में ढेर सारी मछलियाँ खरीद लेते थे। पूरा घर छककर मछली–भात खाता था। इन्हीं खट्टे–मीट्ठे अनुभवों के बीच शान्ति सुमन का बचपन बीता और वे बड़ी होकर इतनी बड़ी गीत–कवयित्री बनीं। अपने उसी परिवेश में शान्ति सुमन ने जाना कि खिले फूलों के

मुख पर सुख ही सुख है, पर पीछे जो अन्तहीन दुख है, उसको कोई नहीं देखता। ऐसा भी होता है कि लोग जब किसी का दुख दूर करने लगते हैं तो उसके कई सुख भी नष्ट कर डालते हैं। सहानुभूति हरदम दुख को कम नहीं करती, दुख को बढ़ानेवाली भी होती है। अपने निजी जीवन में इन्होंने सहानुभूति लेने–देने में किंचित परहेज ही किया है।

शान्ति सुमन की कृतियों के बारे में पहले भी बहुत कुछ लिखा गया है। अपने स्कूल के दिनों में ही उन्होंने गीत लिखना शुरू किया था। उनके गांव के निकट के गांव वाराही में स्कूल और पुस्तकालय भी था। उनके एक चाचा वहाँ से किताबें पढ़ने के लिए लाते थे। उसी क्रम में इनको पन्त और महादेवी के गीत और कविता–संग्रहों को पढ़ने का अवसर मिला। चाचा कहानी–संग्रह और उपन्यास भी लाते थे, पर पढ़ने के दौरान उतना समय नहीं निकाल पाने के कारण शान्ति सुमन की रूचि गीत और कविता को ही पढ़ने में अधिक संलग्न हुई। विशेषकर गीत के प्रति यहीं से इनका आकर्षण बढ़ा। स्कूल के दिनों में कॉपियों पर कितने ही गीत–संग्रह, उपन्यास और एकांकी की इन्होंने रचना कर ली थी। यहाँ तक कि उनमें समर्पण का पृष्ठ भी होता था। बाद में उनमें से कितने ही संग्रहों को नष्ट कर दिया गया। कुछ तो अभी भी घर में रखे हैं। आज की परिस्थितियों में शान्ति सुमन को बचपन की वे रचनायें शब्दों के घरौंदे जैसी लगती हैं।

इस प्रकार शान्ति सुमन की पहली गीत–रचना 'रश्मि' पत्रिका (त्रिवेणीगंज, सहर्षा से प्रकाशित) में छपी। फिर तो उनके कई गीत 'समाज कल्याण', 'अन्तरा', 'आर्यावर्त्त' आदि अनेक पत्र–पत्रिकाओं में छपे। सबके नाम अब इनको याद नहीं हैं। लंगट सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर जहाँ ये एम0 ए0 तक पढ़ीं, के प्राचार्य श्री महेन्द्र प्रताप को जब पता चला कि ये गीतकार हैं तो उन्होंने इनकी रचनाओं को देखने की इच्छा व्यक्त की। तब तक छपी अपनी सारी रचनाओं वाली पत्रिकाएँ उन्होंने प्राचार्य को देकर उन रचनाओं पर उनके विचार मांगे। संकोच में शान्ति सुमन ने उनसे पत्रिकायें नहीं मांगीं और प्राचार्य महोदय भूल गये, पत्रिकायें नहीं लौटीं। शान्ति सुमन का मन आज भी उन रचनाओं के लिए बहुत दुखता है।

अब शान्ति सुमन पुराने गीतों और नये गीतों का रचनात्मक अन्तर समझने लगी थीं। उनके गीतों में निखार आने लगा था। उनका पहला नवगीत–संग्रह 1970 में 'ओ प्रतीक्षित' के नाम से लहर प्रकाशन, इलाहाबाद ने प्रकाशित किया। उस समय ठाकुर प्रसाद सिंह, चन्द्रदेव सिंह और शंभुनाथ सिंह के अतिरिक्त उमाकांत मालवीय का नवगीत–संग्रह 'मेंहदी और महावर' 1963, रमेश रंजक का 'गीत विहग उतरा' 1969 में प्रकाशित हुआ था। नवगीत की फसल तैयार होने लगी थी। उस समय किसी नवगीत–संग्रह का प्रकाशित होना बहुत बड़ी घटना थी। शान्ति सुमन का नवगीत–संग्रह उस घटना की प्रतिश्रुति बनकर आया। दो–तीन वर्षों के अन्तराल पर और भी नवगीत–संग्रह छपे थे। 'ओ प्रतीक्षित' तब छपा था जब इलियट से प्रभावित अज्ञेय जैसे कवितावादियों ने गीत को अस्वीकार करना प्रारंभ कर दिया था। पर गीत अपने विकसित रूप में नवगीत होकर पूरी त्वरा से आगे बढ़ रहा था। उस विकसनशील अवस्था में नवगीत में शान्ति सुमन की उपस्थिति को महत्वपूर्ण माना गया था। नचिकेता ने आरा में शान्ति सुमन पर केन्द्रित सम्मान–गोष्ठी में नवगीत पर सार्थक संवाद आयोजित करते हुए कहा था – 'मैं नवगीत के प्रवर्त्तक की बात नहीं करता, बल्कि जिन नवगीत हस्ताक्षरों ने नवगीत को कंधे से कंधा मिलाकर इस संघर्ष में भाग लिया है उनमें डॉ0 शान्ति सुमन का नाम विशेष रूप से स्मरणीय है। अतः मैं चाहूँगा कि डॉ0 सुमन के इन नवगीतों के परिप्रेक्ष्य में आज के नवगीतों की रचना–संगति और उपलब्धिमूलक सार्थकता और प्रासंगिकता की पड़ताल की जाए।' उस गोष्ठी में शान्ति सुमन के नवगीतों की विस्तार से समीक्षा की गई थी।

शान्ति सुमन का दूसरा नवगीत–संग्रह 'परछाईं टूटती' 1978 में प्रकाशित हुआ। 'ओ प्रतीक्षित' की अपेक्षा इसमें अधिक सुपरिणत और मँजे हुए नवगीत हैं। 'ओ प्रतीक्षित' के गीत मध्यवर्ग की हिस्सेदारी के गीत हैं। इसमें मध्यवर्गीय कुण्ठा और तनाव भी है, परंतु मध्यवर्गीय जीवन के आत्मीय प्रसंग और गहरी अनुभूति से जुड़े चित्र और साधारण जन के दैनंदिन जीवन से उठाये गये ताजे बिम्बों के कारण ये गीत अधिक सराहे गये। 'ओ प्रतीक्षित' के गीतों में डॉ0 रेवतीरमण ने गीतकर्त्री के भावावेश को अलंकृति से अलग स्वभावजन्य माना है।

सत्यनारायण ने 'ओ प्रतीक्षित' के प्रकाशन पर कहा था कि 'गीत के फलक पर शान्ति सुमन का आविर्भाव एक घटना है। मुजफ्फरपुर की एक युवा कवयित्री ने अपने नवगीत–संग्रह के साथ अपना होना प्रमाणित किया। कवयित्री थीं – शान्ति सुमन और संग्रह था – 'ओ प्रतीक्षित।' 'परछाईं टूटती' में नचिकेता ने अनुभव कर लिया था कि 'वर्ग–विभाजन पर आधारित समाज–व्यवस्था के आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक संकट का अहसास और उससे मुक्ति की तीव्र छटपटाहट उनकी गीत–यात्रा की अगली कड़ी का सूचक है।' ऐसी सूचनाओं से 'परछाईं टूटती' के गीत भरे हैं।

नक्सलवाड़ी आन्दोलन से गीत की जमीन बदलने लगी थी। इस बदलते हुए समय में शान्ति सुमन के गीतों की जमीन भी बदलने लगी थी। इनके गीतों में संघर्षरत श्रमजीवी जन के दुख और अभाव ही नहीं, उनके जुझारू होने के मजबूत संकेत आ गये थे। 'सुलगते पसीने' '79 और 'पसीने के रिश्ते' '80 में जनवादिता पूरी तरह उतरने लगी थी। उन गीतों में क्रांति के विचार और चित्र स्पष्ट रूप से आये हैं। फिर इस क्रांति पर खून के छींटे नहीं है। यह क्रांति संघर्षरत जनता के जीवन के भीतर से उपजी हुई वैचारिक क्रांति है – श्रम–संगठनों से प्रतिफलित होनेवाली है –

नहीं चाहिये सूखी रोटी/और न बासी भात
यह खोटी तकदीर एक दिन/खायेगी ही मात
हम गरीब मजदूर भले/हम किसान मजबूर भले
पर अपनी लाचारी का अब गीत न गायेंगे
ताकत नयी बटोर क्रांति के बीज उगायेंगे

– 'सुलगते पसीने'

'पसीने के रिश्ते' में किसान–मजदूरों की एकजुटता के द्वारा व्यवस्था का विरोध और सामाजिक परिवर्तन पर बल दिया गया है।

1985 में 'मौसम हुआ कबीर' का प्रकाशन हुआ। इसमें शोषित–पीड़ित जनता के दुख–दर्द को अभिव्यक्ति मिली है। यह शान्ति सुमन के जनवादी गीतों की अगली कड़ी है। इसमें समकालीन भयावह यथार्थ को उजागर किया गया है। इन गीतों में शोषण और उत्पीड़न के विरूद्ध

साहस और संकल्प है –

रचो समय को माथे पर
अब लाना है बदलाव
केवल कहना देह हमारी नंगी/पेट है खाली
इससे कभी न आ सकती है/जीवन में खुशहाली
काटो अंधकार का जंगल
फूँको नया अलाव

देश की समकालीन गर्हित समाजार्थिक व्यवस्था पर शान्ति सुमन कहती हैं –

कौन कहता टूटता है नहीं/दारुण लौह पहरा
यह समय होता नहीं है/कभी अंधा और बहरा
हमरा श्रम ही हमारे बन्ध खोलेगा

इसी संग्रह में शान्ति सुमन का यह कालजयी गीत भी संग्रहित है –

थाली उतनी की उतनी ही
छोटी हो गयी रोटी
कहती बूढ़ी दादी अपने गाँव की
सबसे बूढ़ी दादी अपने गाँव की

यह मजदूर माँ की लोरी ही नहीं, वह अन्तःपीड़ा है जिसका इस गीत में शान्ति सुमन ने उसकी संवेदना की भीतरी तहों में उतरकर उसके बच्चों की जिद, लालसा, आत्मीय लगाव और उछाह के साथ अद्‌भुत चित्रण किया है। हिन्दी गीत के इतिहास में मजदूर बच्चे का यह बचपन नितान्त अपूर्व और विरल है। इसके पहले गरीब बच्चों का बचपन इस प्रकार लिखा नहीं गया है –

फटी हुई गंजी न पहने, खाये बासी भात ना
बेटा मेरा रोये, मांगे एक पूरा चन्द्रमा

इस गीत में माँ की आँखें चाहे जितनी भींगी हुई हों, पर अपने बच्चे की जिद और हौसले में माँ की लालसा भी शामिल है। वैज्ञानिक जीवन–दृष्टि, जनपक्षधरता और प्रगतिशील अंतर्वस्तु के कारण ये गीत संघर्षशील जनता के विश्वसनीय गीत लगते हैं।

'97 में प्रकाशित 'तप रहे कचनार' में रोमान का सकारात्मक रूप

व्यक्त हुआ है। रोमान जीवन के प्रति आसक्ति का पर्याय है –

था तो अमलतास था ऋतु का प्यार
बहुत अटपटा था तब/क्रीम–गंध से अलग/दूध सा महकना
एक अलाव बहुत लाल/बहुत पतनी घाटी में/
वनफूल सा दहकना
चट्टानों के सिर लिखा हुआ स्वीकार

'02 में 'भीतर–भीतर आग' का प्रकाशन हुआ। इसमें शान्ति सुमन के नवगीत का शब्द–गठन और बिम्ब–चयन भी लौटकर आया है। इन गीतों में गीतकर्त्री ने नयी रचनाशीलता को मुहर लगाकर अपनी निजी पहचान को सशक्त किया है। बिम्बों के मामले में गीतकर्त्री अधिक संवेदनशील हैं। इन गीतों के आधार पर ही डॉ0 सुरेश गौतम ने लिखा है कि 'शान्ति सुमन का नाम लिये बिना नवगीत का इतिहास अधूरा और अपंग होगा।' डॉ0 अरविन्द कुमार ने कहा है कि 'शान्ति सुमन के यहाँ शब्द बोलते हैं चाहे वे बिम्बों के रूप में हों या रूपक के रूप में। साथ ही इनमें एक प्रकृति बोलती होती है और होती है उसकी हरियाली, उसका सौन्दर्य। यहाँ तक कि रिश्तों की अकुलाहट में भी यह प्रकृति मौजूद है।' एक–दो चित्र द्रष्टव्य हैं –

अपनी बेटी सी कोमल हरियाली
सामने किलकती खड़ी
बैठ घूम आती हवाओं के यान पर
सपने से भी लगती बड़ी
आकाश–सी नीली पगड़ी में
बाबू सँभाले हुए दाँव

x x x

फूटते धानों सरीखे/हम बढ़े, बढ़ते गये
फुनगियों से फसल की/सपने बहुत कढ़ते गये
दिनों की बारिश गई थम/तुम हँसी से हो गई दुहरी

'पंख–पंख आसमान' का प्रकाशन '04 में हुआ। यह चुने हुए एक सौ एक गीतों का संग्रह है। इसमें 'ओ प्रतीक्षित' से लेकर 'भीतर–भीतर आग' गीत–संग्रह के चुने हुए गीत हैं। इसलिये '02 ई0 तक शान्ति

सुमन के गीतों का विकास इसमें देखा जा सकता है। निश्चय ही इसमें नवगीत और जनवादी दोनों प्रकार के गीत लिये गये हैं। एक ओर जहाँ इसमें –

माँ की परछाईं सी लगती गोरी–दुबली शाम
पिता सरीखे दिन के माथे चूने लगता घाम
दरवाजे के साँकल/छाप उंगलियों की ठहरी
भुनी हुई सूजी की मीठी/गंध लिखी देहरी
याद बहुत आते हैं/घर के परिचय और प्रणाम

x x x

दरवाजे का आम–आँवला/घर का तुलसी–चौरा
इसीलिये अम्मा ने अपना/गाँव नहीं छोड़ा

x x x

एक हँसी आंगन से उठती/और फैल जाती तारों पर
मन की सारी बात लिखी हो/जैसे उजली दीवारों पर
एक प्यार सबकुछ होता है/जिससे डरते हैं सारे डर

x x x

जब कभी कोई बच्ची वर्षा में नहाती है
घर की याद आती है

x x x

बिन धुआँते छप्परों के घर/आँख में आँजे हुए अगहन
याद आये सरसराते हवा में/हिलते हुए से ईख जैसे दिन
मछलियों की आँख में चमका/पोखरों का अतल जल गहरा

आदि जैसे गीत हैं तो दूसरी ओर इन जनवादी गीतों को भी अलग से जानने की जरूरत है –

क्या हुआ कल रात आयी/जोर की आँधी
नीबूओं की पत्तियाँ फिर/रात भर जागीं
समय कम है/कम समय है
हर मुहिम पर दिखो/हाल अपना लिखो

x x x

ये इतने चुपचाप दिखने वाले/हल के जोड़े
कहते सीना तान/नदी उनकी जो परबत फोड़े
पेट पीठ से मिले नहीं अब/यही लिखेंगे

x x x

हाथों रोक लिया करते/छानों से चूता पानी
कभी नहीं सर्दी–गर्मी से/हुई हमें हैरानी
दो जोड़ी आँखों में/एक हरा सपना है
टूटा ही है घर वह/पर, कितना अपना है

x x x

अपना तो घर गिरा/दरोगा के घर नये उठे
हाथ और मुँह के रिश्ते में/ऐसे रहे जुटे
सिर से पाँवों की दूरी अब/दिन–दिन होती छोटी
कहती बड़की काकी अपने गाँव की
सबसे सुन्नर काकी अपने गाँव की

ऐसे पाँच–सात गीत ही किसी संग्रह को अविस्मरणीय बनाते हैं, पर इस संग्रह में तो ऐसे ही गीत भरे पड़े हैं। यह संग्रह प्रमाणित करता है कि शान्ति सुमन नवगीतकर्त्रियों में सर्वोच्च और श्रेष्ठ जनवादी गीतकारों में एक हैं। गीत की दोनों ही धाराओं में ये अपना अलग और विशिष्ट पहचान रखती हैं।

इसके उपरान्त 'एक सूर्य रोटी पर' '06 में प्रकाशित होकर आया। इस गीत–संग्रह ने शान्ति सुमन की जनवादी छवि पर सशक्त मुहर लगा दी। इसके गीतों के बारे में लिखते हुए डॉ0 विजेन्द्र नारायण सिंह कहते हैं – 'युवावस्था के बीतते ही उनका गीतकार फूस की तरह धधककर जल नहीं गया, वरन् जन की संवेदनशीलता से सम्पृक्त होकर वह और प्रौढ़ तथा पुष्ट होता गया। उनकी गीति–प्रतिभा न छीजने का यही रहस्य है। इन गीतों में घुटन और संत्रास, नगर–बोध या आधुनिकता–बोध न होकर विपन्नता की पीड़ा तथा व्यवस्था की अमानुषिकता का प्रतिरोध मिलता है।' 'डॉ0 मैनेजर पांडेय ने शान्ति सुमन के गीतों के बारे में कहा कि 'शान्ति सुमन प्रायः समाज की वास्तविकताओं और जीवन के अनुभवों के बारे में बयान या व्याख्यान

नहीं देतीं, वे चित्रों और संकेतों में अपनी बात कहती हैं। उनकी इस कला में बिम्बों, प्रतीकों और संकेतों के सहारे अर्थ का विस्तार होता है लेकिन गीत सहजता की जमीन पर रहते हैं, क्योंकि बिम्ब, प्रतीक और संकेत जनजीवन से आते हैं और उसी जीवन की भाषा तथा मुहावरों में रचे–बसे होते हैं।'

शान्ति सुमन के गीतों को नचिकेता ने बड़े निकट से जाना है। वे कहते हैं – 'हिन्दी जनगीत–रचना के क्षेत्र में शान्ति सुमन, शायद, पहली स्त्री गीकार हैं, जिनकी रचनाएँ (गीत) संघर्षशील जन–संघर्षों में जुझारू मेहनतकश अवाम के द्वारा गाये गये हैं।' मदन कश्यप की धारणा इनके गीतों के बारे में अलग और विशेष है – 'उनके पास आज के यथार्थ की आन्तेरिक गतिशीलता को परखने की दृष्टि भी है और उसे उद्‌घाटित करने की कला भी।'

कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह ने शान्ति सुमन के गीतों के बारे में एक बहुत महत्वपूर्ण बात कही कि 'उनका रचनाकार सहज है और सुन्दर भी और उसके स्वर पर भरोसा किया जा सकता है।'

डॉ0 रविभूषण ने भी इसलिये स्पष्ट शब्दों में कहा है कि 'शान्ति सुमन ने गीत के सर्वथा भिन्न रचना–विधान में समकालीन यथार्थ की विविध छवियाँ प्रस्तुत की हैं। उनके गीतों में संवेदना और विचार की सह उपस्थिति है। उनके कई नए और अछूते बिम्ब हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं।' उदाहरणार्थ उनके गीतों की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं –

ताड़ के पत्ते बड़े नुकीले हैं
तेवरों में रंग लाल–पीले हैं

x x x

तीन सेर महुवे पर दिनभर/खटकर आई माँ
गाँवों के सीवान लाँघ/संसद में हुए जमा
दोनों हाथ जरूरी है अब/बजती ताली के

x x x

सात किलो राई–सरसों/और आठ किलो सुतली
चमकी कच्ची चाँदी की/बिछिया–टीका–हँसुली
ऊपर हँसे चन्द्रमा नीचे लहरी है नदिया

x x x

खेत बटाई के देते हैं/नहीं रात भर सोने
सपने में सपने आते हैं/घर–विवाह–गौने
पाँव रँगे हैं लाल रंग में/खुशियाँ ठहरी हैं

x x x

पटवन के पैसे होते/तो बिकती नहीं जमीन
और तकाजे मुखिया के/ले जाते सुख को छीन
पतले होते मेड़ों पर आँखें जाती हैं थम

x x x

देह साँवली पहने चकमक बूँद पसीने की
परब–तिहारों पर भी/तन पर वही पुरानी साड़ी
जंगल–झरने, पेड़–पहाड़ों/पर लगती है भारी
आधी झुकती डालोंवाली कली नगीने की

x x x

चारों ओर अँधेरा बूढ़ी/लालटेन है जलती
पुलिस न जाने क्यों आई थी/मन में पीड़ा पलती
गीतों ने कह दिया हवा यह/बदलेगी फिर से

श्रम और पसीने के इतने मर्मस्पर्शी चित्र शान्ति सुमन के समानधर्मा जनवादी गीताकारों के गीतों में कम मिलते हैं। अन्तर यह है कि उन जनवादी गीतकारों ने अपने गीतों में विचारों की आग बोयी है। उनमें उनकी संवेदना और जनता के जीवन–यथार्थ से आत्मीय लगाव के आखर झुलस गये हैं। शान्ति सुमन के गीतों में संवेदना और आत्मीय संस्पर्श की नमी बहुत है जिससे उनके गीतों की विश्वसनीयता बनी रहती है और उसका मर्मस्पर्शी भावन भी उपस्थित रहता है। यह ऐसी विरल विशेषता है जिसके कारण शान्ति सुमन के जनवादी गीत जनता के जीवन में प्रवेश कर जाते हैं और उनके जीवन के हिस्से बन जाते हैं। ऐसी विशेषता कई सारे जनवादी गीतकारों के गीतों में नहीं है।

शान्ति सुमन का अगला गीत–संग्रह 2007 में प्रकाशित हुआ। 'धूप रंगे दिन' नामक यह गीत–संग्रह इनकी गीत–यात्रा का अगला सोपान है। इसमें इनकी समस्त गीति–प्रतिभा समवेत रूप से अभिव्यक्त हुई है। डॉ0 अशोक प्रियदर्शी के शब्दों में यह 'सुमन की सुवास और जन–जीवन

का संत्रास है।' वे इन गीतों को जीते हुए जीवन की बोलती तस्वीर मानते हैं। इन गीतों को पढ़ते–सुनते हुए शान्ति सुमन की रचनाधर्मिता पर आँखें टिक जाती हैं। एक बहुत साधारण परिवेश से निकलकर शान्ति सुमन ने रचना के कितने गरिमामय शिखर पार किये। डॉ0 माधुरी वर्मा का कथन याद आता है – 'शान्ति सुमन की रचनात्मकता को लिखते हुए उनकी उन असुविधाओं को भी दृष्टिपथ में रखना होगा। बिहार की स्त्री के लिये आज भी प्रगति का रास्ता सुगम नहीं है। उन दिनों तो प्रगति की ऐसी एषणायें करना भी एक कठिन स्वप्न की तरह था। शान्ति सुमन ने उस कठिन स्वप्न को देखते हुए रचनात्मक जीवन के सौ जंगल पार किये बिना किसी अवलम्ब के।' 'धूप रंगे दिन' मेंगीतों के उपमान तो रोचक हैं ही, उनका समय और समाज–सापेक्ष होना भी उनको अलग से विशिष्ट बनाता है। अजस्र विचारों और संवेदनाओं से भरे ये गीत सचमुच 'मानवीय चिन्ता के एकात्म से उपजे गीत' हैं। इन गीतों में जन–संघर्षी चेतना के साथ ग्राम्य परिवेश, प्रकृति–प्रेम और लोक–जीवन के साथ किसान–चेतना भरी हुई है –

खींच न पाता रिक्शा जब/साँसों पर ढोता ठेला
जब तक जिनगी है तब तक/ऐसा ही होगा मेला
गोइठा–करसी सुलगाता है/बड़ेलाल घर में

x x x

बाँह में आकाश होगा/कटे होंगे पंख
मछलियाँ जलहीन/तट पर बिछे होंगे शंख
पास में बहने न देगी/नदी या झरने

x x x

कल बाजार बन्द था/टिन में आटे नहीं पड़े
भूखे सो जायेंगे बच्चे/बाबा नहीं फिरे
दिन के पन्नों पर धीरे स्याही हुई जमा
एक उदास हँसी हँसती रहती है माँ

x x x

शिशु की पहली गर्म साँस/जैसी अगहन की धूप
आती है तो किलकारी जैसी लगती है

'धूप रंगे दिन' में आत्मीय, सामाजिक एवं मानवीय संबंधों के इतने कशीदे कढ़े हुए हैं कि किसको देखें, किसको पढ़ें की बेचैनी होने लगती है।

इन हिन्दी नवगीत एवं जनवादी गीत संग्रहों के बीच '91 में मैथिली गीतों का संग्रह 'मेघ इन्द्रनील' प्रकाशित हुआ। मैथिली गीतकारों की रचनाप्रियता एवं रूचि से नितान्त भिन्न यह गीत–संग्रह मैथिली गीत–संसार में अपनी अलग पहचान लेकर आया। मैथिली पाठकों पर इसका प्रभाव भी अन्यतम रहा। मैथिली शान्ति सुमन की मातृभाषा है। इन्होंने पहले हिन्दी में लिखने का काम किया। सच यह है कि आकाशवाणी पटना में '61 से ही भारती और चौपाल कार्यक्रम में ये मैथिली गीतों का सस्वर पाठ करती रही हैं। संग्रह के रूप में ये गीत बाद में आये।

मिथिला के पूरे परिवेश को मूर्त्त रूप से देखने के लिए शान्ति सुमन के 'मेघ इन्द्रनील' को पढ़ना चाहिये। इसके पहले संस्करण में प्रो0 गोविन्द झा के कथन का स्पष्ट अर्थ है कि 'मेघ इन्द्रनील' में चित्रित घर–बार, गृहस्थ जीवन, बारी–झारी, आंगन–दलान, खेत–खलिहान, पर्व–त्योहार, जन–जीवन में व्याप्त अमीरी–गरीबी आदि के संदर्भ केवल शब्द–गठन और बिम्बों के सौन्दर्य–कथन भर नहीं हैं, वरन् उन भावों और चित्रों को आँखों के सामने प्रत्यक्ष रूप में खड़ा करना भी है। समाजार्थिक विसंगतियों के कारण और अधिकांशतः अतर्राष्ट्रीय बाजारवाद की घुसपैठ के कारण आज जीवन में कई सारे निषेधों का प्रवेश हो गया है। इस निषेध ने आत्मविश्वास लेकर जीवन के आदर्श और उद्देश्यों की जड़ें भी हिला दी हैं। साधारण जन की संकल्प–शक्ति भी कमजोर हुई है। इस तरह जीवन में कई सारी तकलीफें शामिल हो गई हैं। शान्ति सुमन की मैथिली कविताओं में इन निषेधात्मक प्रभावों से लड़ने की ध्वनियाँ हैं। रत्नेश्वर झा ने ठीक ही कहा है कि 'इन गीतों में व्यक्त पीड़ा और दर्द की तीव्रता से समाज की पीड़ा का अनुभव करना और उसके उल्लास से उल्लसित होना ही इन गीतों की अभिव्यंजना का प्रयोजन है।' इन गीतों के अंतर्कथ्य की सहजता, सरलता और ताजगी में ग्राम्य जीवन की यथार्थ छवि मिलती है। समकालीन जीवन की आर्थिक पीड़ा और भयावह सामाजिक यथार्थ को इन चित्रों में देख सकते हैं –

टूटल खटिया पर देह पड़य/तँ लागय तड़कि जैत पसली
पछिला सुदभरना पड़ल रहल/देहक खातिर बीकल हँसुली
टीनक थारी हो जेना जेल/चुपचाप सोचथि लाल काका

x x x

टूटल मड़ैयाक झोल भरल भनसा
मारय ये भूख जेना बरछी आ फरसा
आध टूक रोटी पर नून लगय चन्द्रमा

परन्तु इन गीतों में दुखों की लकीर को छोटा कर उम्मीद और हौसले की बड़ी लकीर खींचने का पुरजोर उत्साह दिखता है –

बाम–दहिन परती परसल छऽ/पहिर फसिल केर आस
फूटत आंकुर खुरपी चमकत/रोटी देत उजास

गीतकर्त्री ने गंगा के रूप में चित्रित मजदूरिन बेटी को व्यवस्था की विसंगति के विरूद्ध प्रतिरोध के संकेत दिये हैं –

तानह भौंह लचारी टूटत/रहत दुखक नहि लेस

बाल मजदूरों को जिन्दगी के मोर्चे पर लड़ते हुए चित्रित कर गीतकर्त्री उनके अजस्र श्रम–संघर्ष और हौसले को दिखाती हैं –

जिनगीक मोरचा पर ठाढ़ भेल/ई बच्चा बारह साल के
दोसरक खातिर अछि नींव बनल/ई खड़ा मकान करय
आठ पहर ई लगल काम पर/पीठक घाव सहय
खुरचि–खुरचि के तेज करय/ई समयक सही सवाल के

इधर 'नागकेसर हवा' एक नया गीत–संग्रह 2011 में प्रकाशित हुआ है। यह संग्रह पहले के गीत–संग्रहों से अलग और नयी पहचान लेकर आया है। इसके गीतों में जीवन के विविध रंग दीखते हैं। प्रकृति, प्रेम और जीवन के विभिन्न आसंग इन गीतों में आत्मीय सुख और खुशी देते हैं। इन गीतों का एक–एक अनुभव अपना स्वयं का जिया हुआ क्षण लगता है। इस गीतों की मर्मस्पर्शिता पानी पर तेल की तरह फैलती हुई दीखती है। इनमें जीवन की आसक्ति और खुशी को सारे दुखों और विषादों के ऊपर से बहते हुए दिखाया गया है। इनमें इन दुखों और विषादों को घुलते हुए, इनको रंगहीन होते हुए भी दिखाया गया है –

पीले कुरते पहन नाचते/आँखों में वे दिन
लगता दबे पाँव आई है/अपनी सगी बहिन

x x x

खुशबू चली हवा के घर से/रोये से कचनार
जैसे बढ़ते पाँव विदा के/मन के फाँक हजार

x x x

खुले खेत की हवा सरीखे/मन दौड़े–भागे
फैला दी चिड़िया ने बाँहें/मेड़ों के आगे
जब–तब निकल पड़ी उड़ान पर/संग फूल को ले
राह खुशबुओं ने दिखलाई/रंग धूप को दे
कुमकुम बिखरा है परबत पर/भरी मांग लागे

'आई पुरवा', 'फागुन उतरा', 'धूप के कपड़े पहन', 'नदी पार करती', 'खुशी रंगी आँखें', खुशबू और हवा', 'अनहद सुख', 'सुनो शालीना', 'फूलों के कालीन', 'पुलकवाली नींद', 'आँक रही चिड़िया', 'पानी पर पानी', 'खुशी के आँसू', 'इसी शहर में' और 'बच्चा की आँखें' इस संग्रह की श्रेष्ठ गीत–रचनायें हैं। इतने श्रेष्ठ गीत एक संग्रह में हों तो उसके बारे में बहुत कुछ सोचा जा सकता है। 'इसी शहर में' गीत संग्रह में आने के पूर्व लोकप्रिय हो गया था –

इसी शहर में ललमनिया भी
रहती है बाबू
आग बचाने खातिर कोयला
चुनती है बाबू
पेट नहीं भर सका/रोज के रोज दिहाड़ी से
सोचता मन चढ़कर गिर/जाये ऊँच पहाड़ी से
लोग कहेंगे क्या यह भी तो
गुनती है बाबू

'बच्चा की आँखें' शीर्षक गीत के शब्द–चित्र मन में इतने उद्वेलन भरते हैं कि आँखें भींग जाती हैं –

जब–जब होती बारिश/ऊपर मेघ गरजता है
चिपक छाती से बच्चा/कितनी बार चिहुँकता है

भरे पड़े बाजार इतने/रंगीन खिलौने से
बच्चा की आँखें लगती हैं/खाली दोने से
दुखता दुख पसली का/वह दिन–रात सुलगता है

1994 में शान्ति सुमन की नयी कविताओं का साझा संकलन 'समय चेतावनी नहीं देता' प्रकाशित हुआ। इन्होंने इसमें कहा कि 'जब आप किसी गीत या कविता को पढ़ते हैं तो आप उस पूरे समाज–संघर्ष को ही पढ़ते हैं। कवि जिन परिस्थितियों को जीता है, कविता में उसके जिये गये अनुभव ही जीते हैं। माँ–पिता, घर–गाँव, सारे संबंधों से होती हुई कविता व्यवस्था के चक्रव्यूह में फँसती है और जिस आत्मीयता से गाँव घर को बुनती है कविता, उसी तीक्ष्णता से व्यवस्था के घिनौने चेहरे को भी बेनकाब करती है। इस प्रकार कविता अपना जनपक्ष सिद्ध करती है।' विचार और संवेदना के मिट्टी–पानी से कढ़ी ये कवितायें अपनी जमीन और जमीर के साथ होने की सूचना देती हैं। 'दौड़ लगाता बच्चा' का एक चित्र द्रष्टव्य है --

मेमने की तरह उछलते/दौड़ लगाता है बच्चा
सड़क के किनारे–किनारे
बूढ़ा बाबा उसके पीछे–पीछे जाता है
अपने कन्धों को सहलाता/सड़कों पर बुनी जा रही हैं –
बच्चों के पैरों की छोटी–छोटी छापें

x x x

तुम अपने अस्तित्व के हिस्से को/खींचकर निकल रहे हो
वे जड़ें नहीं टूटती हैं, पर टूटेंगी, टूटेंगी वे
और तुम्हें तुम्हारे उजाले में छोड़ देंगी
तुम्हें दीखने लगेंगे दौड़ते हँसते जाते बच्चे
सूरज की ओर

'सूखती नहीं वह नदी' 2009 में प्रकाशित हुई। शान्ति सुमन ने गीतों की तरह कविता को भी साध लिया है। साधारण जन की धड़कनों को इन कविताओं में सहज ही सुना जा सकता है। डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लिखा है – 'शान्ति सुमन की कविताओं के नये संग्रह 'सूखती नहीं वह नदी' – से गुजरते हुए महसूस किया जा सकता है कि इसमें

सचमुच एक नदी प्रवहमान है। भावना और संवेदना, नमी और तरलता, आत्मीयता और कोमलता तथा राग और स्मृति की नदी। इन कविताओं में संबंधों का एक रागात्मक लगाव है – अलगाव के विरूद्ध।' इन चित्रों से इस कथन को स्पष्ट किया जा सकता है –

अपनी जान से भी बेहद प्यारा घोंसला/
कई जन्मों की इच्छाओं का/हरापन लिये/तिनकों से जुड़ा
घोंसला/चिड़िया कहीं नहीं जाएगी/देखती रहेगी/
आँखों से उठाकर होठों से छुएगी/बेहद सुकुमार सपने

x x x

नदी सूख भी जाएगी तो नहीं होगी/चिड़िया आएगी उसके
पास/पेड़ बदल नहीं लेंगे जगह – खड़े रहेंगे/उसके
किनारे, भाग नहीं जायेंगे उसकी/बगल के मंदिर से
देवता/कोई नहीं छीन लेगा नदी से नदीपन

समकालीन निष्ठुर और हिंसक समय के तार–तार होते मानवीय संबंधों और आत्मीय सपनों के विरूद्ध इन कविताओं में मनुष्यता की गर्म साँसों का स्पर्श होता है –

हवाओं में विषैली गंध की जगह/खुशी की सुगंध बाँटने
के लिए/पृथ्वी पर अभी भी बचा है बहुत कुछ/किस कोख
से जनमेगी मनुष्यता/आओ उस बचे जीवन और
बची हुई मनुष्यता को/बचा लो

इसीलिये डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव ने 'सूखती नहीं वह नदी' में वैविध्य को देखा है और यह भी कि 'शान्ति सुमन की कुछ कवितायें आधी–अधूरी कथा लगती हैं।' 'अब माँ नहीं है', 'बची हुई मनुष्यता', 'नदी', 'नहीं टूटेगा पुल', 'नयी बात नहीं', 'रोटी के पेड़', 'तुम वही खुशी हो', 'माँ को खत', 'प्रेमचंद की कहानी की तरह', 'आवाजें', 'अपनों से अलग', 'पिता को खत', 'ऋतु कथा', 'पानी के सपने' आदि इस संग्रह की सामाजिक सरोकारों की बेहद संवेदनशील कवितायें कहीं जीवन के दुखों का बखिया उधेड़ती हैं तो कहीं चिड़िया की तरह आंगन में खुशी छींट जाती हैं और कहीं संबंधों की नमी बाँटती हैं –

दादी है तो पिता को/अहसास है कि उनकी माँ है/
दादी है तो हाँक लगाती/रहती है दिनभर

शान्ति सुमन ने कठोर और निष्ठुर होती हुई जिन्दगी के बीच छोटी–छोटी खुशी की पहचान की है और इस बात का संकेत देती हैं कि जीवन इन झंझावतों में भी कहीं बचा है और कवयित्री इन्द्रधनुषी परिदृश्यों में मन को बाँध देती हैं –

झूठ नहीं है ईख की गाँठ–गाँठ में/कल्लों का फूटना/
बारिश का पहला पानी चिड़िया की/पाँखों पर गिरना/
सपना देखते हुए साँसों का भापों की तरह उठना/
बिना पलक गिराये आकाश में/इन्द्रधनुष देखना

'जल झुका हिरन' नाम से शान्ति सुमन का एक उपन्यास 1976 में प्रकाशित हुआ। समीक्षकों के विचार में यह उपन्यास से अधिक गद्य काव्य लगता है। अज्ञेय ने कभी अपने उपन्यासों में वैसी काव्यात्मक भाषा का प्रयोग किया था। 'शेखर : एक जीवनी' और 'नदी के द्वीप' में उस भाषा को पाठकों की अजस्र प्रशंसा मिली थी। शान्ति सुमन ने वैसी भाषा को अपने उपन्यास के द्वारा लोकप्रिय बनाया है। वस्तुतः कथ्य से अधिक इसकी भाषा अपनी भावात्मक व्यंजना एवं नाटकीय सौंदर्य के लिए चर्चित हुई। इस उपन्यास का शीर्षक एक ऐन्द्रीय बिम्ब की तरह मन के पटल पर ठहर जाता है। इस उपन्यास की कथा के बारे में मनीष रंजन ने सही लिखा है – 'सबसे बड़ी बात है कि 'जल झुका हिरन' में समकालीन जीवन की कई छवियाँ शामिल हैं, कई परिदृश्य–सामाजिक–राजनीतिक और सांस्कृतिक भी उजागर हुए हैं। प्रेम आज भी एक अस्वीकृत, अभिशप्त परीलोक की कथा की तरह ही है। इसलिये आत्मा के अतल से भाप की तरह उठता हुआ मन का कोमल आवेग सुखांत के पहले ही स्थगित हो जाता है।' सचमुच इस उपन्यास की भाषा पाठकों के साथ चलती हुई पात्रों के संघर्षशील यथार्थ से बुनी अंतर्कथा में संलग्न रखती है।

'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आनधुनिक काव्य' शान्ति सुमन की आलोचना पुस्तक है। इसका प्रकाशन 1993 में हुआ। इसमें मध्यवर्ग की उत्पत्ति, विकास और परिणति को दिखाते हुए भारतेन्दुकाल से लेकर नवगीत तक की विस्तृत काव्यावधि में मध्यवर्गीय चेतना की अनुस्युति, सम्पृक्ति और उसकी भूमिका का विवेचन किया गया है। इस पुस्तक से प्रमाणित होता है कि शान्ति सुमन एक सशक्त गीतकार ही नहीं, विदुषी

आलोचक भी हैं। कविता की भीतरी तहों तक जाकर उसके निहितार्थ को प्रतिफलित करना शान्ति सुमन के गद्य लेखन एवं समर्थ भाषा–ज्ञान के भी प्रमाण हैं।

शान्ति सुमन ने लेखन के साथ संपादन का कार्य भी बड़ी निपुणता से किया है। 'सर्जना', 'अन्यथा', और 'बीज' का संपादन उन्होंने बड़ी कुशलता से किया। 'सर्जना' का संपादन उन्होंने अपने अध्ययन–काल में किया था। 'अन्यथा' का प्रकाशन 70–71 में किया। यह पत्रिका नवगीत के लिये प्रतिबद्ध थी। इसमें डॉ0 शंभुनाथ सिंह का एक साक्षात्कार भी छपा था। उस समय के कई नये नवगीतकारों के ताजे नवगीत भी थे। संपादकीय के अतिरिक्त स्वयं शान्ति सुमन का नवगीत की समकालीन काव्य–विधा में सुपरिणत सशक्त अभिव्यक्ति का निर्णय संकेत देता हुआ एक आलेख भी था। जब वह हिन्दी प्रतिष्ठा में पढ़ रही थीं तब से दिल्ली से प्रकाशित 'भारतीय साहित्य' (हिन्दी) और 'कन्टेम्परेरी इंडियन लिटरेचर' (अंग्रेजी) दोनों की सह–संपादिका थीं। काफी लम्बे समय तक दोनों का प्रकाशन होता रहा था।

देश की सर्वाधिक पत्र–पत्रिकाओं में शान्ति सुमन की रचनायें जिनमें गीत के साथ समीक्षायें और आलोचना भी हैं – प्रकाशित होती रही हैं। देश के अधिकांश आकाशवाणी केन्द्रों और दूरदर्शन से इनके सस्वर गीतों के प्रसारण होते रहे हैं। इन्होंने एक गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर सर्वभाषा कवि–सम्मेलन (दिल्ली) में तमिल कविता का हिन्दी में अनुवाद–पाठ भी किया था। इधर पुनः 2012 के गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर सर्वभाषा कवि सम्मेलन में संस्कृत कविता का हिन्दी में छंदबद्ध अनुवाद–पाठ किया है।

शान्ति सुमन के हिस्से में कई सम्मान और पुरस्कार भी हैं जिनमें बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से साहित्य सेवा सम्मान एवं पुरस्कार, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से कवि रत्न सम्मान, बिहार सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा महादेवी वर्मा सम्मान एवं पुरस्कार, अवंतिका (दिल्ली) से विशिष्ट साहित्य सम्मान, मैथिली साहित्य परिषद् से विद्यावाचस्पति का सम्मान, हिन्दी प्रगति–समिति से भारतेन्दु सम्मान, नारी सशक्तिकरण के उपलक्ष्य में सुरंगमा सम्मान, विन्ध्य प्रदेश से साहित्यमणि सम्मान और विशेष रूप से 2005 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रयाग से 'साहित्य भारती' तथा 2006 में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा सौहार्द सम्मान एवं पुरस्कार उल्लेखनीय हैं।

विभिन्न स्तरीय पत्रिकाओं में शान्ति सुमन की रचनाधर्मिता की चर्चा हुई है। वर्ष 2009 में 'शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि' नाम से एक वृहत आलेख–ग्रन्थ का प्रकाशन सुमन भारती प्रकाशन, जमशेदपुर से हुआ है। यह 372 पृष्ठों की आलोचना पुस्तक है जिसमें डॉ0 शिवकुमार मिश्र, डॉ0 विजेन्द्र नारायण सिंह, डॉ0 मैनेजर पाण्डेय, कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, डॉ0 रविभूषण, डॉ0 चन्द्रभूषण तिवारी, मदन कश्यप, रामनिहाल गुंजन, रमेश रंजक, नचिकेता, महेश्वर आदि आलोचकों के विचार इनके जनवादी गीतों के संदर्भ में दिये गये हैं। इनके नवगीत पर राजेन्द्र प्रसाद सिंह, उमाकान्त मालवीय, डॉ0 रेवती रमण, डॉ0 सुरेश गौतम, सत्यनारायण, डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद, डॉ0 वशिष्ठ अनूप, ओम प्रभाकर, देवेन्द्र कुमार, कुमार रवीन्द्र, डॉ0 अरविन्द कुमार, डॉ0 विश्वम्भर नाथ उपाध्याय आदि के विचार संगृहित हैं।

इस आलोचना पुस्तक को केन्द्र, वृत्त, परिधि नाम से तीन खंडों में विभाजित किया गया है। केन्द्र में शान्ति सुमन के जनवादी गीत एवं नवगीत पर आलोचकों और समीक्षकों के विचार हैं। वृत्त में दिनेश्वर प्रसाद सिंह 'दिनेश' लिखित 'शान्ति सुमन : व्यक्ति और कृति' में इनका संक्षिप्त जीवन–क्रम, इनकी रचनाओं की पृष्ठभूमि की चर्चा एवं इनके रचना–कर्म का विवेचन है। इसके साथ शान्ति सुमन का लिखा आत्मकथ्य भी है। परिधि में तीस विद्वान आलोचकों– लेखकों के द्वारा शान्ति सुमन की गीतधर्मिता एवं गीत–यात्रा तथा समवेत रचना–यात्रा पर लिखे गये आलेख है। इन आलेखों में राजेन्द्र प्रसाद सिंह, डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद, ओम प्रभाकर, मधुकर सिंह, पंकज सिंह, डॉ0 रेवती रमण, सत्यनारायण, डॉ0 वशिष्ठ अनूप, कुमार रवीन्द्र, डॉ0 अरविन्द कुमार, यश मालवीय, डॉ0 सुरेश गौतम, डॉ0 सीता महतो, डॉ0 माधुरी वर्मा, नचिकेता, रामनिहाल गुंजन, नन्द कुमार, डॉ0 सुप्रिया मिश्र, डॉ0 चेतना वर्मा, डॉ0 संजय पंकज, डॉ0 अशोक प्रियदर्शी, डॉ0 लक्ष्मण प्रसाद, रत्नेश्वर झा, चन्द्रकान्त, मनीष रंजन, डॉ0 पूनम सिंह, सुजाता सिन्हा, कनक लता रिद्धि, निर्मला सिंह और डॉ0 पुष्पा गुप्ता के आलेख उल्लेखनीय हैं। इन आलेखों के संकेत इसलिये किये गये हैं कि इनके

द्वारा शान्ति सुमन के व्यक्ति और कृति के बारे में विस्तार से जाना जा सकता है।

'शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि' में उनके सभी गीत–संग्रहों तथा कविता–संग्रह (सूखती नहीं वह नदी) से कुछ चयनित गीत और कविता को संकलित किया गया है। इसका चयन श्रेयसी वर्मा ने किया है। इस पुस्तक में 'नागकेसर हवा' के गीत नहीं है क्योंकि इसका प्रकाशन उसके दो वर्षों के उपरान्त 2011 में हुआ है। इसमें शान्ति सुमन के विभिन्न काव्य–मंचों पर उनके गीत–पाठ के चित्र–पृष्ठ भी हैं जिनसे इस आलेख–ग्रन्थ की गरिमा का विस्तार हुआ है। इन चित्र–पृष्ठों में मुजफ्फरपुर की आरंभिक काव्य–गोष्ठी से लेकर इलाहाबाद, लखनऊ, फरक्का (प0 बंगाल), छपरा का मैथिली–मंच, धनबाद, चण्डीगढ़, वाराणसी, लुधियाना, मद्रास (अब चेन्नई), गोरखपुर, सर्गीपल्ली (उड़ीसा), बेगूसराय, हल्दिया (प0 बंगाल), कानपुर आदि कवि–सम्मेलनों में मंच पर गीत–प्रस्तुति के क्षण सुरक्षित हैं। इन चित्रों में उनके सम्मान–कार्यक्रम की छवि भी है और उनकी षष्ठिपूर्ति सम्मारोह एवं उस अवसर पर उनके एक सौ एक चयनित गीतों का संकलन 'पंख–पंख आसमान' के लोकार्पण की स्मृति भी है। दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता और जम्मू–कश्मीर आदि के काव्य–मंच के चित्र उपलब्ध नहीं हुए। कुल मिलाकर इस आलेख–ग्रंथ की सार्थकता इस अर्थ में है कि इसमें शान्ति सुमन की गीत–यात्रा, उनकी रचनाधर्मिता की विकसनशील (गीत की) अवस्था एवं उनके गीतों के समग्र मूल्यांकन का पूरा परिदृश्य इसमें उपस्थित हुआ है। वैसे यह ग्रन्थ एक शुरूआत है। शान्ति सुमन के गीतों की पड़ताल के लिए विस्तृत आलोचना–दृष्टि की अपेक्षा है। चालीस वर्षों से अधिक अवधि की सृजनेच्छा एवं सृजनधर्मिता को अनवरत जीवन्त रखनेवाली शान्ति सुमन ने अपने समय की चुनौतियों से टकराती हुई, लगातार अराजक और अमानवीय होते जा रहे जीवन यथार्थ से जूझकर गीत की लौ को निष्कम्प जलाये रखा है। वही उनकी गीत–निष्ठा और उसके लिये सम्पूर्ण समर्पण है।

शान्ति सुमन का नारी–विमर्श भी अन्य शिक्षित और विदुषी स्त्रियों की नारी–विषयक दृष्टि से अलग और विलक्षण है। 'दैनिक जागरण' में नंदिता दास, शबाना आजमी, मृदुला गर्ग, मृदुला सिन्हा, नयना

बन्धोपाध्याय, उषा किरण खान, ममता कालिया, अनीता वर्मा आदि के साथ नारी–विमर्श के प्रसंग में इनका भी विचार प्रकाशित हुआ था। मैं उसको अविकल यहाँ दे रही हूँ। मैं यह कहना चाहूती हूँ कि अन्य लेखिकाओं, कवयित्रियों, समाजसेवियों एवं नेत्रियों की दृष्टि से शान्ति सुमन की दृष्टि अलग और ऊपर है। इसको पूरा पढ़ने पर ही समझा जा सकता है। शान्ति सुमन मानती है कि अब पुरुषों के द्वारा स्त्रियों की आजादी, अस्तित्व और श्रेय में सेंध लगने की संभावना नहीं रही। जहाँ यह संभावना है वहाँ शिक्षा और बेहतर समाजार्थिक व्यवस्था से उसको दूर किया जा सकता है। पहले तो स्त्रियों को अपनी क्षमता की पहचान करनी होगी और उसको ही अपना रक्षा–कवच बनाना होगा –

'भविष्य में जब भारतीय इतिहास के पन्ने खुलेंगे तब नारी संबंधी सामाजिक–राजनैतिक अवधारणा विशेषकर नारी–मुक्ति के संबंध में चल रही चर्चाओं को युगांतकारी घटना के रूप में देखा जायेगा। तब यह भी देखा जायेगा कि अमीर और गरीब दोनों ही वर्गों में बंटी स्त्रियों के लिए कैसी चिन्ता की गयी। यह भी स्पष्ट हो जाएगा कि मीडिया के द्वारा स्त्रियों को लोकलुभावन योजनाओं का एक हिस्सा कैसे बना दिया गया।

अपने समाज और राजनीति में स्त्रियाँ अभी तक जितनी वंचनाओं, उपेक्षाओं को झेल रही हैं उस हिसाब से बहुत कुछ कहने लायक है और काफी कुछ काम करने लायक भी। मान–अभिमान की बात हो या आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षिक सभी क्षेत्रों में पुरुषों के समान खड़ी होने में स्त्रियां पीछे हैं।

नब्बे के दशक में स्त्री–विमर्श को आगे कर उनके सशक्तिकरण की बात चली। संविधान और संसद में उनकी उपस्थिति की जोरदार चर्चा के साथ तैंतीस प्रतिशत आरक्षण की बात भी तय हुई। लेकिन सच यह है कि आजादी से लेकर आज तक स्त्री–कल्याण के नाम पर जितने हो–हल्ले हुए, काम उस रूप में नहीं। आरक्षण का सवाल भी सवाल बन कर रह गया। संसद की दीवारों में कहीं उसकी आवाज गुम हो गयी। सड़क पर उतरती तो बात कुछ और होती। फिर तसलीमा नसरीन को यह लिखना नहीं पड़ता कि ***'जंजीरें तोड़ दी हैं मैंने/पान के पत्ते से हटा दिया है संस्कार का चूना।'***

नारीवादी आन्दोलन और नारीमुक्ति आन्दोलन दोनों दो सिद्धान्तों और उद्देश्यों से प्रेरित थे। पुरुष नियामक सत्ता और कतिपय उच्चवर्गीय स्त्रियों की भौतिक दृष्टि ने दोनों को एक करने का षडयंत्र किया। इससे नारी मुक्ति आन्दोलन की धार कम हुई। नारी मुक्ति तो उसके समय, समाज और स्थिति की अनिवार्य परिणति थी और है, जिसको नारीवादी मोहान्धकारों के शिविर में बार–बार धकेला गया। इससे उस विश्वास को काफी आघात पहुंचा, जिसको महादेवी वर्मा ने इस रूप में व्यक्त किया था – 'स्त्री शून्य के समान पुरुष की इकाई के साथ सबकुछ है, परन्तु उससे रहित कुछ नहीं।' जिस समाज में पुरुष होने का अर्थ अलग और स्त्री होने का अर्थ अलग है, उस समाज में मुक्त स्त्री की कल्पना भी असम्भव है। समाज के सारे नियम–कानून पुरुषों को दृष्टि–पथ में रखकर ही बने हैं। एक शब्द में कहूं तो स्त्रियों को पुरुषोचित पाखण्डपूर्ण व्यवस्था का हिस्सा बनाकर रखा गया है। स्त्रियां जितना श्रम करती हैं, जितने धैर्य और संयम का परिचय देती हैं तथा ये जितनी मेधावी और रचनात्मक हैं, उस रूप से इनको समाज में रेखांकित नहीं किया गया। सम्मानजनक पदों पर आज वे पहुंच रही हैं पर वह तस्वीर का एक भाग ही हैं। तस्वीर का दूसरा भाग वह है जहां विकसित और समृद्ध देश के इशारे पर तीसरी दुनिया के देशों और विशेषकर भारत में स्त्रियों को देह के रूप में कैद करने की साजिश जोर पकड़ रही है, जिस तरह उनकी देह के वस्त्र कम किये जा रहे हैं, वे बाजार की एक सुन्दर वस्तु बनकर दिखने को विवश हैं। देह की इस चकाचौंध में उनकी बुद्धि, अस्मिता, मेधा और समस्त सामाजिक–राजनैतिक क्रांतिकारी क्षमताओं पर पर्दा डालकर उनको बाजार की बिकाऊ चीज बना दिया गया है। इस उपभोक्तावादी, बाजारवादी दौर में सब कुछ बिकाऊ है। सौन्दर्य प्रतियोगिता का अर्थ की देह प्रतियोगिता है। इस तरह बार–बार स्त्रियों का फैलता हुआ मुक्त आकाश नुकीले धारदार लक्ष्य के अभाव में अन्धेरे में भटक रहा है। इस अन्धेरे में पुरुषों का विलास है। इस तरह उनकी मित्र भूमिका भी भटकाव का शिकार हो रही है। इस भटकाव में मुक्त स्त्रियों का मानचित्र बन नहीं पाता। स्त्रियों की महत्वाकांक्षा और प्रतिस्पर्द्धा की इच्छाशक्ति की बात होती है पर स्त्रियों के संरक्षण और विकास की बात कैसे हो सकती है जब तक आजीविका से लेकर

आधिकारिक स्तर तक फैली स्त्री–पुरुष की असमानता के अन्तराल को पाट नहीं दिया जाये। स्त्रियों के प्रति फैली सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक विद्रूपता और हिंसा को रोका नहीं जाये। केवल महिला आयोग बने और उसके द्वारा होने वाले कार्य अधूरे रहें तब भी स्त्री मुक्ति प्रश्नवाचक से मुक्त नहीं हो सकती। संविधान में दी गयी समानता और स्वतंत्रता तथा समस्त अधिकारों तक उनकी पहुंच तब होगी जब उन्हें राजनीति में भी वही वर्चस्व मिले जो घर चलाने में पुरुषों के द्वारा प्रदत्त है।

घर से लेकर बाजार तक स्त्रियों को लुभाने, कमजोर करने के अजस्र परिदृश्य सामने हैं। स्त्रियां इन प्रलोभनों से अपने को अलग कर उस संघर्ष का रास्ता पकड़े जो उन्हें मुक्ति तक ले जायेगा। मुक्ति की इच्छा पर भी अनेक अंकुश हैं, पर वे अंकुश स्वतः छिन्न हो जायेंगे, जब स्त्रियां वृहत्तर सामाजिक और राजनैतिक परिप्रेक्ष्य को अपना भविष्य बनायें। सभी कुलीन–सामंती रूढ़ियों से अपना बचाव करें, पूंजीवाद के छलावे को निरस्त कर उस सरकारी कार्यशैली का भी एकजुट विरोध करें जिनसे उनका विकास रूकता है, न्याय के मिलने में विलम्ब होता है। आज बाजार की तरह राजनीति भी हमारे जीवन का अपरिहार्य अंग है।

रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य सभी में राजनीति है, कर्त्तव्य और अधिकार दोनों राजनीति से प्रतिबंधित हैं। ऐसी स्थिति में राजनैतिक रूप से जागरूक हुए बिना स्त्रियां अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकतीं। समाज और सरकार के सारे झूठे आश्वासनों, छलावों को समझकर आत्मालोचना के साथ सार्थक हस्तक्षेप करना ही श्रेयस्कर है। उससे भी अधिक श्रेयस्कर है सुन्दरता की हलचल से अलग अपने को आगामी अतीत बनाने से पहले अपनी क्षमताओं को कारगर औजार बनाना।'

इस प्रकार शान्ति सुमन का निजी जीवन भी एक लम्बा गीत ही लगता है जिसको समय–समाज और परिस्थितियों ने कई बार लिखा है। इनकी गीत–यात्रा अविराम चल रही है। इसलिये इसके प्रति एक अपेक्षा और शुभेच्छा ही जगती है। प्रत्येक रचनाकार विशेषकर एक गीतकार अपने उस श्रेष्ठ की प्रतीक्षा करता है जो अभी लिखा जाने वाला है। शान्ति सुमन को भी इसकी प्रतीक्षा है।

■

परिधि

'ओ प्रतीक्षित' : एक समीक्षात्मक वक्तव्य

❑ आरसी प्रसाद सिंह

सुश्री शान्ति सुमन द्वारा रचित एवं लहर प्रकाशन, 2 मिण्टो रोड, इलाहाबाद–2 से प्रकाशित नवगीतों का संकलन 'ओ प्रतीक्षित' एक प्रतीक्षित संग्रह ही है। कवयित्री स्वयं नवगीतकार है और नए युग की अनुभूतियों को लेकर आयी है। शीर्षक 'ओ प्रतीक्षित' गीतात्मक तो है ही, साथ ही उससे नवगीत का संदर्भ भी व्यक्त हो जाता है। अब वह प्रतीक्षित अभी इसमें साकार हुआ है या नहीं – इसका तो आप अवलोकन करेंगे और सभी पाठक इससे परिचित हो ही जायेंगे, लेकिन मुख पृष्ठ पर जो तस्वीर दिखाई पड़ती है – उससे पता चलता है कि अभी वह डाल सूखी ही हुई है। यह जो प्रतीक है – वह कह रहा है कि वह प्रतीक्षित अभी आया नहीं और आया भी हो तो कम से कम मेरे सामने दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है।

सबसे पहले कवयित्री से सहानुभूति रखते हुए मैं आशा करता हूँ कि 'यह डाल वसन वासन्ती लेगी।' वसन वह ले और इस तरह से वह हरी–भरी हो जाए और फूलों–फलों से भर जाए। अब शान्ति सुमन के नव गीतों को देखिए। जहाँ तक मैंने उनकी कविताएँ देखी हैं, मुझे लगता है कि एकतो वह जीवन से संघर्ष करती हैं और उन संघर्षों को कविता का रूप देती हैं और दूसरी ओर वह एकान्त के क्षण को भी ढूँढती हैं, उन संघर्षों से ऊबती भी हैं। दोनों बातें है। यह स्थिति प्रायः सभी आधुनिक कवियों के साथ है।

अब यह देखिए कि कहाँ–कहाँ शान्ति सुमन के गीतों ने मुझे प्रभावित किया है। दो–चार शब्दों में अपनी पसंद आपको मैं बता देता हूँ। जो कविताएँ मेरी रूचि की हुई हैं – उन्हें पढ़ते–पढ़ते मैंने नोट कर लिया था। आप देखिए कि कवयित्री की मनोदशा कैसी है और किस प्रकार वह बदलती रहती है। शान्ति सुमन का जीवन ग्रामीण वातावरण से प्रारम्भ होता है।

इसलिए ग्राम्य वातावरण के जो चित्र उन्होंने उपस्थित किए हैं, वे बड़े ही सुन्दर हैं, मनमोहक हैं। उनको देखने से पता चलता है कि ग्राम्य

वातावरण से वह कितनी प्रभावित हैं और उसमें कितना रस लेती हैं। लेकिन वह वातावरण कायम नहीं रह सका और उन्हें शहर में आना पड़ा। शहर में जो उनका प्रथम परिचय है – लगता है कुछ ऐसा कि शहर उन्हें पसंद नहीं आया। उनकी कविता सामने है –

'यह शहर पत्थरों का,
पत्थरों का शहर।'

ग्राम्य जीवन से नागरिक जीवन में जब उनका जीवन परिवर्तित होता है तो वह शहर अपरिचित, उदास बिल्कुल पत्थरों का मालूम होता है। आगे वह कहती हैं –

'टूटी हुई सुबह यहाँ झुकी हुई शाम
जेलों से दफ्तर के शापित आराम
गाँठों सी गलियों में भरी–भरी बदबू
साफ हवा की जगह पियें सभी जहर
पत्थरों का शहर।'

यह शहर मुजफ्फरपुर ही हो सकता है – ऐसा मेरा अनुमान है। वैसे आपलोग जो कहें। फिर वे घुटते सम्बन्धों की बदनाम चर्चा और नाकाम जीने की बात करती हैं। लेकिन यह स्थिति रही नहीं। धीरे–धीरे परिस्थितियों में अन्तर आता गया है। किस तरह से फिर उन्होंने शहर को पसन्द किया और बढ़ते व्यापार में आदमी के बिक जाने की बात की है। वह कहती है –

'माने जहाँ पूरे थे चौक –
झड़ आए मकड़ी के जाले
जिस घर में धुआँ ही धुआँ हो –
थम सकते कैसे उजाले
गोबर लीपे घर–द्वार,
शहर क्षण रूक गया।

ये चित्र बदलते हैं। फिर वे कहती हैं –

'क्रोशिया काढ़े दिन बीते –
अब तो चूल्हे–चौके की बात।'

इस तरह सारे गीत जैसे एक कहानी कहते से मालूम होते हैं। और

उनको यदि आप ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे तो गीतकर्त्री के पूरे जीवन का एक चित्र आपके सामने उपस्थित हो जाएगा। मैंने तो संकेत भर कर दिया, लेकिन ये चित्र कोई क्रमबद्ध नहीं हैं। वे यत्र–तत्र बिखरे पड़े हैं। किन्तु, उन्हीं बिखरे शब्दों और पन्नों में एक कहानी कहते मालूम पड़ते हैं। यही कहानी अन्त में धीरे–धीरे प्रश्न और उत्तर बनकर अपने आप में ही प्रश्नोत्तर हो जाते हैं –

'मेरे तो थे भरे–पूरे सवाल
मीत, तूने क्या दिए –
आधे–अधूरे जवाब।'

या

रही खटकाती सपन के द्वार
सारी रात, सारी रात –
एक भटकी रोशनी के लिए।'

अभी इन गीतों को बोलते समय मुझे यह भी याद आता है कि अक्सर शान्ति सुमन से यों भी कविताएँ सुनने का मुझे सुअवसर मिला है। उनका कंठ स्वर कुछ वैसा है कि अभी जो मैं कह रहा हूँ उससे कई गुणा आनन्द उनके कंठ–स्वर से और उनसे उन्हीं की लय में कविता सुनने में आता है। कभी–कभी मुझे ऐसा लगता है कि छन्दों के जो लय–ताल हैं, वे इसमें टूट जाते हैं, लेकिन उनके स्वर पर वे सभी लय–ताल बिल्कुल दुरूस्त हैं और कभी मालूम नहीं पड़ेगा कि वे टूटे हुए हैं। किन्तु पढ़ने से कहीं कुछ खटकता है। ऐसा लगता है कि नवगीत में ऐसी बात शायद चल गई है। नवगीत में कुछ ऐसा भी हो कि पुराने प्रकार के जो छन्द और पिंगल के नियम थे, उन पर ध्यान देना कोई आवश्यक रह भी नहीं गया है। इसीलिए मैंने भी इस पर कोई ध्यान नहीं दिया है।

कवयित्री के जीवन में इतना संघर्ष है कि वह संघर्षों से ऊबती है। और, ऊबती हैं तो क्या कहती हैं – वही तो जीवन है और इस तरह वे संघर्षों को जीवन मानकर जी लेती हैं। जीवन के संघर्षों में कवयित्री ने स्वीकार किया है कि उसके दरवाजे खटखटाए हैं – एक रोशनी के लिए। कितना दुख है कि उन्होंने एक भटकी रोशनी के लिए हर दरवाजा को खटखटाया है, लेकिन रोशनी मिली है, ऐसी बात नहीं है

कि रोशनी नहीं मिली है। और, जो रोशनी मिली है तो, संघर्ष आनन्द में बदल गया है। जितनी भी घुटन थी, कुण्ठा, उमस और जो कुछ बदली थी, वह सभी छँट गई है और उसके बाद वह कविता आई है – जो कविता एकांत के क्षण में लिखी जाती है और जिस कविता में बाहर की चीजें, तूफानी भीड़–भाड़, शोर–शराबा, मेला ये सब नहीं है। तब है क्या वह, जहाँ 'मैं' होता है और कोई 'तुम' होता है। उस 'तुम' को आप जो कह दें। वह 'तुम' बराबर से, कविता के अनादि काल से गोचर रहा है। जिसने जिस भाषा में उस 'तुम' को देखा है, उसने, उसको उसमें पाया है। वह 'तुम' कहीं प्रेमिका बनकर आती है, कहीं ईश्वर बनकर, कहीं शत्रु बनकर तो कहीं दानव बन·कर भी आता है। यह 'तुम' क्या है, कहाँ है – यह तो अपने में सोचने–समझने की बात है। अंत में जहाँ कवयित्री कहती हैं –

कचनारी छांह बीच आंगन
दिन–दिन भर,
एक सहज जीवन जी लेने
आ क्षण भर।'

मैं समझता हूँ कि यही उसके आनन्द की परिणति है जहाँ पर आकर वह इस कविता की बेसुधि में खो जाती हैं – यही कविता की सार्थकता होती है।

■

गीत प्राण - शान्ति सुमन

❑ भारतभूषण

1960–65 तक मेरी लोकप्रियता बहुत हो गई थी। सुदूर स्थानों के महानगरों यथा बम्बई, कलकत्ता, बैंगलोर, लुधियाना आदि स्थानों के महान आयोजनों में हो आया था। दिल्ली तो जैसे मुझे स्थानीय हो गयी थी। पहली पीढ़ी के कई बड़े कवि साहित्यकारों का स्नेहाशीष प्राप्त हो चुका था। मेरे परिचितों में कई कवि नवगीतधारा से जुड़ गये थे। इनमें रमेश रंजक, उमाकान्त मालवीय, वीरेन्द्र मिश्र, शिवबहादुर सिंह के अतिरिक्त और भी बहुत से थे। मैं प्रारंभ से ही प्रेमगीत लिख रहा था। मेरी रचना प्रक्रिया पर ये सभी मुग्ध होते थे। सभी का असीम प्रेम मुझे प्राप्त था। नवगीत का विचार और उसकी प्रस्तुति मुझे प्रभावित तो करती थी पर इसकी अभिव्यक्ति मुझसे सधी नहीं। दस–पाँच गीतों में कहीं–कहीं कुछ स्पर्श नवता का आया भी है पर मैं संतुष्ट नहीं हो सका। इस विधा से मेरी दूरी बनी ही रही।

कार्यक्रमों में जाकर आपस में चर्चा होती ही थी कि कौन–कौन कहाँ–कहाँ गीत–नवगीत लिख रहा है। मंचों पर नई–नई कवयित्रियाँ बहुत मिल जाती थीं। कविता वे कम या बेकार लिखती थीं पर कवियों की मित्र अधिक हो जाती थीं। कवि सम्मेलनों में ये धंधा भी चल ही रहा था। कभी–कभी शान्ति सुमन का नाम भी आ जाता था पर कभी भेंट नहीं हुई थी। एक बार वाराणसी के पास किसी छोटे से नगर में मंच पर शान्ति जी भी थीं। मैं प्रसन्न हुआ कि चलो जिसकी इतनी प्रशंसा सुनी है तो आज सुनें भी। शान्ति सुमन ने अपना लोकप्रिय गीत ही पढ़ा था 'थाली उतनी की उतनी ही छोटी हो गई रोटी/कहती बूढ़ी दादी अपने गाँव की'। मैं इस गीत के सौंदर्य और विस्तार–प्रस्तुति पर सिहर उठा था। नवगीत का सुन्दरतम यह गीत मुझे लौटते में यात्रा भर में गूँजता रहा। मैं जैसे धन्य हो गया। इस गीत का सौंदर्य थाली और छोटी रोटी में नहीं है 'कहती बूढ़ी दादी' में है। छोटी उम्र की बेटी या बहू को रोटी, थाली के नाप का पता नहीं हुआ है। ये अनुभूति की चिंता और दुख उसे पता है जो 60–70 वर्ष से इसे दृष्टि से अनुभव कर रही है। मैं इस चिंचित अनुभूति के विस्तार पर निहाल हो गया। इसके बाद हर पत्रिका में मैं शान्ति सुमन को ढूँढता रहा। अनेक पत्रिकाओं में पढ़ कर सोचता

रहा कि चलो एक कवयित्री तो हिन्दी कविता को मिली। शुभश्री सुमित्रा कुमारी सिन्हा के बाद और किसी ने इतना प्रभावित नहीं किया। शान्ति सुमन ने नवगीत को अपने मन–प्राण में पूरी तरह रचा–बसा लिया है। शान्ति जी की अब अनेक पंक्तियाँ पढ़ चुका हूँ –

'फटी हुई माँ की साड़ी घर की उदास आँखें'

x x x

'चार घरों में बरतन मलती उसकी बड़ी बहू'

x x x

'कल बाजार बंद था टिन में आटे नहीं पड़े
भूखे सो जायेंगे बच्चे बाबा नहीं फिरे'

x x x

'काठ के सपने शहर आए
देखते जैसे कि डर आए'

गीत में जनचेतना बहुत से गीतकारों में आई है। रमेश रंजक में बहुत पैनापन है। शान्ति सुमन के गीतों में भी बहुत पैनापन है लेकिन कविता के परिधानों से ढँका है, चुभन वैसी ही है। जनगीत पीड़ा, घुटन, आज का जीवन यथार्थ, निर्धनता, विवश परिश्रम की भूख से टूटी देह, राजनीति के महाभारतीय छल के परिणाम, सभी जनगीत की अभिव्यक्ति में आ गये हैं। बच्चनकालीन प्रेम–सौंदर्य की भावुक चित्रशाला भूखे मरते मनुष्य जीवन पर मनुष्य की चिंता, बिहार के किसान मजदूर का जीवन चित्र बनकर प्राणों में चुभने लगती है। बच्चन जी की गीत सृष्टि है –

'है याद मुझे वह शाम जब रतनारी प्यारी साड़ी में
तुम मिलीं प्राण नतलाज भरी खिलकर फूले गुलमुहर तले।'

शान्ति जी ने लिखा –

'फटी हुई माँ की साड़ी घर की उदास आँखें,
खाँस रहे बाबू के इन हाथों पर रखी सलाखें
पीठ दिखाई दे भाई की कितने बोझ लिये'

x x x

'चार घरों में बरतन मलती उसकी बड़ी बहू
सूख रहा पैसे की खातिर उसका लाल लहू'

उपरोक्त दोनों कविता के अंश एक सी असह्यगत अनुभूति के हैं। रचना प्रक्रिया का एक सार्वभौम नियम है कि जो अनुभूति मन–प्राण सह नहीं पाते अर्थात् भीतर नहीं रख पाते वह बाहर निकलने को उमड़ती है। किसी व्यक्ति से कहें तो वह ठीक से अनुभव नहीं कर पायेगा, सुन भले ही ले। अब केवल शब्द रूप ऐसा है जो वैसी ही तीव्रता को अपने में समो लेगा। निराला ने 'वह तोड़ती पत्थर, देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर' वह क्षण निराला को सहन नहीं हुआ। अंततः शब्द रूप ले गया। 'पत्थर तो वह आज भी तोड़ रही है' किन्तु अनुभूति का वह तीव्र क्षण शब्द रूप लेकर ही शांत हुआ। विद्यापति के शृंगार गीत पढ़ें तो 'नीबीबंध'... जैसे अंश भी आते हैं जो मन को अच्छे नहीं लगेंगे पर विद्यापति की अनुभूति की तीव्रता की सोचें तो उनकी रचना–प्रक्रिया समझ में आ जाएगी।

एक घटना पढ़ी थी कि रामकृष्ण परमहंस दो–तीन शिष्यों के साथ खेत के किनारे–किनारे जा रहे थे। खेत में मालिक ने मजदूर को दो बेंत मारी। घर जाकर जब शिष्य उन्हें स्नान करा रहे थे तो दोनों बेंतो के निशान परमहंस की कमर पर थे। यह है अनुभूति की तीव्रता का रूप। कविता लिखने में भी यही अनुभूति–प्रक्रिया काम करती है। अदम का एक शेर है –

'काजू भुनी है प्लेट में व्हिस्की गिलास में
उतरा है रामराज्य विधायक निवास में'

अनुभूति जितनी तीव्र होगी छंद, बिंब, शब्द स्वयं ही मिल जाते हैं, सोचना नहीं पड़ता। शान्ति जी ने किसान के जीवन, श्रम, खेत में खेत हो जाने को बहुत तीव्रता से अनुभव किया है, जैसे देखा हुआ और अनुभव किया हुआ जीवन जिया है। उनकी कविता भी उसी किसान के कष्ट का प्रतिरूप है। असह्य पंक्तियाँ हैं शान्ति जी की –

'यह भी हुआ भला
कथरी ओढ़े तालमखानें चुनती शकुन्तला
मुड़े हुए नाखून ईख सी गाँठदार उँगली
टूटी बेंट जंग से लथपथ खुरपी सी पसली

x x x

'एक सूर्य रोटी पर औंधा चाँद नून सा गला!'
धनवादी तेवर के सामने यह है जनवादी तेवर।

x x x

'आजतक नहीं छूटी रेहन पर लगी जो
जमीन पिछुवारे की बहिना की शादी में
यह जालिम घुसखोरी कब तक छिपा रहेगा
अपना लाल सूरज भी इस मोटी खादी में!'

वर्तमान का पैसे का खेल, राजनीति की रेल पेल, निर्धन समाज से विमुख, अरबपति बनने के खेल, बहकाते हुए संवाद–भाषण, नेताओं के जुलूस, निर्धन का जीवन सभी कुछ आजादी के उपहार हैं। शान्ति जी ने इस संपूर्ण जीवन–क्रम को अपने नवगीत, जनगीत का आधार बनाया है। इसी पंक्ति में नचिकेता, देवेन्द्र आर्य, महेन्द्र नेह, रमेश रंजक आदि अनेक कवि आ गये हैं। समाज की विचारधारा को यह जनगीत एक नई सोच दे रहा है। प्रशासन पर तो इसका कोई असर पड़ नहीं रहा है किन्तु पाठकों के मन में इस सबके प्रति एक करुणा और क्षोभ अवश्य उत्पन्न हो रहा है। साहित्य का काम भी यही है।

प्रेम, शृंगार और प्राणों को लुभाने वाले गीत जिस दृष्टि और अनुभूति से रचे जाते हैं, वही दृष्टि अपना आधार बदल लेती है। दृष्टि वही है, दृश्य का मूल बदल जाता है। जहाँ प्रेमिका का मुख, होठ, केश, भंगिमा छंदों में उतरती जाती है वहाँ अब भूखे पेट, श्रम से हारे थके शरीर, पैसे की कमी के कारण दवा नहीं ला पाने की विवशता, संतान की भूख नहीं मिटा पाने की स्थिति आदि के बिंब गीतों में, विशेष रूप से नवगीतों में, जनगीतों में तीखी और कड़वी भाषा में उतरते जाते हैं। शान्ति सुमन को यही दृष्टि मिली है। उनके गीत मन–प्राणों को प्रेम से छूते नहीं तीर की तरह भावना में चुभते हैं।

शान्ति जी एक विदुषी महिला हैं। साहित्य, समाज, राजनीति की विचारधारा सबका उन्हें ज्ञान है। मैंने उनके संग्रह तो नहीं पढ़े पर पत्रिकाओं में अवश्य पढ़ा है। मेरे लिए उनका व्यक्तित्व स्पष्ट है। अभी कहीं एक गीत पढ़ा था। इसमें मानवीकरण का आनंद लें –

'पीले कुरते पहन नाचते आँखों में वे दिन
लगता दबे पाँव आई है अपनी सगी बहिन।'

शान्ति सुमन की कविता और उनके व्यक्तित्व पर अभी इधर 'शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि' पुस्तक पढ़ी है। दुख यही रहा है कि बहुत देर में शान्ति जी की भेंट हुई। अब तो वे अपनी कविता सहित पूर्णरूपेण मुझे स्पष्ट भी हैं और प्रिय भी। प्रभु उन्हें ऐसा ही बनाए रखें। प्रारंभ में नवगीत मुझे कुछ ऐसा लगा कि इन रचनाओं में संप्रेषण कम है, पढ़कर तुरंत मन में नहीं उतर पातीं। यह शिकायत लगभग 10–15 वर्ष पहले तक और भी कई रचनाकारों को रही है किन्तु वह अब के गीतकारों में कम हुई है। संप्रेषण शक्ति बढ़ी है। वैसे भी नवगीतकारों का परिवार बढ़ा है। अलग नामान्तर करना भी मुझे नहीं भाता। गीत गीत ही है, समय के साथ जैसे शरीर कुछ बदलता जाता है वैसे ही इसे भी समझें।

बहुत लिख गया हूँ। मन प्रसन्न व्याकुल था 'शान्ति जी की गीत रचना और दृष्टि' पढ़ कर सोच रहा हूँ कि इतने विद्वान लेखकों ने इतना लिखा है कि मेरा कुछ भी लिखना कोई अर्थ नहीं रखता किन्तु भावुक होने के नाते और आयु में बड़ा होने के नाते शुभकामना देने का अधिकार तो मुझे भी है। अंत में एक वाक्य और लिख दूँ 'बहू का स्वागत वाला गीत' घर–घर में बहू के स्वागत में गाया जाना चाहिए।' बस! थक गया।

■

सहज रचनाधर्मिता की कवयित्री : डॉ० शान्ति सुमन

❑ डॉ० मधुसूदन साहा

डॉ0 शान्ति सुमन सहज रचनाधर्मिता की एक ऐसी नदी हैं जो कभी सूखती नहीं। उसकी अन्तर्धारा में यदि लोकगीतात्मक अनुभूतियों का परम्परित स्पर्श है तो सतह पर प्रवाहित जीवनानुभूतियों की प्रखरता। उसके एक तट पर यदि मिथिलांचल के लोक–रंजक गीतों की महक है तो दूसरे तट पर नये शिल्प–सौष्ठव की चहक। गीत उनकी सांसों में समाहित है। इसीलिए नवगीत के आदि प्रवर्त्तक राजेन्द्र प्रसाद सिंह उन्हें 'नवगीत की अनन्या कवयित्री एवं समकालीन लेखन की प्रणेत्री' मानते हैं तो डॉ0 रेवती रमण कहते हैं कि 'शान्ति सुमन के भीतर गीत की संवेदना निश्छल एवं अमिश्रित है। उनके भावावेश अलंकृत नहीं, स्वभावजन्य हैं। वे गीत रचने और उनकी सम्यक प्रस्तुति के लिए ही बनी हैं।'

आज जब नवगीत साम्प्रतिक काव्य–चेतना की विकास–यात्रा के उस पड़ाव पर पहुंच गया है जहाँ से वह जीवनानुभूतियों की समस्त चुनौतियों का सामना करने की सामर्थ्य का परिचय बड़ी आसानी से दे रहा है तो मुझे इस बात की पड़ताल की भी जरूरत महसूस हो रही है कि इस ऊँचाई पर पहुंचने के लिए पिछले पचास वर्षों से उसने विरोधों, विसंगतियों और उपेक्षाओं का सामना जितनी मुस्तैदी के साथ किया है, उसकी सम्यक जानकारी राजेन्द्र प्रसाद सिंह, चन्द्रदेव सिंह, शंभुनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, वीरेन्द्र मिश्र, उमाकान्त मालवीय, सोम ठाकुर, रमेश रंजक जैसे तत्कालीन नवगीतकारों को तो है ही, उस समय के तथाकथित उन समीक्षकों को भी है जो गीत को हमेशा दोयम दर्जे का साहित्य मानकर नकारते रहे। गीतधर्मी रचनाओं की इस उपेक्षा की जानकारी रखते हुए भी बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में जब गीत के नये स्वरूप की संरचना शुरू हुई थी तो बिहार के सहर्षा जिले के एक छोटे से गाँव कासीमपुर में जन्मी युवा कवयित्री शान्ति सुमन भी नवगीत की उक्त विकास–यात्रा में अपना योगदान देने के लिए आगे आयी थीं। उन्हें छायावादी गीतों की आत्मलिप्तता, नई कविता की अतिशय गद्यात्मकता और प्रगतिवादी कविताओं की बयानबाजी की जगह नवगीत की नयी भाषा–लय और सहज रचनाशीलता अधिक आकृष्ट करने लगी

थी। उन्होंने इनकी प्रवृत्तियों के अन्तर्सम्बन्ध पर तुलनात्मक दृष्टि डालते हुए स्वयं भी कहा है कि "छायावाद ने नवीन शिल्प और नये छन्दों से कविता की एकरसता को तोड़ा था, अतिशय गद्यात्मकता से उसे मुक्ति दिलाई थी, नवगीत ने अकलात्मक गीत के प्रति अपनी असहमति प्रकट करते हुए नयी रचना–शक्ति का परिचय दिया। जनवादी गीतों ने उससे भी आगे जाकर अन्तर्राष्ट्रीय मानवतावाद का परिचय दिया। शोषित–दलित जन को, उनकी दमित मानसिकता की कुंठा से मुक्ति दिलाने के लिए गीतों को हथियार के रूप में प्रस्तुत किया।" इसीलिए शान्ति सुमन को परम्परित गीतों के आत्मालाप और अज्ञेयवादी कविताओं के वार्तालाप की जगह नवगीत और जनगीत लिखना अधिक रुचिकर लगा।

डॉ0 शान्ति सुमन ने नये गीतों के लिए रचना शक्ति की तलाश नवगीत के उन्मेष काल से ही शुरू कर दी थी और नई भाषा–लय में कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए बेचैन हो उठी थीं। उनकी इसी बेचैनी का परिणाम है 'ओ प्रतीक्षित' के नये शैल्पिक सौन्दर्य में सजे–संवरे गीत जिनमें भाषा–बिम्बों की सहजता और नये दृष्टिबोध की प्रखरता स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। संवेदनहीन 'पत्थरों का शहर' देखकर वे कहती हैं –

"सिर्फ औपचारिक हैं/परिचय–प्रणाम
चाय पिला जोड़ें सब/चीने के दाम
अंधी दीवारों से टकरा निरूपाय,
लँगड़े सुधारों के कँफसते कहर।"

नये गीतों में इसी प्रकार के सहज स्वाभाविक काव्य–रूपों को देखकर ही अपना वक्तव्य देते हुए केदारनाथ सिंह ने 'पाँच जोड़ बाँसुरी' (सं0 चन्द्रदेव सिंह) में कहा है कि "गीत–कविता का आन्दोलन जिस रूप में शुरु किया गया है, वह एक प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया का परिणाम–सा जान पड़ता है और इस रूप में वह नई कविता के समानान्तर चलनेवाली काव्य प्रवृत्ति नहीं, बल्कि उसकी गद्यात्मकता, दुरूहता, जातीय संस्कारहीनता इत्यादि के विरूद्ध एक अधिक सहज, स्वाभाविक काव्य–रूप के प्रवर्त्तन का दावा–सा जान पड़ता है।" अर्थात् जिस प्रकार कविता की छान्दिक दुरूहता से ऊबकर नई कविता का छंदहीन काव्यान्दोलन प्रारंभ हुआ उसी तर्ज पर गीत की आत्ममुग्धता से खीझकर नवगीत लेखन का दौर शुरू नहीं हुआ बल्कि आम जन–जीवन के सामान्य

सुख–दुख, पीड़न–उत्पीड़न को सहज स्वाभाविक ढंग से सरल भाषा–शिल्प में अभिव्यक्त करने की समझ से शुरू हुआ। इसीलिए अधिकांश समीक्षक और नवगीतकार नवगीत को कोई काव्यान्दोलन नहीं मानते। इस संदर्भ में 'सात हाथ सेतु के' (सं0 मधुसूदन साहा) के अपने वक्तव्य में डॉ0 कुअँर बेचैन कहते हैं कि – 'नवगीत कोई काव्यान्दोलन न होकर गीत के बदलते परिवेश से जुड़े रहने की सहज प्रक्रिया है जिसके तहत परिवर्तित भाव–विचारों की अभिव्यक्ति ने नवीनतम दिशाएँ प्राप्त की हैं और जिसमें शिल्प के साथ–साथ गीत का कथ्य भी प्रभावित हुआ है। नवगीत आत्माभिव्यक्ति के साथ–साथ सामाजिक यथार्थ को भी सामने लाने में सक्षम है।' सामाजिक यथार्थ और आम आदमी की पीड़ाके प्रति अतिशय संवेदनीयता के कारण ही शान्ति सुमन की गीत–यात्रा नवगीत से प्रारंभ होकर जनगीत और जनगीत से आगे बढ़कर जनवादी गीत के पड़ाव पर पहुंचती है और अपने समय की समस्त समस्याओं, विशेषकर खेतिहर मजदूरों और गरीब तबके के कामकाजी लोगों की जरूरतों तथा युग की तमाम चुनौतियों में हस्तक्षेप करती है। उनका सहज स्वभाव चुनौतियों से घबड़ाता नहीं है, वरन् उनसे टकराने की हिम्मत रखता है। स्वभाव से सरल–शान्त व्यक्तित्व के भीतर इतनी तल्खियाँ, इतना अग्निम आक्रोश, विसंगतियों को मिटा देने का इतना साहस न जाने कहाँ से आ जाता है। लगता है कवयित्री ने बचपन से ही अपने गाँव–घर के लोगों को दबते–पिसते और मरते–खपते देखा है, दिनभर खेतों में खटनेवाले किसानों के बच्चों को भूखे पेट पानी पीकर सोते देखा है। संभवतः इसीलिए 'ओ प्रतीक्षित' (1970) और 'परछाईं टूटती' (1978) दो नवगीत संग्रहों के पश्चात् 'सुलगते पसीने' (1979), 'पसीने के रिश्ते' (1980), 'मौसम हुआ कबीर' (1985), 'भीतर–भीतर आग' (2002), 'एक सूर्य रोटी पर' (2006) और 'धूप रंगे दिन' (2007) छहों संग्रह जनवादी गीतों के हैं। जनबोध उनकी गीतधर्मी रचनाओं का मूल भाव है।

जनगीत अथवा जनबोधी गीतों के प्रथम प्रवर्त्तक रमेश रंजक ने एक जगह लिखा है कि वे स्वयं पहले नवगीत की सर्जनात्मकता से बड़ी गहराई से जुड़े हुए थे किन्तु हठात् उन्हें महसूस हुआ कि नवगीत उनकी जनवादी विचारधारा को उसी शिद्दत से अभिव्यक्त करने में समर्थ नहीं है जिस ईमानदारी और प्रखरता के साथ वे अपने विचारों को प्रस्तुत करना चाहते हैं। फलतः अपनी अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने एक नयी

जमीन की तलाश की और कथ्य और शिल्प दोनों धरातलों पर नये तेवर में अपने भावों और विचारों को अभिव्यक्त करना शुरू किया। नवगीत में लाये गये इस नयेपन को ही उन्होंने जनगीत अथवा जनवादी गीत की संज्ञा दी। लेकिन कथ्य और शिल्प के नयेपन के बावजूद उनके जिन जनगीतों का स्वभाव नवगीत के जितना करीब रहा उन्हें मंच पर उतनी ही अधिक सराहना मिली। एक उदाहरण देखें –

"गूँथ खुली वेणी में/हँसी किरण–फूल की
हमने क्या भूल की/भौंहे क्यों तन गई बबूल की"

– 'गीत विहग उतरा' – रमेश रंजक, पृ0 9

शान्ति सुमन के अधिकांश जनगीतों में नवगीत का यही स्वभाव बरकरार है, इसीलिए वे जनवादी आन्दोलन से जुड़कर भी पूरी तरह नवगीत के शैल्पिक सौष्ठव से अलग नहीं हो पायीं। उनके जनगीत में भी नवगीत है और नवगीत में भी जनगीत। इसीलिए नचिकेता जी बेहिचक कहते हैं कि "शान्ति सुमन हिन्दी के स्त्री गीतकारों, खासकर नवगीत और जनगीत के क्षेत्र में सर्वोच्च शिखर पर विराजमान हैं, जिन्होंने अपनी रचनात्मक पहलकदमी की बदौलत गीत–रचना का एक नया सौन्दर्यशास्त्र गढ़ा है।" वस्तुतः अपने गीतों के इसी सौन्दर्यशास्त्र के कारण शान्ति सुमन के जनवादी गीत भी नवगीत के संस्कारों से सदैव जुड़े रहे। निम्न पंक्तियों में बिम्बों और प्रतीकों की सहज–सौन्दर्य–शास्त्रीयता की झलक देखकर कोई भी मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता है –

"यह कपास–सी सुबह/रात खादी कुरते–सी,
कटी फसल की महक/लगे अनलिखे पते–सी
चाँदी की हँसुली यों तोड़ गये/हरिजन जैसे दिन।"

अथवा

"माँ की परछाईं–सी लगती/गोरी–दुबली शाम,
पिता–सरीखे दिन के माथे/चूने लगता घाम...,
याद बहुत आते हैं घर के/परिचय और प्रणाम।"

लेकिन जब 'इतिहास दुबारा लिखो' (रमेश रंजक) में संकलित गीतों के तर्ज पर शान्ति सुमन क्रान्ति के गीत लिखने लगती हैं तो अभिव्यक्ति का तेवर प्रगतिशील रचनाधर्मिता से जुड़ जाता है –

"नहीं चाहिए आधी रोटी और न जूठा भात,
यह खोटी तकदीर एक दिन खायेगी ही मात,
हम गरीब मजदूर भले/हम किसान मजबूर भले
पर अपनी लाचारी का अब गीत न गायेंगे,
ताकत नई बटोर क्रान्ति के बीज उगायेंगे।"

कवयित्री के जनवादी गीतों का यह स्वभाव उनके प्रायः सभी संग्रहों में विभिन्न भंगिमाओं में विद्यमान है। कहीं घर–आंगन के टूटने की पीड़ा है तो कहीं माँ–बहनों के आटे–सा पिसने का दर्द, कहीं सूदखोरों के कर्ज से दबे किसानों की कराह है तो कहीं जमींदारों की दमन–चक्की में खेतिहर मजदूरों के पिसे जाने की आह, कहीं सामाजिक विसंगतियों से उत्पन्न जानलेवा परिस्थितियों से जूड़ने के दृश्य–बिम्ब हैं तो कहीं सत्ता के आतंकवादी आईने में अन्याय और अत्याचार के घिनौने प्रतिबिम्ब और कहीं इनसे उबरने के लिए जन–जागरण का आह्वान है तो कहीं नये समाज की स्थापना के सुनहरे सपने। उनके सारे गीत परिस्थितियों एवं जीवनानुभवों से निःसृत, काव्यात्मक भावनाओं से ओतप्रोत और नयी भाषा–लय में ढले हुए हैं। "शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि" नामक वृहद् ग्रन्थ के संपादक दिनेश्वर प्रसाद सिंह 'दिनेश' कवयित्री की समग्र गीति रचना की पड़ताल करते हुए कहते हैं कि "यद्यपि 'तप रहे कचनार' एक साझा गीत संकलन है, परन्तु इसमें संकलित शान्ति सुमन के गीत नवगीत की जीवनधर्मी संवेदनाओं के अधिक निकट हैं। कोमल–सुन्दर ताजे बिम्बों वाले ये गीत कवयित्री की विलक्षण गीतधर्मिता को व्यंजित करते हैं। ये गीत केवल नयेपन के लिए ही नहीं लिखे गये हैं, अपितु इनमें गीत की नयी रचना–दृष्टि भी समाहित है।" एक उदारहण द्रष्टव्य है –

धीरे पाँव धरो!
आज पिता–गृह धन्य हुआ है
मंत्र–सदृश उचरो।
तुम अम्मा के घर की देहरी/बाबूजी की शान
तुम भाभी के जूड़े का पिन/भैया की मुस्कान
पोर–पोर आंगन के/लाल महावर–सी निखरो
धीरे पाँव धरो!

– 'तप रहे कचनार' (सं0 मधुसूदन साहा), पृ0 18

पारिवारिक प्रसंगों को रूपायित करने में शान्ति सुमन को महारत हासिल है। रिश्तों के सभी संदर्भों के गीत उन्होंने लिखे हैं। उनके ऐसे गीतों में अभिव्यक्ति की सहजता और शब्दों की तरलता के साथ–साथ दृश्यात्मक बिम्बों की विशिष्टता देखकर आँखें जुड़ा जाती हैं। घर में बचपन से यौवन तक चहकने वाली बिटिया जब ब्याह के बाद ससुराल चली जाती है तो घर–आंगन, देहरी–दरवाजा सबकी आँखें भींग जाती हैं किंतु जब वह पहली बार ससुराल से मायके आती है तो उसके साथ ससुराल का स्पर्श आता है, वहाँ की अनुभूतियों की महक आती है और संस्कार की छुवन आती है। उसके साथ ही अम्मा की देहरी की खुशी, बाबूजी की शान, भाभी का साजसिंगार और भैया की मुस्कान के लौट आने से पूरा–का–पूरा आंगन महावर लगे पाँवों की आहट से अनुगूंजित हो उठता है। शान्ति सुमन के ऐसे गीतों में नारी–मन की प्रांजलता स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ती है। मन की ऐसी ही प्रांजलता से लबालब जनगीतों का एक संग्रह है 'एक सूर्य रोटी पर', जिसमें कवयित्री पांचजन्य फूँककर रोटी की समस्याओं का उद्घोष करती हैं –

'रोटी पर हो नमक कभी/तो प्याज नहीं मिलता,
बथुआ के सागों में पिछला/स्वाद नहीं मिलता'

x x x

'श्रम की थकन मिटे कैसे/जब रोटी–दाल नहीं,
पूरा घर देने की खातिर/खुशी निहाल नहीं
कैसे कटे पूस की रातें/बिन कम्बल सहते,
हँसी और नींद पसरी है/फटी रजाई–सी।'

मुफलिसी, भूख और रोटी के जनवादी गीतों के भीतर से जब शान्ति सुमन की सहज काव्यानुभूति मुखरित होती है तो पंक्तियों के भीतर से अपने आप महाकाव्यात्मक औदात्य की रश्मियाँ विकीर्ण होने लगती हैं और शब्द–संदर्भ अर्थ को मिथकीय भंगिमाओं से दीपित कर देता है। 'एक सूर्य रोटी पर' की ये काव्य पंक्तियाँ देखें –

'यह भी हुआ भला/कथरी ओढ़े तालमखाने/चुनती शकुन्तला
बीड़ी धुकती ऊँघ रही/पथराई शीशम आँखें,
लहठी–सना पसीना/मन में चुभती गर्म सलाखें
एक सूर्य रोटी पर औंधा/चाँद नून–सा गला।'

गरीबी में जिजीविषा के लिए मरती–खपती हुई आज के गाँव की शकुन्तला को जब रोटी पर नून नसीब नहीं है तो उसकी पथराई आँखों में किसी दुष्यंत का सपना कैसे कौंध सकता है ? परिस्थितियों की मार से त्रस्त युवती का यह मार्मिक चित्रण इतनी काव्यात्मकता एवं प्रतीकात्मकता के साथ रूपायित करना शान्ति सुमन जैसी भावप्रवण कवयित्री की कलम से ही संभव है। कुमार रवीन्द्र कहते हैं कि, 'कविता मनुष्य होने की पहली और आखिरी शर्त्त है। इससे एकात्म होना पूरे और अंतिम रूप में मनुष्य होना है।' मुझे लगता है डॉ0 शान्ति सुमन ने अपने तमाम जनगीतों में मनुष्य होने का ही प्रमाण दिया है। वस्तुतः कविता का एकान्त काम्य मानव–कल्याण ही है। शाश्वत साहित्य सदैव जनहित के साथ ही जीवित रहता है, जन–कल्याण की चिन्ता जिस कदर नागार्जुन की कविताओं में है उसी प्रकार का हस्तक्षेप शान्ति सुमन के गीतों में भी है। उनके गीतों में मिथिला की सांस्कृतिक चेतना के साथ–साथ लोकचेतना भी पूरी निष्ठा के साथ साँस लेती हुई दिखलाई पड़ती है। डॉ0 रेवती रमण का मानना है कि 'शान्ति सुमन के गीतों में मिथिला को गंभीर रचनात्मक प्रतिनिधित्व मिला है। मैथिल संस्कृति के वे सारे उपकरण जो नागार्जुन की कविता को अमरता देनेवाले हैं, बड़े शालीन तरीके से शान्ति सुमन के गीतों में सक्रिय हैं।' कवयित्री की संवेदना मिथिला की माटी और उस माटी पर रहने वाले निश्छल–निरीह ग्रामीण लोगों की मानसिकता से जितनी गहराई से जुड़ी है उतनी ही गहराई से वहाँ की लोकगीतात्मक प्रेमानुभूति से भी जुड़ी हुई है। लोकगीतात्मक सुगंध से ओत–प्रोत ये पंक्तियाँ देखें –

'गरम हथेली औ' भींगे–से तुलवे/ऐसे ही जी उकताए–से
पिया चुटकी न काटो।
पास–पड़ोसिन तो बेरी की डार
निगोड़ी पुरवैया खींचती कटार
ऐसे ही जी घबड़ाये–से/पिया टिकली न साटो।'

उपर्युक्त पंक्तियों में लोकगीत की केवल भंगिमा ही नहीं है, उसकी आत्मा भी है और वह भी पूरी गीतात्मकता के साथ। गेयता लोकगीतों की सबसे बड़ी विशिष्टता रही है और इसी के कारण भावों, बिम्बों, अनुभूतियों और अनुभवों को आदि मानव से लेकर आज के आदमी की मूल्यगत चेतना को अभिव्यक्ति मिलती रही है। गीत का स्वरूप चाहे

जैसा हो आत्मा समान रहती है। 'कविता–1964' में डॉ0 शंभूनाथ सिंह ने इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, 'वस्तुतः गेयता ही ऐसी कड़ी है जो आधुनिक मानव को अतीत के सुदूरवर्ती आदि मानव से तथा वर्तमान के सामान्य असभ्य, अर्धसभ्य एवं अशिक्षित मानव से जोड़ती है। लोककाव्य अधिकांश गेय होता है। जब–जब काव्य आधुनिकता के दबाव के कारण सामान्य लोकजीवन से दूर पड़ जाता है तब क्रान्तिकारी दूरदर्शी कवि लोककाव्य के अनेक तत्वों को अपनाकर शिष्ट काव्य को लोक–जीवन से जोड़ते हैं। इस प्रक्रिया में गेयता तो आ ही जाती है, साथ ही परम्परागत गीत पद्धति का बहुत कुछ नवीनीकरण भी हो जाता है। ऐसे ही गीतों को चाहे वे किसी भी युग के हों हम नवगीत की संज्ञा दे सकते हैं।' शान्ति सुमन के नवगीतों और जनगीतों में ऐसे ही लोकगीतों के अनेक तत्त्वों के दर्शन हो जाते हैं। 'मौसम हुआ कबीर' की निम्न बहुचर्चित पंक्तियों में कवयित्री की रचनाशीलता के परिमार्जित लोकगीतात्मक तत्त्व देखे जा सकते हैं –

'थाली उतनी की उतनी ही/छोटी हो गई रोटी
कहती बूढ़ी दादी मेरे गाँव की।
फेन–फूल से उठे मगर राखों के ढेर हुए
कसी हुई मुट्ठी के किस्से हम मुठभेड़ हुए
भूख हुई अजगर–सी/सूखी तन की बोटी–बोटी
कहती बड़की काकी मेरे गाँव की।'

x x x

'फटी हुई गंजी ना पहने/खाये बासी भात ना,
बेटा मेरा रोये, माँगे/एक पूरा चन्द्रमा।'

लोकगीतात्मक सौन्दर्य और लोरी की कोमलता लिए उनके अनेक गीत हैं, जिनमें सहज बिम्बों के कुशल प्रयोग देखने लायक हैं। नये–नये बिम्बों और प्रतीकों की तलाश तो वे अवश्य करती हैं, किन्तु उनकी दृष्टि ज्यादातर अपने आस–पास बिखरी हुई जिन्दगी पर जाती है। वे अपने आंगन, चौबारे, कोठे, दालान, पोखर, बथान, खेत–खलिहान आदि से बिम्बों तथा प्रतीकों को पलकों की बरौनियों से पकड़–पकड़कर उठाती हैं और अपने गीतों में पिरोकर जीवन्त बना देती हैं –

'कहीं–कहीं दुखती है/घर की छोटी आमदनी,
धुआँ पहनते चौके/बुनते केवल नागफनी,
मिट्टी के प्याले–सी दरकी/उमर हुई गुमनाम।'

रोजमर्रे की जिन्दगी को उसी के मुहावरे में अभिव्यक्त करने में शान्ति सुमन को जितनी महारत हासिल है, उतनी बहुत कम रचनाकारों को है। उनकी सहज रचनाधर्मिता के इसी कौशल को देखकर मदन कश्यप ने लिखा है कि 'शान्ति सुमन हमारे समय के उन कुछ दुर्लभ गीतकारों में हैं, जो शिल्पगत अथवा शैलीगत अलगाव के बावजूद सोच और संवेदना के स्तर पर समकालीन कविता से गहरे जुड़े हुए हैं। उनके पास आज के यथार्थ की आन्तरिक दृष्टि भी है और उसे उद्घाटित करने की कला भी।' 'मौसम हुआ कबीर', 'भीतर–भीतर आग', 'एक सूर्य रोटी पर' और 'धूप रंगे दिन' के अनेक गीतों में उनकी आन्तरिक दृष्टि के अनुपम बिम्ब ऐसे सहज पारिवारिक स्वरूप में अभिव्यक्त हुए हैं जिन्हें देखकर आँखें आत्मीयता से भर जाती हैं और मन में मुग्धता का रस–संचार होने लगता है –

'बन्दोबस्त हुआ अच्छा अब/भूखों नहीं मरेंगे लोग,
अपने ही सपनों को खाकर/अपना पेट भरेंगे लोग।'

x x x

'दरवाजे का आम–आँवला/घर का तुलसी–चौरा
इसीलिए अम्मा ने अपना/गाँव नहीं छोड़ा,
कभी–कभी बजते घर में/घुंघरू–से पोती–पोते,
छोटे–छोटे बँटे बताशे/हाथों के सुख होते
घर की खातिर लुटा दिया सब/रखा न कुछ थोड़ा।'

x x x

'माँ की रोटी, नमक बहन का/और हँसी घरवाली,
हलकू ने तो देखा केवल/रात पूसवाली,
घीसू, माधो बिरहा गाते/साथ चल रही टोली।'

x x x

'जब से देखा है माँ को/आटे–सी पिसती हुई,
बहन कभी तितली–सी थी/अब चुभती हुई सुई,
गाँव–वनों–शहरों में फाँके/अपना भाई धूल।'

डॉ0 शान्ति सुमन के लगभग एक दर्जन नवगीत और जनगीत संग्रहों से ऊपर जो थोड़े बहुत उद्धरण दिये गये हैं उन्हें देखकर बड़ी आसानी से अन्दाजा लगाया जा सकता है कि कवयित्री की तमाम रचनाओं में भारतीयता का सहज आत्मीय स्पर्श और मानवीय मूल्यों की मीठी महक है। जिनका मन शुरू से ही केसर रंग में रंगा हो, जिन्होंने अपनी रचनाओं में हमेशा सुनहली धूप और सुआपंखिया शाम की छवि चित्रित करने की कोशिश की हो, जिन्दगी की दीवारों पर मकड़ी की जालों–सी बिछी हुई उलझनों को सुलझाने में अपनी सांसों की सारी ऊर्जा समर्पित कर दी हो उनके समग्र गीतात्मक अवदान के मूल्यांकन के जब वक्त आये तो समीक्षकों की कोताही और गीत–नवगीत के प्रवक्ताओं की उपेक्षा के कारण की पड़ताल आवश्यक हो जाती है। इस प्रसंग में सर्वप्रथम मेरा ध्यान डॉ0 शम्भूनाथ सिंह द्वारा संपादित 'नवगीत दशक' की ओर जाता है। नवगीत के क्षेत्र में 'गातांगिनी' (1958), 'कविता–1964' (1964) और 'पाँच जोड़ बाँसुरी' (1969) के पश्चात् 'नवगीत दशक' (1982) के प्रकाशनोपरान्त गीत के इस नये स्वरूप ने सबको अपनी ओर आकर्षित किया। नवगीत के प्रवर्तन में तीनों 'नवगीत दशक' और फिर 'नवगीत अर्द्धशती' की भूमिका सर्वमान्य है और इन ग्रन्थों में तत्कालीन नवगीतधर्मी तमाम चर्चित रचनाकारों को सम्मिलित किया गया। यहाँ तक कि नवगीत–यात्रा में बहुत देर से शामिल होनेवाली राजकुमारी 'रश्मि' और डॉ0 शैल रस्तोगी भी 'नवगीत अर्द्धशती' में अपनी उपस्थिति दर्ज करा गईं किन्तु 'नवगीत दशक–एक' से लेकर 'नवगीत अर्द्धशती' तक में डॉ0 शान्ति सुमन का नाम कहीं दिखलाई नहीं पड़ा। जबकि नवगीत की शुरुआत के दिनों से ही शान्ति सुमन के गीत विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में निरन्तर प्रकाशित होने लगे थे और 1967 से काव्य–मंचों पर उनके नये स्वभाव के गीतों की सराहना होने लगी थी। वे उसी समय से महीयसी महादेवी वर्मा, डॉ0 रामकुमार वर्मा, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, डॉ0 रामदश मिश्र, उमाकान्त मालवीय, सोम ठाकुर, ओम प्रभाकर, आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री आदि बहुचर्चित कवियों के साथ काव्य–पाठ कर रही थीं। उनके गीतों की प्रस्तुति, भावाभिव्यंजना, शिल्प–सौष्ठव और स्वर–माधुर्य की ओर प्रबुद्ध श्रोताओं एवं विशिष्ट विद्वतवर्गों का ध्यान आकृष्ट होने लगा था। उनके नवगीतों का पहला संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' वर्ष 1970 में प्रकाशित हो चुका था। पाठकों के बीच

उस संग्रह के गीतों की चर्चा भी हो रही थी, फिर भी पूरे बारह वर्ष बाद 1982 में जब 'नवगीत दशक–एक' का प्रकाशन हुआ तो संपादक को नईम, सोम ठाकुर, देवेन्द्र शर्मा, देवेन्द्र कुमार, भगवान स्वरूप, उमाकान्त मालवीय, शिव बहादुर सिंह भदौरिया, रामचन्द्र चन्द्रभूषण, ठाकुर प्रसाद सिंह के नाम तो याद आये किन्तु बिहार के एक छोटे–से गाँव में जन्मी और पूरी प्रतिबद्धता के साथ नवगीत लेखन को समर्पित युवा कवयित्री शान्ति सुमन का ध्यान नहीं आया। संपादक अपना नाम छोड़ कर नवगीत लेखन की इस एक मात्र जेनुइन कवयित्री को 'नवगीत दशक–एक' में शामिल कर सकते थे, किन्तु न जाने ऐसा क्यों नहीं किया गया ? आश्चर्य की बात तो यह है कि तब तक कवयित्री के चार–चार नवगीत–जनगीत संकलन प्रकाशित हो चुके थे। मैं नहीं जानता संपादक ने ऐसा क्यों किया; किन्तु यदि यह उपेक्षा नहीं होती तो परवर्ती काव्य में नवगीत के अध्येताओं को यह सोचने का अवसर नहीं मिलता कि नवगीत के प्रवर्त्तकों में प्रारंभ से ही शिविर–संगठन की प्रवृत्ति पनपने लगी थी। यह शिविरबद्धता आज भी बरकरार है और इससे गीत, नवगीत, जनगीत और जनवादी गीत को कितनी क्षति हुई है और हो रही है इसकी जानकारी कमोवेश सबको है, किन्तु कोई भी मठाधीश होने की प्रवृत्ति से मुक्त होना नहीं चाहता।

डॉ0 शान्ति सुमन की गीत–साधना अब भी पूर्ववत चल रही है। प्रति वर्ष उनके गीतों अथवा जनगीतों का कोई न कोई ताजा संकलन देखने में आ जाता है। गीत सृजन की यह निरन्तरता और सारस्वत साधना के प्रति इतनी प्रतिबद्धता विरले ही मिलती है। उनके समग्र साहित्य पर दिनेश्वर प्रसाद सिंह 'दिनेश' ने 'शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि' शीर्षक पौने चार सौ पृष्ठों का बृहद् ग्रंथ प्रकाशित कर कवयित्री के छह दशकों की सहज रचनाधर्मिता को मूल्यांकित करने का बड़ा सार्थक प्रयास किया है जिसमें डॉ0 शिवकुमार मिश्र, डॉ0 विजेन्द्र नारायण सिंह, डॉ0 मैनेजर पाण्डेय, डॉ0 चन्द्रभूषण तिवारी, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, उमाकान्त मालवीय, डॉ0 सुरेश गौतम, डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद, कुमार रवीन्द्र, नचिकेता, सत्यनारायण, यश मालवीय, डॉ0 अशोक प्रियदर्शी जैसे अधीत विद्वान समीक्षकों ने डॉ0 शान्ति सुमन के समग्र साहित्य का विवेचन करने का प्रयास किया है।

अन्त में मैं यहाँ केवल इतना और कहना चाहता हूँ कि विद्यापति की

गीत–भूमि पर जन्मी इस अम्लान सुमन की पंखुरियों के पीछे जो सुगंध का अक्षरकोष छिपा है उसे उद्घाटित करने के लिए इस प्रकार के कई और मूल्यांकन ग्रंथों की आवश्यकता होगी। आशा है बिहार की माटी पर प्रस्फुटित इस सहज रचनाधर्मिता की कवयित्री को आज नहीं तो कल कोई न कोई ऐसा आलोचक अवश्य मिलेगा जो उनके हजारों पृष्ठों में परिव्याप्त गीतों, नवगीतों और जनगीतों का तथ्यात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत कर नवगीत एवं जनगीत–यात्रा की पड़ताल का मील–स्तंभ स्थापित करने की महत् भूमिका निभायेगा।

■

शिखरस्थ पहचान

❑ विष्णु विराट

शांति सुमन हिन्दी गीति काव्य की शिखरस्थ पहचान से जुड़ी एक ऐसी विदुषी कवयित्री हैं जिन्होंने सच्चे अर्थों में गीतों को जिया है अथवा कह सकते हैं, जीवन की विविध आयामी सोच के साथ गीतों में समन्वित हुई हैं, गीतों से जुड़ी हैं। सामान्य मनुष्य की झोली भर पीड़ा और मुट्ठी भर खुशी उनके समग्र वैचारिक पटल को स्पंदित करती है। यही कारण है कि नवगीतकारों की अव्यवस्थित भीड़में वह सम्मिलित नहीं हैं। उनकी अपनी संवेदनाएँ हैं, अपनी सोच है और अपने मानसिक उद्वेग हैं। जनाग्रही जीवन की कटुता से वह अलग नही हुईं। निम्न मध्यवर्ग की त्रासदी और अभावजन्य दैनंदिनी में भी वह सुख के क्षणिक अनुभास ढूँढ लेती हैं।

शांति सुमन किसी आरोपित लीक को कभी स्वीकार्य नहीं कर पाईं। यह उनकी रचनाधर्मिता का एक हठाग्रह भी रहा है। आंचलिक परिवेश के सांस्कृतिक उल्लास उनके गीतों में मुखर होते रहे हैं। उन्होंने हर गलित व्यवस्था को नकारा है। वह व्यवस्था समाज की हो, राजनीति की या साहित्य की। लोगों ने उन्हें लीकभ्रष्ट घोषित करने के और नकारने के जितने उपक्रम किए, वह उतनी ही प्रखर प्रहारक वाणी का उद्घोष लेकर उससे रु–ब–रु हुई हैं और अपनी निजी अस्मिता को विखण्डित नहीं होने दिया, अपना आसन हिलने नहीं दिया। उनके गीतों की गहराई और चिंतन की ऊँचाई ने उन्हें एक अलग ही आसन पर अधिष्ठित किया है।

सही बात तो यह है कि शांति सुमन नवगीतकारों की जमात में एक अकेली ऐसी कवयित्री हैं, जिन्होंने जनवादी सोच को अभिजात चिंतकों के आगे करीने से संजोकर रखा भी और एक चुनौती भरा उद्घोष भी किया। 'मौसम हुआ कबीर' में शांति सुमन की जनवादी सोच ने समग्र हिन्दी गीतकारों को कुछ और भी सोचने के लिए बाध्य कर दिया। शांति सुमन गांवों की बदहाल जिन्दगी से साक्षात्कार करती हुई एक जमी हुई रूढ़ व्यवस्था को चुनौती देती हैं। हालांकि उनका कथ्य एकदम आसमान से उतर कर अपनी नव्यता का उद्घोष नहीं करता, किंतु उनका वर्ण्य हिन्दी गीत–विधा के प्रवाह में एक नई धारा को अवश्य

दर्शाता है।

सामाजिक बदलाव के लिए करवट लेते गाँव, संघर्ष के लिए कमर कसे किसानों के बदलते तेवर, शोषित, दमित और त्रस्त लोगों के युद्धरत होते संकल्पित इरादे इनके गीतों में अनुभासते हैं, जब वह कहती हैं –

थमो सुरुज महाराज, नयन काजर भर लें,
बोये पिया पसीना, फसल सगुन कर लें।

आँखों में धूल और धुंध के गुबार लादे जब एक किसान युवक जमीन के गर्भ तक पसीने के बीज बोने जा रहा है और नई फसल के मंगल मुहूरत को संयोजित कर रहा है, तब आकाशगामी अग्निगर्भा इस सूरज को झुकना ही होगा, यह विनत आक्रोश का आगत युद्धोन्माद भी है और नूतन धान्य के प्रजन्मने का शंखनाद भी है।

शांति सुमन की कविताएँ महज नारेबाजी नहीं हैं, उनके गीतों में राग है, रंग है, रस है और एक जानी–पहचानी सी सुगंध भी है, जब वह कहती हैं –

फसल जैसे आईना हो
निरखते ये रूप!
बाँह में हरियालियाँ पहने,
पकड़ते धूप!
फूल की खुशबू कहाँ कुम्हला गई ?
रेत में धंसते कमल–सी जिन्दगी!

मानवीय संवेदनाओं के संस्पर्श उनमें भरे पड़े हैं, जब वह कहती हैं कि –

पाँव तेरे देहरी पर आ रुके होंगे।
और मन पर खिंची होगी
एक सांकल
अधिक सूनापन नयन नम हो गए होंगे
संघर्षों का होगा उगा सूरज
दहशतों भरी डूबती–सी शाम।
आज भी अकेले ही दीखते होंगे
भीड़ों में कतराये से प्राण

(ओ प्रतीक्षित)

हर पड़ाव पर शंका, हर कदम पर थकावट, अर्गलाओं के निबंधन, भींगी आँखें, सूनेपन के एहसास और साथ ही संघर्षों के अग्निदाही सूर्य का उदय...., शांति सुमन एक आगत क्रांति की आहटें सुन रही हैं, जो आज की दहशतों से भरी शाम के वीहड़ सन्नाटे को चीरकर आने वाली है।

वस्तुतः जनवादी गीतों और नवगीतों में एक स्पष्ट विभाजक ऐसा है, जनवादी गीत आम आदमी से सीधे रूबरू होते हैं, प्रदर्शनवृत्ति या कलारोपण का इनमें कोई पूर्वाग्रह नहीं रहता। गीत का सौंदर्यवादी अभिगम आयातित न होकर सहज जन्य और स्वाभाविक होता है। बात सीधी और साफ कही जाती है। संपूर्ण जीवन्त परिवेश के साक्ष्य में, कोई लाग–लपेट नहीं, जबकि नवगीतकार कलाप्रदर्शक वृत्ति के व्यामोह से बंधा है, नव्यप्रयोगों का हामी है, मिथक और बिम्बों की चमत्कृति का दुराग्रही है। चाहे वर्ण्य की दृष्टि से जनवादी गीत और नवगीत एक ही गोत्र के वंशज क्यों न हों किन्तु कथ्य की संस्कृति में अन्तराल है। देवेन्द्र शर्मा इन्द्र, कुमार रवीन्द्र, नचिकेता, रवीन्द्र भ्रमर के नवगीतों में कथ्य के काल्पनिक क्षितिजों के घटाटोप वितान हैं। श्रोता या वाचक मूलकथ्य से जुड़ने के लिए सोच की दुसह घाटियों से गुजरता है और गीतों में आनंद की सन्निहिति को देर तक टटोलता रहता है जबकि शांति सुमन में ग्राम्य परिवेश की सहज सांस्कृतिक गंध सन्निहित है। उनकी जनवादी सोच उनके गीतों की कलाचेतना को दबाकर नहीं रखती किंतु कविता का सौन्दर्य आरोपित या सायास नहीं होता। इनमें लोकाग्रही राग और रसान्वित सहजता का सारल्य है।

शांति सुमन के अधिकांश नवगीत जनवाद की पथरीली धरती पर खड़े हैं। उनके कथ्य में जीवन की सच्चाई के मरूथल है, मनुष्य की आन्तरिक मानसी–पीड़ा के जीवन्त उद्घोष है। जैसे –

कामगर के पाँव–सा/आकाश फटता/खुरदरा/
झपकियाँ लेता हुआ/वातास/ढोलक बेसुरा/
एक छोटा झूठ/केवल झूठ–सा/कब तक रहा ?
क्रास पर लटका हुआ/जो सांच/अब तक अनकहा!

आन्तरिक एकाकी पीड़ाओं की छटपटाहट को व्यक्त करती शांति सुमन कहती हैं –

कहीं गहरे/बहुत गहरे/दर्द उठता है।
आसमानों के तजुर्बे/बादलों की कन्दराएँ/
और पानी की/सतह से/चौमुखी उठती हवाएँ/
पठारों पर कहाँ/कितना/सूर्य झुकता है ?...
रोशनी की मौन भाषा/चाँद से झरती निराशा/
आँधियों में लड़खड़ाती/पत्तियों का दम दिलासा/
पत्थरों की नींद/में कोई/सुबकता है।

चिंतन के गहरे प्रकोष्ठों में उद्भुत ये अन्तस्थ व्यथाओं के कथानक हमें दूर तक पीड़ा के अहसासों से जोड़ते हैं। शांति सुमन अपनी बात अपने ढंग से कहती हैं। उनका अपना शिल्प हैं, अपनी अभिव्यक्ति है और अपने कथ्य विस्तार है। कुछ अप्रतिम बिम्ब देखिए --

धुएँ की आकृतियाँ/पात्र देश–काल/
कालिख का घोल सहज पी गया मराल/
शव–सी इच्छाएँ हुई तिल से ताड़
शिविरों में कैद यंत्रणाओं के बाद
अगम रहे लक्ष्य के पठार,
कितनी अग्नि परीक्षाओं के बाद।

शांति सुमन के चिन्तन का कैनवास बहुत विस्तृत है। फिर भी आम आदमी की दैनंदिनी की सच्चाई से वह कहीं भी दूर नहीं हुई हैं। आंचलिक सांस्कृतिक परिवेश के जीवन्त चित्र एक ओर हमें सुखद सौन्दर्य की अनुभूति कराते हैं तो दूसरी ओर आम आदमी की व्यथा–कथाओं के संस्पर्श हमें देर तक बहुत कुछ सोचने को बाध्य कर देते हैं।

शांति सुमन के गीतों का वैचारिक वितान अनन्त है जो अनेक ढंग से हमें संवेदित करके झकझोर देता है और यही इनके गीतों का वैशिष्टय है। उनकी अपनी पहचान है, जो उन्हें किसी भी आरोपित लीक से या रूढ़ प्राचीरों से अलग स्थापित करती है।

■

शांति सुमन के गीतों में रागधर्मिता

❑ डॉ० विश्वनाथ प्रसाद

गीत–संग्रह 'पंख–पंख आसमान' मेरे सामने है। नचिकेता ने शान्ति सुमन के चुने हुए एक सौ एक गीतों का संकलन तैयार किया है। यह संकलन अच्छा लगा। कुछ गीत अपने आप मन में गूंजने लगते हैं। केवल आन्दोलन के लिए लिखे गये गीतों में ऐसा राग बोध नहीं होता है। कवि अपने आसपास के यथार्थ से टकराता है। केवल यह टकराहट गीत नहीं रच पाती है। जब युग का द्वन्द्व या जीवन की कश्मकश राग में घुलती–मिलती है तो वह कवि के अन्तर में ही लय की तलाश करती है, फिर शब्द ढूँढती है। कुछ दिनों तक यह अनुगूंज अभिव्यक्ति के लिए छटपटाती है। इसके बाद गीत रचा जाता है। लोक की पीड़ा से उद्विग्न होने के बाद गीतकार उस स्थिति को बदलना चाहता है।

शान्ति सुमन के गीतों का तो मैं पहले से ही प्रशंसक रहा हूँ। बहुत से गीत तो मुझे याद हैं। आज भी अपने मित्रों से 'माँ की परछाईं सी लगती, गोरी दुबली शाम', 'कथरी ओढ़े तालमखाने चुनती शकुन्तला', 'दुख रही है अब नदी की देह', 'केसर रंग रंगा मन मेरा', 'रंगारंग अन्तरंग बातें', 'तुम मिले तो बोझ है कम', 'दिन थके कहार सा हुआ', 'अलसाने लगे फागुन के दिन', 'यह शहर पत्थरों का, पत्थरों का शहर', 'चम्पा का पेड़ नहीं बाबा', 'याद तुम्हारी जब भी आये', 'थमो सुरूज महराज', 'थाली उतनी की उतनी ही' आदि गीतों की चर्चा करता हूँ। शान्ति सुमन के राग परक गीतों में भी बदलते हुए गीतों का शिल्प और नये जीवन के एहसास हैं। बाद में उन्होंने लोकजीवन से जुड़कर जो गीत लिखे उसमें भी उनके एहसास की गहराई है। आपने लोकजीवन की पीड़ा को अपने राग में ढाल कर गीत लिखे हैं। इन गीतों में लयात्मक विविधता भी है। उमाकान्त मालवीय में यह वैविध्य नहीं था। माहेश्वर तिवारी में है। माहेश्वर तिवारी आधुनिक जीवन की विसंगतियों को अच्छी तरह से कहते हैं। लेकिन उनका निराशावादी दृष्टिकोण शम्भुनाथ सिंह के अस्तित्ववादी चिन्तन के करीब दिखाई देता है। शान्ति सुमन के गीतों में जीवन के विविध रंग हैं। इन गीतों में स्नेह की मधुरिमा, आकर्षण की तन्मयता, अपनत्व की गहराई और किसी से जुड़ने की व्यग्रता है तो लोक जीवन की मिठास और पीड़ा भी है। मध्यवर्ग के

जीवन का तनाव और संघर्ष है तो अभाव में जूझते हुए लोगों की छटपटाहट भी है। गीत की एक सीमा होती है। वह कुछ चुने हुए संदर्भों को अपना विषय बनाता है। उसे देखकर गीतकार के अन्तर्मन को हम समझते हैं। नवगीतकार कहे जाने वाले कुछ रचनाकार आज भी जबरदस्त रोमान से भरे हैं। कुछ लोकधुनों, कुछ लोकसंदर्भों और लोकभाषा से लिए गये कुछ शब्दों के कारण कोई गीत नवगीत नहीं बन जाता है।

एक बात और भी है। गीत और नवगीत का झगड़ा व्यर्थ सा लगता है। खुद गीत को साहित्य के इतिहास में जगह नहीं मिल पा रही है। पहली लड़ाई तो गीत को जगह दिलाने की है। इस लड़ाई में गीत को टुकड़ों–टुकड़ों में बांटने से लड़ाई कमजोर हो जायेगी। शिल्प बदला है। कथ्य के बदलने पर शिल्प का बदलना स्वाभाविक है। विद्यापति, तुलसी और सूर के गीतों में यह बदलाव नहीं है। 'सुन्दरि करे असनाने', 'पहिलि बदरि सम पुनि नवरंग' और 'के पतिया ले जायत रे मोर प्रियतम पास' के शिल्प में अधिक क्या कम अन्तर भी नहीं है। यही दशा 'केशव कहि न जाइ क्या कहिए', 'श्रीराम चन्द्र कृपालु भजु मन' और 'ऐसो को उदार जगमाही' की है। छायावाद में अन्तर दिखाई पड़ता है। 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से' और 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' में अधिक अन्तर नहीं है। लेकिन 'तुम कनक किरन के अन्तराल में' उन दोनों गीतों से अलग है। निराला के गीतों में परस्पर अलगाव है। 'गीतिका' और 'गीतगुंज' के गीतों में बहुत अन्तर है। 'सखि बसन्त आया' और 'मैं अकेला मैं अकेला' में बहुत अन्तर है। नये गीतकार या नवगीतकारों में ऐसी विविधता कम है। शम्भूनाथ सिंह में बराबर बदलाव है। महेश्वर तिवारी में भी कुछ बदलाव है। गुलाब सिंह, बुद्धिनाथ, उमाशंकर तिवारी आदि ने एक ही तरह के गीत लिखे हैं। श्रीराम सिंह के गीतों को जनवादी न कहकर, नवगीत ही कहना उचित है।

गीत की धारा विद्यापति से चली। वह आज भी है। ऐसी रचना गहन राग की होती है। आज की जिन्दगी का कड़ुआ–तीखा अनुभव हो चाहे स्नेह की गहराई हो, दोनों में राग की गहराई होगी ही। जीवन का संदर्भ नया हो सकता है, लेकिन प्रेम में आत्मीयता तो रहेगी ही। मूंगफली के दाने हथेली पर हों, लेकिन बातें अन्तरंग होगी ही। अब बताइये कथ्य बदला, एहसास भी बदल सकता है, लेकिन राग को कैसे खारिज कर

दीजियेगा ?

गीत में संक्षिप्तता या सांकेतिकता भी आवश्यक है। छायावादोत्तर काल के गीतकार टेक की एक पंक्ति रखकर, आगे बिम्ब दर बिम्ब उभारने लगते थे। 'समय की शिला पर' का यही हाल है। गीत को बिम्ब शक्ति देते हैं, उसे सांकेतिक बनाते हैं। लेकिन बिम्ब की अधिकता राग को बाधित करती है। सधी हुई लय भी जरूरी है। अब शास्त्रीय संगीत या लोकप्रिय संगीत नहीं चलेगा। लोकधुन या किसी छन्द की गेयता अथवा कविता के अन्दर से ही फूटी हुई लय ऐसी हो जो गेय बन जाये तो गीत के अन्दर सोने में सुहागा होता है। 'केसर रंग रंगा मन मेरा' में गेयता, लोकसंदर्भ (या लोक से वस्तुओं का चयन) और प्रेम की गहन अनुभूति उसे अच्छा बना देती है। यह गीत लोकरंग के कारण रोमांटिक होते–होते बच जाता है।

गीत की ये अनिवार्यताएँ हैं। तब से लेकर अब तक गीत की इन विशेषताओं में बदलाव नहीं आया है।

■

लोकचेतना की सार्थक नवगीत - कवयित्री : डॉ० शान्ति सुमन

❑ डॉ० राधेश्याम बन्धु

छायावादी गीतकारों में 'मैं नीरभरी दुख की बदली' के कारण महादेवी वर्मा को नारी–वेदना का जहाँ महान कवयित्री के रूप में जाना जाता है, वहीं डॉ० शान्ति सुमन को समष्टिवादी, यथार्थवादी, लोकधर्मी नवगीतों की सार्थक, सजग गीतकवयित्री के रूप में पहचाना जाता है। उनके जनचरित्री नवगीतों को बदले समय की चुनौतियों और जीवन–संघर्षों की अनुभव–संवेदना को व्यक्त करने वाले जनसंवादधर्मिता के सफल साक्ष्य के रूप में सहज ही प्रस्तुत किया जा सकता है। उनके गीत घर–परिवार की मनोरम, कोमल रागात्मक अनुभूतियों को ही व्यक्त नहीं करते, बल्कि प्रगतिशील जन आन्दोलनों और जनाधार को स्वर तथा ऊर्जा भी प्रदान करते हैं एवं सामाजिक विद्रूपता तथा असंगतियों से मुठभेड़ करना भी जानते हैं।

दिनेश्वर प्रसाद सिंह 'दिनेश' द्वारा संपादित पुस्तक 'शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि' को पढ़कर लगता है कि शान्ति सुमन ने एक मध्यमवर्गीय परिवार में पैदा होने के बाद भी आम–आदमी के दुख–दर्द, गरीबी, भुखमरी, बेकारी और अभावकी त्रासदी को बहुत नजदीक से देखा है। इसलिए वे शोषित पीड़ित समाज के दर्द को अपने गीतों में बहुत प्रभावशाली ढंग से व्यक्त कर सकती हैं। 'मौसम हुआ कबीर' के गीत समाज की इन्हीं असंगतियों और विद्रूपताओं को बेनकाब करने का प्रयास करते हैं –

'अपना तो घर गिरा, दरोगा के घर नये उठे,
हाथ और मुंह के रिश्ते में ऐसे रहे जुटे,
भूख हुई अजगर सी, सूखी तन की बोटी–बोटी
कहती बड़की काकी मेरे गाँव की।'

इन गीतों की एक और विशेषता है कि ये सिर्फ सवाल ही नहीं उठाते, उनको समाधान भी देने का प्रयास करते हैं। इसीलिये उसी गीत में एक निर्णयात्मक उद्‌बोधन भी है –

'करना होगा खत्म कर्ज, यह सूख उगाही लहना,
लापरहवाह व्यवस्था के, खूंटे से बंधकर रहना।

नाम भूख का रोटी पर जीतेगी अपनी गोटी
कहती रानी बहना मेरे गाँव की।'

(मौसम हुआ कबीर)

15 सितम्बर 1942 को कासीमपुर गांव (जिला – सहर्षा, उत्तर बिहार), में जन्मी शान्ति सुमन ने गंवई माटी की सुगन्ध और मैथिली भाषा के माधुर्य को निरन्तर अपने गीतों में संजोये रखने का सार्थक प्रयास किया है। उनके पिता का नाम श्री भवनन्दन लाल दास है जो हिन्दी – अंग्रेजी के विद्वान होने के साथ एक आध्यात्मिक संत भी हैं, अब जिन्हें लोग 'कुँवरबाबा' के नाम से जानते हैं। उन्होंने पहले डिफेन्स की नौकरी की, लेकिन बाद में उसे अंग्रेजों की गुलामी मानकर छोड़ दी। फिर उन्होंने अंग्रेजी का अध्यापन और कृषि–कार्य करके गुजारा किया। शान्ति सुमन की माता का नाम जीवनलता देवी था, जो रूप–गुण और स्वभाव से एक पवित्र स्त्री थीं। तमाम अभावों को झेलते हुए भी उन्होंने कभी कोई शिकायत नहीं की। इस पारिवारिक परिवेश का शान्ति सुमन के रचनाकार की मानसिक बुनावट में बहुत बड़ा प्रभाव परिलक्षित होता है। इसलिए उनके गीतों में जहां ग्राम्यजीवन का मनोहारी लोकसौन्दर्य दृष्टिगत होता है, वहीं मानवीय सरोकारों और सामाजिक चेतना का यथार्थवादी युगचिन्तन का एक धारदार तेवर भी देखने को मिलता है, जो अन्य कवयित्रियों में कम ही देखने को मिलता है। रागात्मक अनुभूतियों और वैचारिक सजगता का यह सामंजस्य उनके नवगीतों को पठनीय और प्रासंगिक भी बनाता है, विशिष्टता भी प्रदान करता है।

इसलिए वे अपने प्रथम गीत संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' के गीतों से ही नये रचनाशिल्प और भाषा के कारण पाठकों को प्रभावित करने में सफल हो सकी हैं। इसका प्रमाण है 'पत्थरों का शहर' गीत जो शहर के घुटते और खोखले होते संबंधों की व्यंजनात्मक व्याख्या भी करता है और हमारी आंखें भी खोलता है –

'घुटते सम्बन्धों की चर्चा बदनाम, धुएं के छल्ले सा जीना नाकाम,
मकड़ी के जालों सी बिछी उलझने, हैं सतही शर्तों से दबे सब पहर।'

(पत्थरों का शहर)

पारम्परिक गीतों की लिजलिजी भावुकता से निकालकर गीतकाव्य को यथार्थ की जिस समष्टिवादी धरातल पर प्रतिष्ठित करने का निराला ने एक ऐतिहासिक काम किया था, उसी सामाजिक सोच को अन्तर्वस्तु

के रूप में स्वीकार करके कुछ नवगीतकारों ने छांदस काव्य को नई भाषा और नये शिल्प के साथ नया कथ्य प्रदान करने का ऐतिहासिक काम किया जिसे हम 'नवगीत' के नाम से जानते हैं। नवगीत के इस अभियान को आगे बढ़ाने में सामूहिक गीतसंग्रह 'पांच जोड़ बांसुरी' (सं0 चन्द्रदेव सिंह, 1965), 'गीतांगिनी' (सं0 राजेन्द्र प्रसाद सिंह), 'समग्र चेतना' का 'नवगीत विशेषांक' (सं0 राधेश्याम बन्धु, 1980) और 'नवगीत अर्धशती' (सं0 डॉ0 शम्भूनाथ सिंह, 1986) का बहुत बड़ा योगदान है। इसी तरह नवगीत के कुछ ऐसे सशक्त हस्ताक्षर हैं जिनके व्यक्तिगत नवगीत–संग्रहों ने भी नवगीत को प्रतिष्ठित करने का बहुत महत्वपूर्ण काम कियाहै। इस दृष्टि से 'वंशी और मादल' (ठाकुर प्रसाद सिंह), 'सुबह रक्त पलाश की' (उमाकान्त मालवीय), 'गीत विहग उतरा', 'हरापन नहीं टूटेगा', 'इतिहास दुबारा लिखो' (रमेश रंजक), 'कोई तो हरसिंगार हो' (माहेश्वर तिवारी), 'पहनी हैं चूड़ियां नदी ने' (देवेन्द्र शर्मा इन्द्र), 'प्यास के हिरन' (राधेश्याम बन्धु) आदि के साथ शान्ति सुमन के नवगीत संग्रह 'ओ प्रतीक्षित', 'परछाई टूटती', 'मौसम हुआ कबीर', 'भीतर–भीतर आग', 'एक सूर्य रोटी पर', 'धूप रंगे दिन', 'मेघ इन्द्रनील', का भी नवगीत के विकास में एक महत्वपूर्ण योगदान माना जाना चाहिए जिसने छांदस काव्य के वैश्विक नक्शे पर वैचारिकता और लोकचेतना की दृष्टि से अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज कराई है और समकालीन कविता के समीक्षकों का ध्यान भी आकृष्ट किया है। गद्य कविता के तथाकथित आधुनिकतावादी और कुलीनतावादी समीक्षक भले ही हिन्दी कविता के समग्र मूल्यांकन में नवगीत की उपेक्षा करें, लेकिन समय का न्याय उन्हें कभी माफ नहीं करेगा। शान्तिसुमन के गीत अपनी जनसंवादधर्मिता, सार्वजनीनता और सार्वभौमिकता के कारण और खेत–खलिहान, तुलसी चौरा, अम्मा का गांव, बाबू जी के सपने, भैया–भाभी की यादों की आंचलिक संवेदना के कारण लोक के दिलों में वास करते हैं। इसलिए इन जनचरित्री गीतों को कलावादी गद्यकवियों के प्रमाणपत्र की कोई आवश्यकता नहीं है।

डॉ0 शम्भूनाथ सिंह ने एक बार अपने नवगीत दशक में शान्ति सुमन के गीतों को शामिल करने से यह कहकर मना कर दिया था कि 'चूंकि शान्ति सुमन के गीत जनवादी गीत हैं इसलिए इनको मैं अपने नवगीत दशक में प्रकाशित नहीं कर सकता।' डॉ0 शम्भूनाथ सिंह ने नवगीत

दशक 1,2,3 और 'नवगीत अर्धशती' के माध्यम से नवगीत के उन्नयन के लिए जीवन पर्यन्त प्रयास किया, किन्तु अपनी कलावादी बुर्जुआ सोच के कारण नवगीत के यथार्थवादी प्रतिमानों की कसौटी पर कभी खरे नहीं उतर सके और नवगीत का एक भ्रामक तथा अवैज्ञानिक दस्तावेज बनाने में ही अपनी सारी उम्र बिता दी। किन्तु वहीं शान्ति सुमन के जनधर्मी, जुझारू और जनसंघर्षों की आंच में तपे गीतों ने हिन्दी कविता के क्षितिज पर जागरूक छांदस काव्य की नई रोशनी प्रक्षेपित की है। इसलिए डॉ0 शिवकुमार मिश्र ने उनके गीतों की प्रासंगिकता के बारे में ठीक ही कहा है कि 'शान्ति सुमन के गीतों में उद्‌बोधन, आवेग और एक उमंग–तरंगित मन का उत्साह ही नहीं है, बल्कि समय की विद्रूपताओं से उनकी सीधी मुठभेड़ और युगीन यथार्थ का वह खरा बोध भी है, जिसे जन और उसके जीवन–संदर्भों के बीच से उन्होंने पाया है और अर्जित किया है।'

इस विश्लेषण के साक्ष्य यदि हम देखना चाहें तो 'भीतर–भीतर आग' संग्रह के गीतों में हमें सहज ही मिल जायेंगे। आजादी के बाद गांव हो या शहर, निम्न मध्यमवर्ग और मध्यमवर्ग की जनता के सपने चूर–चूर हो गये हैं। महंगाई और अराजकता के कारण लोगों का जीना दूभर हो गया है। गांवों से रोज–रोजगार की खोज में जो लोग शहर आ गये, उनको हर तरफ शोषण, उत्पीड़न और दहशत की त्रासदी झेलनी पड़ी है। एक गीत की कुछ पंक्तियाँ देखें –

'भीतर–भीतर आग बहुत है, बाहर तो सन्नाटा है,
किसने है यह आग लगाई, जंगल किसने काटा है ?
सड़कें सिकुड़ गयी हैं भय से, देख खून की छापें,
दहशत में डूबे हैं पत्ते, अधंकार भी कांपे।'

इससे स्पष्ट है कि नवगीत ने सामाजिक विद्रूपता के चित्रण के माध्यम से लोगों को सदैव जगाने और अपना प्रतिरोध दर्ज कराने के लिए प्रेरित किया। 'एक सूर्य रोटी पर' की कुछ पंक्तियाँ भी देखें – और विचार करें –

'नये सूर्य के स्वागत में, फसलों सा हम झुक लें...,
जोर जुल्म अब बहुत खले, आग हथेली पर रख लें
देखें सब दम–खम, ऐसा संगठन बनायेंगे,
ताकत नई बटोर, क्रान्ति के बीज उगायेंगे।'

कभी–कभी उनके इस प्रकार के विचारोत्तेजक जनवादी गीतों पर सपाटबयानी का आरोप भी लगाया गया है। किन्तु कभी–कभी हारे थके समाज के जनान्दोलनों को ऊर्जा और स्वर प्रदान करने के लिए जुझारू गीत की आवश्यकता भी होती है। इसीलिए एक लेख में डॉ0 अरविन्द कुमार ने लिखा है कि 'क्रान्तिकारी वैचारिक अन्तर्वस्तु को लोकप्रिय और सहज प्रभावी अन्तर्वस्तु से कभी अन्तर्ग्रन्थित भी करना पड़ता है। मगर कभी–कभी इस रचनात्मक द्वन्द्व को रचनाकारों द्वारा बड़े ही सरलीकृत ढंग से ग्रहण कर लिया जाता है। नतीजतन रचनाएं अमूमन सपाटबयानी और वक्तव्यबाजी का शिकार होकर राजनीतिक अवधारणाओं के संवेदनाशून्य दस्तावेज बनकर रह जाती है।'

यह सच है कि कविता कभी हथियार नहीं चला सकती लेकिन बर्बरतापूर्ण क्रूर, अराजक, दमनकारी अन्यायी भ्रष्ट व्यवस्था का विरोध तो कर ही सकती है। शान्ति सुमन के जनचेतना के जुझारू गीतों ने सदैव आम आदमी के मुक्तिकामी जनसंघर्षों और शोषित–पीड़ित मानवता का साथ दिया है। इन गीतों की सबसे बड़ी यह विशेषता है कि इसमें समय और समाज की विडम्बनाओं तथा विद्रूपताओं को कठोर और खुरदुरे यथार्थ की बजाय कोमल शब्दों में व्यक्त करने का प्रयास किया गया है। 'धूप रंगे दिन' की यहां कुछ पंक्तियां दृष्टव्य हैं –

'जबसे देखा है मां को, आंटे सी पिसती हुई,
बहन कभी तितली सी थी, अब चुभती हुई सुई,
गांव–वनों शहरों में फांके, अपना भाई धूल।'

इसी तरह 'हम मुठभेड़ हुए', 'लाल कवच पहने', 'फिर पलाश वन दहके', 'बूंद पसीने की', 'उदास आंखे' आदि गीतों में अपनी मिट्‌टी की पहचान, आंचलिक जीवन की पीड़ा और जटिलताओं को बहुत मार्मिक ढंग से व्यक्त किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शान्ति सुमन के गीतों की लोकधर्मी भाषा, शब्द योजना, भावान्विति और यथार्थवादी अन्तर्वस्तु जहां हमारा ध्यान आकृष्ट करती है वहीं उनमें आगामी संघर्ष और बदलाव के संकेत भी मिलते हैं। इसलिए भविष्य में हमें शान्ति सुमन से और भी सार्थक–सशक्त रचनाशिल्प वाले नवगीतों की कामना करनी चाहिए।

■

बहुआयामी सृजन की प्रतिमान : डॉ० शान्ति सुमन

❑ मधुकर अष्ठाना

युगीन जटिलताओं, विसंगतियों, विषमताओं, कुण्ठाओं एवं त्रासदियों के परिवेश में रागात्मक गेयता के साथ विरूपता एवं विद्रूप को व्यक्त करने में सक्षम नवगीत के अनेक रूप दिखाई पड़ते हैं जो वस्तुतः दृष्टि–दर्पण में एकरूपता न होने के परिणाम स्वरूप परस्पर पृथक प्रतीत होते हैं। नवगीत मूल रूप से संवेदना का गेय स्वरूप है जिसे रचनाकार अपनी प्रकृति एवं प्रवृत्ति के अनुसार शब्दों का परिधान देकर, वस्तुगत एवं शिल्पगत दोनों तरह से अपने विवेक एवं ज्ञान का परिचय देता है। रचनाकार लोक से संवेदना ग्रहण कर उसे नूतन कथन के साथ विस्तार करता हुआ पुनः लोक को ही अर्पित कर देता है। यह समर्पण का भाव ही काव्य की सिद्धि है। नचिकेता जी के शब्दों में – 'कविता अगर मनुष्यता की मातृभाषा है तो नवगीत मानवीय संवेदना का अर्थ सम्पृक्त शब्द–संगीत है, सीधी–सच्ची आत्माभिव्यक्ति है।' कुमार रवीन्द्र नवगीत को अन्तरात्मा की साधना मानते हैं, जिसमें लोक में प्रयुक्त मुहावरों, आंचलिक बोली, आम आदमी से जुड़ी नाटकीय मुद्रा, विशिष्ट कथन, मिथक आदि का प्रयोग भाषा को नूतनता से जोड़ते हैं। प्रतीक एवं बिम्ब योजना के पूर्वाग्रह विलीन होकर सहज रूप धारण कर चुके हैं। भाषा, शिल्प एवं संरचना की सहजता ने उसको जन–जन तक पहुंचाया है। वर्तमान में समकालीन यथार्थ संवेदनापूर्ण कहन में प्रयुक्त करना ही नवगीत की पहचान बन गया है। इसकी प्रतिरोधात्मकता और संवेदना ही मापदण्ड बन गये हैं। समकालीन गीत, सहज गीत, गीत नवान्तर, ताजा गीत आदि अनेक नाम हैं जो समय–समय पर अपनी उपयोगिता सिद्ध करते रहे किन्तु वास्तव में ये सभी नामकरण बहुआयामी नवगीत की किसी एक विशेषता को ध्यान में रखकर गढ़े गये जो पर्यायवाची बनकर रह गये। आज जीवन का कोई ऐसा पक्ष शेष नहीं है जिसे नवगीत में न व्यक्त किया गया हो जो इसकी व्यापकता, विस्तार एवं विविधता का परिचायक है। यों तो प्रारंभिक काल से ही नवगीत अपनी प्रयोगधर्मिता के लिए प्रसिद्ध रहा है परंतु वर्तमान में इसके अंतर्गत विभिन्न आंचलिक आलोकों के विस्तार में संपूर्ण हिन्दी प्रदेशों की भाषा

एवं शिल्पगत विशिष्टताओं का समाहार हुआ है जिससे यह अपने युग का प्रतिनिधि काव्य कहा जा सकता है। समय सापेक्ष अनुभूतियों की संवेदना को पूर्णरूपेण व्यक्त करने में समर्थ भाषा की खोज सहज नहीं है और इसे साकार करने में प्रायः उम्र बीत जाती है। नवगीत में आम आदमी की जीवनशैली, सांस्कृतिक विरासत एवं रागात्मक गेयता को सुरक्षित रखने की सक्षमता के परिणाम स्वरूप प्रो० देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' इसे 'मानवीय अस्मिता की प्रथम प्रतिश्रुति' मानते हैं।

भाषा, कथ्य एवं कहन की दृष्टि से डॉ० शान्ति सुमन उन भाग्यशाली रचनाकारों में हैं जिन्होंने अपनी भावना के अनुकूल भाषा की खोज करने में प्रसिद्धि प्राप्त की है। उनकी प्रतिभाजन्य रागात्मक चेतना की उर्वर लेखनी से अनेक प्रतिमान ध्वस्त हुए हैं और अनेक प्रतिमान निर्मित हुए हैं। वर्तमान समय में वे हिन्दी क्षेत्र की प्रतिनिधि महिला रचनाओं में अपना महत्व प्रतिपादित कर चुकी हैं और उन्हें नवगीत की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री कहने में आलोचकों को भी संकोच नहीं रह गया है। नवगीत के अनेक पक्षों में विपुल सृजन उनके विविधतापूर्ण रचना–संसार का द्योतक है। जहाँ वे नवगीत की जनोन्मुखी शाखा जनवादी गीतों की प्रमुख हस्ताक्षर हैं वहीं मानव जीवन से जुड़े अन्य पक्षों में भी संवेदना की गहराई का अवगाहन किया है। उनके सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि नवगीत में उन्होंने इतिहास रचा है और दूर–दूर तक, विशेष रूप से महिला रचनाकारों में, उनके शिखरीय व्यक्तित्व एवं कृतित्व का कोई स्पर्श भी नहीं कर सकता। राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने उनके कृतित्व का मूल्यांकन करते हुए लिखा है – "डॉ० शान्ति सुमन नवगीत की अनन्या कवयित्री एवं समकालीन लेखन की प्रणेत्री हैं। वे नवगीत और जनवादी गीत की मुख्य धारा में दूर तक स्वीकृत, समादृत उच्च स्तरीय रचनाकार हैं। प्रायः चार दशक के लम्बे दौर में गीत विधा की नयी रचनाशीलता का मार्का बनाती दृष्टि एवं दिशा का निरूपण करतीं शान्ति सुमन ने निजी पहचान को सशक्त किया है। डॉ० शान्ति सुमन की गीत संरचना स्पष्ट ही उन्मुक्त रचना प्रक्रिया से फलीभूत है जिसमें पूर्वागत और प्रथित रचना की रूढ़ नियमावली से निरपेक्ष निर्मिति प्रशस्त हुई है। जाहिर है कि लय–सन्धि, तालाश्रय, स्वर के विवर्त से अनेक छन्दों का मिश्रण गठित है। नयी गेयता डॉ० शान्ति सुमन के गीतों के रचाव में सन्निहित है।" इसी क्रम में मदन कश्यप के कथन का उद्धरण देना भी

उपयुक्त होगा। वे लिखते हैं – "शान्ति सुमन हमारे समय के उन कुछ दुर्लभ गीताकारों में हैं जो शिल्पगत अथवा शैलीगत अलगाव के बावजूद सोच एवं संवेदना के स्तर पर समकालीन कविता से गहरे जुड़े हुए हैं। उनके पास आज के यथार्थ की आंतरिक गतिशीलता को परखने की दृष्टि भी है और उसे उद्‌घाटित करने की कला भी। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे समय और समाज की विडम्बनाओं तथा विरूपताओं को बौद्धिक स्तर पर पहचानने की बजाय संवेदना के स्तर पर ग्रहण करने का प्रयत्न करती हैं। गीतों के बारे में प्रायः यह कहा जाता है कि उसके शिल्प और छन्द संवेदना के ऑर्गन को नष्ट कर डालते हैं किन्तु शान्ति सुमन के गीत इस मान्यता का सृजनात्मक प्रतिकार करते हैं।" डॉ0 शान्ति सुमन के सृजन–संसार की प्रशंसा प्रत्येक काव्य विधा के समीक्षकों ने मुक्त कण्ठ से की है। निश्चित रूप से वे अपने समय की महादेवी हैं।

अंतश्चेतना के अनुभूतिपरक संदर्भों को उसकी समग्र कड़वी सच्चाई के साथ प्रतिबिम्बत करती, सहज भाषा एवं शिल्प में सम्प्रेष्य बनाती, तीखी और प्रहारक कहन के साथ युगबोधीय कथ्य को व्यंजित करती डॉ0 शान्ति सुमन ऐसी रचनाकार हैं जिनमें शैली की विविधता के बावजूद विचारों की एकात्मकता दिखाई पड़ती है। उनके नवगीतों में गाँव एवं नगर दोनों के मध्यमवर्गीय तनावों, अकेलेपन का एहसास, पराजयबोध, उदासी, अर्न्तमुखी आक्रोश, पारिवारिक विघटन आदि के साथ ही रोमानियत, उल्लास–उत्साह और उन्मुक्त पलों को भी बाँधने का प्रयास किया गया है। उन्होंने अपने सृजन में शाश्वत संवेदना को निरन्तर जीवन्त रखा है जिसमें सुख–दुख, हर्ष–विषाद, जीवन–संघर्ष के दोनों पहलू वर्तमान हैं जिससे वे समकालीन परिवेश के दस्तावेज कहे जा सकते हैं और इन दस्तावेजों की गीत विरोधी खेमे ने भी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। यह बहुत बड़ी उपलब्धि है कि साहित्य जगत में डॉ0 शान्ति सुमन अजातशत्रु हैं जिनके निन्दक नहीं हैं। उन्होंने आम आदमी के कठोर एवं मार्मिक जीवन–संघर्ष तथा उसकी अप्रतिहत जिजीविषा को पहचाना ही नहीं भोगा भी है एवं अपने स्वयं के जीवन में भी पीड़ा के महासमुद्र का अवगाहन किया है जिससे उनकी रचनाओं में ऐसी सच्चाई और ईमानदारी महसूस होती है जो सायास नहीं होती तथा अन्तर से स्वतः प्रस्फुटित होती है जो अधिकांश कवियों के लिए आकाश

कुसुम है। अपनी भावात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने विशिष्ट एवं मौलिक शब्दावली की खोज में सफलता प्राप्त कर ली है और उनकी भाषा कहन के प्रभाव में अभिवृद्धि करती है। दुरूह प्रतीक एवं बिम्बात्मक दुराग्रहों से उन्होंने एक लक्ष्मण रेखा खींच दी है जिससे सहजता, सरलता और प्रवाह के साथ सम्प्रेषित कथ्य में प्रसाद गुण विद्यमान है। एक प्रसिद्ध कहावत है कि 'नदी में रहकर मगर से बैर'। नदी में वह जरूर हैं किन्तु मगर उनसे बैर नहीं करते और उन्होंने भी ऐसा भाईचारा स्थापित किया है कि नये से लेकर पुराने तक, गीत से लेकर नवगीत तक, नवगीत से लेकर जनवादी गीत तक तथा उससे भी आगे नयी कविता तक विचारों का एक सेतु निर्मित किया है जिससे गोष्ठी से लेकर मंच तक सभी उनकी समकालीन जनोन्मुख–सहज नवगीतों के प्रशंसक हैं।

डॉ0 शान्ति सुमन की सृजनशीलता समस्त विसंगतियों, विषमताओं एवं विद्रूपताओं के बावजूद कहीं से भी निराशावादी नहीं है और उनके नवगीत, जनवादी गीत एवं गीत सभी एक–दूसरे में घुले–मिले हैं जिससे इनके मध्य विभाजन की कोई रेखा खींच पाना असंभव लगता है। समीक्षक चाहे जितना उन्हें किसी विशेषवाद में समेटना चाहें किन्तु वास्तविकता यह है कि वे किसी वाद में नहीं पड़ीं। उन्होंने अपनी इच्छा एवं विवेक के अनुसार अपनी अन्तश्चेतना की माँग के अनुरूप गीत–सृजन का संकल्प किया और सूक्ष्म अनुभूतियों को साकार किया है। प्रायः यह देखा गया है कि जब कोई रचनाकार अपनी लगन, प्रतिभा और ज्ञान के आधार पर विशेष यश प्राप्त कर महत्वपूर्ण हो जाता है तो अन्य लोग अपने–अपने खेमे में खींचने का प्रयास करते हैं किन्तु डॉ0 शान्ति सुमन का विराट व्यक्तित्व एवं बहुआयामी सृजन वर्तमान की छोटी–छोटी परिधियों में बँधने वाला नहीं है इसीलिए 'मदन कश्यप' उन्हें 'अपने समय के दुर्लभ गीतकार' की संज्ञा से अभिहित करते हैं। यद्यपि उनके सृजन में आंचलिक बिम्बों एवं कहीं–कहीं लोकभाषा के शब्दों का प्रयोग हुआ है किन्तु वे ऐसे दुरूह नहीं कि हिन्दी जगत में कहीं भी सम्प्रेषण की समस्या आ सके। प्रकृति को उन्होंने अपनी रचनाओं में जीवन्त रखा है जो सृजन के सौन्दर्य को और भी प्रभावोत्पदक बनाती है। उन्होंने प्रायः कथ्य को प्रकृति के माध्यम से ही कहन की ताजगी के साथ प्रस्तुत किया है जिसमें रचनायें कालजयी बन सकी हैं। उनके गीतों के

संबंध में डॉ0 मैनेजर पाण्डेय का कथन है – 'उनके गीतों को पढ़कर लगता है कि शान्ति सुमन गीत की सीमा और शक्ति जानती हैं। जो रचनाकार अपने विधा की सीमा नहीं जानता, वह उसकी शक्ति को भी नहीं पहचान पाता। शान्ति सुमन हर विषय का चुनाव करती है। उनके अधिकांश गीत इस बात के प्रमाण हैं कि शान्ति सुमन को काव्यात्मक भावना की पहचान है।' यद्यपि इस टिप्पणी से कोई विशेष बात सामने नहीं आती किन्तु लफ्फाजी ही सही, वे डॉ0 शान्ति सुमन को एक कवि के रूप में रिकगनाइज तो करते हैं। डॉ0 शान्ति सुमन साहित्यिक गरिमा के अनुकूल पारिवारिक एवं सामाजिक सम्बन्धों के अनेक भावमय चित्र प्रस्तुत कर संकेतों से कथ्य का बोध कराती हैं जो वास्तविक जीवन के विभिन्न पक्षों के दर्पण प्रतीत होते हैं। लोकभाषा के संवेदनशील गीत उन्हें विचलित कर, प्रेरक का कार्य करते हैं जिससे उनके गीत खड़ी बोली में लोकगीत लगते हैं जो अन्तर्मन में प्रवेश कर जाते हैं। उनके गीतों को केवल शब्दार्थ से नहीं समझा जा सकता। उन्हें समझने के लिए उनकी व्यंजना एवं ध्वनि की गहराई में डूबना पड़ता है। काव्यशास्त्र के आचार्यों के अनुसार भाषा की तीनों शक्तियों अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना में व्यंजना ही श्रेष्ठ है जिसे ध्वनि एवं वक्रोक्ति भी कहते हैं। प्रायः जनवादी गीतों में व्यंजना का अभाव है किन्तु डॉ0 शान्ति सुमन का सम्पूर्ण सृजन व्यंजनात्मक है जो बाहर से जितना साधारण लगता है, भीतर से उतना ही अर्थवान है।

डॉ0 शिवकुमार मिश्र उनके गीतों को 'मानवीय चिन्ता के एकात्म से उपजे गीत' की संज्ञा देते हुए कहते हैं – 'उनके गीतों से गुजरना जनधर्मी अनुभव–संवेदनों की एक बहुरंगी, बहुआयामी, बेहद समृद्ध दुनिया से होकर गुजरना है, साधारण में असाधारणता के, हाशिये की जिन्दगी जीते हुए छोटे लोगों के जीवन–संदर्भों में महाकाव्यों के वृत्तान्त पढ़ना है। स्वानुभूति, सर्जनात्मक कल्पना तथा गहरी मानवीय चिन्ता के एकात्म से उपजे ये गीत अपने कथ्य में जितने पारदर्शी हैं, उसके निहितार्थों में उतने सारगर्भित भी।' इन उद्धरणों को अपने कथन की मजबूती के लिए मैंने आवश्यक समझा क्योंकि इनसे मेरे विचारों की पुष्टि होती है।

दस गीत–संग्रह, एक कविता–संग्रह, एक उपन्यास, एक आलोचना ग्रन्थ और चार संपादित संकलन की वर्तमान पूँजी डॉ0 शान्ति सुमन के

वैविध्यपूर्ण सृजन संसार की बानगी देने के लिए पर्याप्त है जिससे उनकी अपूर्व मेधाशक्ति का परिचय मिलता है और हिन्दी जगत ने तदनुरूप उन्हें यथेष्ट सम्मान भी दिया है जिसकी वे हकदार हैं। अनुवाद के क्षेत्र में भी उन्होंने तमिल कविता का हिन्दी अनुवाद किया है। उन्होंने अंग्रेजी भाष में भी कान्टेपोरेरी इण्डियन लिटरेचर तथा बीज का सम्पादन भी किया है। मैथिली, हिन्दी तथा अंग्रेजी की विद्वान होने के साथ ही तमिल भाषा का भी यथेष्ट ज्ञान है। इतनी उपलब्धियों के आधार पर निश्चित रूप से वे महिला रचनाकारों में अग्रणी ही नहीं, शिखर पर हैं। उनके साहित्य सृजन पर अनेक शोध भी हो चुके और वर्तमान में देश के प्रसिद्ध विद्वानों के विचार जो उनकी कृतियों के संबंध में, उनके संपूर्ण सृजन के संबंध में 'शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि' आलोचनात्मक ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ है। उनकी साहित्यिक यात्रा को अभी विराम नहीं मिलने वाला है और यह क्रम न जाने कितने मील के पत्थर निर्मित करेगा, इसका आकलन भला कौन कर सकता है। मेरा कथन वास्तविकता एवं यथार्थ के आधार पर है, जिसमें पक्षपात का कोई स्थान नहीं है।

डॉ0 शान्ति सुमन विशिष्ट कहन की संवेदना अपनी लेखनी की नोक पर रखती हैं जो उनके प्रत्येक गीत को हृदयस्पर्शी बनाने में कोर–कसर नहीं रखती। तालमखाना चुनती एक श्रमिक महिला का चित्रांकन इसका द्योतक है। उक्त रचना को पढ़कर जहाँ पाठक मर्माहत होता है वहीं ऐसा प्रतीत होता है कि यह गीत नहीं तूलिका से निर्मित एक चित्र है जो साकार होने को व्याकुल है। उस श्रमिक महिला का तन ही नहीं मन भी उस चित्र से झाँकता है। उसकी मुद्राओं की एक–एक महीन रेखा जिसमें वेदना का अथाह सागर छिपा है, संवेदित कर जाते हैं –

"यह भी हुआ भला/कथरी ओढ़े तालमखाने/चुनती शकुन्तला/कन्धे तक डूबी/सुजनी की देह गड़े काँटे/कोड़े से बरसे दिन/जमा करे किस–किस खाते/अँधियारी रतनार प्रतीक्षा/बुनती चन्द्रकला/मुड़े हुए नाखून/ईख सी गाँठदार उँगली/टूटी बेंट जंग से लथपथ/खुरपी सी पसली/बलुआही मिट्टी पहने/केसर का बाग जला/बीड़ी धुकती ऊँघ रही/पथराई शीशम आँखें/लहठी सना पसीना/मन में चुभतीं गर्म सलाखें/एक सूर्य रोटी पर औंधा/चाँद नून सा गला।"

गीत पढ़कर ऐसा महसूस होता है कि यह गीत नहीं, खून के आँसू हैं जिसे पढ़कर पत्थर भी संवेदित होकर पिघल जाये। सुबह से शाम तक और कभी–कभी पूरी रात काम ही काम, फिर भी मुट्ठी भर अन्न को तरसते लोग। कवयित्री ने गीत के माध्यम से अनेक अनकही बातें भी कह दी हैं जो प्रबुद्ध पाठक को चिंतित करती हैं और चिंतन की प्रेरणा भी देती है। एक से एक नूतन बिम्ब और प्रतीक उनकी रचनाओं को ताजगी प्रदान करते हैं और साधारण चीजें भी उनके शब्दों का सहारा पाकर असाधारण लगने लगती हैं। जड़ में भी चेतना का आभास करा देना डॉ0 शान्ति सुमन की विशेषता है। प्रायः कथ्य और कथन की परिपूर्णता के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने छन्दों से अधिक लय पर ध्यान दिया है और गीतों की लय लोकधुनों का स्मरण कराती हैं। गीतों की लयकारी प्रभावित करती है जिससे उनके गीत श्रोता वर्ग एवं पाठक वर्ग दोनों को समान रूप से संवेदित करते हैं। संभवतः लोक से संबंधित कोई ऐसा विषय शेष नहीं है जिस पर उनकी लेखनी न चली हो। इसी क्रम में शिशिर में जब शीत लहर में हर व्यक्ति ठंड से काँपता दिखता है और पवन एवं पानी की मनमानी पर किसी का वश नहीं चलता तो क्या दशा होती है, निम्नांकित गीत में द्रष्टव्य है –

''मौसम की मनमानी/वह तो हद से पार गया/सारे
अँखुओं को खेतों में/पाला मार गया/दुबक गयी चिड़िया/
पत्तों की फटी रजाई में/कुहरे की सौगात मिली/इस बार
कमाई में/जैसे वर्षा आई/सूरज पल्ला झाड़ गया/
चित्र लिखे से/गाछ और घर/साँसें भाप बनीं/
इतनी सर्द कि आँखों से ही/सबने बात सुनी/
रात–रात भर का सोचा/फिर से बेकार गया।'

अँखुवों को पाला मारना, पत्तों की फटी रजाई में चिड़ियों का दुबकना, सूरज का पल्ला झाड़ना, साँसों का भाप बनना आदि बिम्ब जहाँ नूतन कहन का एहसास कराते हैं, वहीं शिशिर से उत्पन्न पीड़ाओं को भी स्पष्ट कर देते हैं। इसके साथ ही घोर निर्धनता के होते हुए विपरीत परिस्थितियों में भी निर्धन की जिजीविषा और उसके जीवन–संघर्ष को भी व्यक्त करते हैं। डॉ0 शान्ति सुमन का संपूर्ण रचना संसार इसी दरिद्र नारायण को समर्पित है और इनके दुख–सुख की वे प्रतिनिधि कवयित्री हैं।

बिहार तथा पश्चिम बंगाल में गरीबी का मुख्य कारण साठ प्रतिशत आबादी के पास खेत न होना है। निर्धन वर्ग में शायद ही किसी के पास एक बीघा खेत हो। इसका लाभ उठाकर कहीं नक्सली आंदोलन हैं तो कहीं माओवादी संगठन खड़े हो गये हैं जो इस स्थिति का विरोध करते हैं। साथ ही जंगलवासियों से वनस्पति लेने का अधिकार भी छीन लिया गया। गाँवों में अब आम जनता का राजनीतिकरण हो गया है। जनसंख्या वृद्धि की समस्या का भी समाधान होना कठिन है। आम आदमी वास्तव में इन मुसीबतों से घिरा है और मुक्ति के लिए छटपटा रहा है किन्तु कोई विकल्प नहीं है। यह सारी परिस्थिति डॉ0 शान्ति सुमन की दृष्टि में है और वे अपना लोकधर्म निभाते हुए निरन्तर सृजनशील हैं। राजनीति के सलीब पर क्रूसित आम आदमी की पीड़ा निम्नांकित पंक्तियों में दर्शनीय है –

''काटेंगे खेत गई फरवरी/बीतेगी कैसे अब यह घड़ी/
चलो कहीं जा कीमत बूझें/हँसी और नींद हम खरीदें/
चीजों के दाम जंगली/नदियों के शोर हो गये/
रोशनियाँ बर्फ हो गयीं/बादल कागज कोर हो गये
सूखे और बाढ़ में गईं/नदियों की मछलियाँ खोजें/
हँसी और नींद हम खरीदें/कच्चे ताँबे की ताबीज/
टूटे तो भरम खुल गये/पहली ओसौनी के बाद ही/
हाथों के रंग धुल गये/पोस्टर पर स्याहियाँ फिरीं/
कागजी फसल तमाम सूझें/हँसी और नींद हम खरीदें/
बचपन होता नहीं इस देश में/होश नहीं औ' कंधे झुक गये/
थकी–थकी आँखों में टूटते/हौसले अजाने ही दुख गये/
राजनीति ने गढ़ी सलीब/टँगी हुई बहस महज खीझें/
हँसी और नींद हम खरीदें।''

कैसी विडम्बना है कि इस देश में बचपन नहीं आता और होश आते ही कंधे जिम्मेदारियों के बोझ से झुक जाते हैं। दुनिया के अन्य देशों में बाल श्रमिकों पर प्रतिबन्ध है और ऐसे गरीब बच्चों का वहाँ भी सरकार भरण–पोषण करती है किन्तु भारत में शासन इतना असंवेदनशील है कि आम आदमी को केवल वोट मशीन समझता है। फिर भी गरीबों के जीवन में भी उल्लास, उत्साह एवं सुख के क्षण कभी–कभार आ ही जाते हैं और ऐसे ही एक दुर्लभ क्षण को डॉ0 शान्ति सुमन ने निम्न गीत में

बाँधा है –

"घर से बाहर/बाहर से घर/करती है मुनिया/
अभी हाट से लौटा/लकदक होकर सोने लाल/
गैंची–कतला के संग लाया/साड़ी टह–टह लाल/
सेंनुर में ही बँधी हुई/लगती पूरी दुनिया/पाँखी
जैसे पले नीड़ में/वैसी पली हुई/आँखों की पुतरी
जैसे/मिसरी की डली हुई/घुँघरू जैसी
देहरी पर/बजती रहती बिनिया/सात किलो राई–सरसों/
और आठ किलो सुतली/चमकी कच्ची चाँदी की/
बिछिया–टीका–हँसुली/ऊपर हँसे चन्द्रमा नीचे/
लहरी है नदिया।"

और ऐसे क्षणों में सारा दुख कर्पूर की भाँति स्वतः उड़ जाता है। वैसे भी इन्हीं छोटी–छोटी खुशियों का स्मरण करते और दुःखों को लोकगीतों में व्यक्त करते आम आदमी को कुछ पल राहत मिल जाती है। ऋतु–पर्व, विवाह आदि के अवसर, संतान का जन्म, खलिहानों से घर में अनाज आने पर अथवा परदेश से कमा कर घर वापस लौटे प्रियतम के मिलन आदि ऐसे ही सुख के अवसर हैं जब गरीब भी सुख का आभास पा जाता है।

गाँवों में निर्धन परिवारों में अब भी अनाज जाँतों पर महिलायें पीसती हैं और श्रम को भुलाने के लिये कुछ न कुछ गाती भी रहती हैं जिनमें कभी भजन तो कभी अपने दुख–दर्द के गीत गाती हैं। प्रायः अनेक महिलायें अपनी पीड़ाओं के अनुकूल गीत बनाती भी जाती हैं जिनका विषय उनकी भावनाओं के अनुकूल होता है। डॉ0 शान्ति सुमन को गाँवों के रहन–सहन, जीवनयापन और उनकी पीड़ाओं का समुचित ज्ञान है तथा महिला होने के नाते महिलाओं के अर्न्तमन की सोच से उनकी भावनाओं का तादात्म्य स्थापित होना स्वाभाविक है। उन्होंने उन अनुभूतियों को अपने शब्दों में निम्नवत साकार किया है –

"जाँतों पर अनाज पीसती/कंठों के सुर से/
लगता जैसे कितने सावन/अनबरसे बरसे/
मिट्टी का कोई गोला/पानी के डबरे में/
जैसे धीरे गले/डूबता जाये लहरें ले/

चिड़ियों को हौले पुकारती/उड़ने के डर से/
कुछ टुकड़े चौकोर धूप के/घर में पड़ते ही/
चाँदी की बिछिया/बजने लगती है पहले ही/
वैसे कितना पानी चढ़कर/उतरा है सिर से/
चारों ओर अँधेरा/बूढ़ी लालटेन जलती/
पुलिस न जाने क्यों आई/मन में पीड़ा पलती/
गीतों ने कह दिया/हवा यह बदलेगी फिर से।"

शोषित–दलित–उत्पीड़ित–उपेक्षित मजदूर–किसान और गाँव की अनपढ़ गँवार कही जाने वाली महिलाओं की स्थिति एवं दयनीय दशा का ज्ञान डॉ0 शान्ति सुमन को है तथा उसे जिस रूप से उन्होंने व्यक्त किया है उसमें नग्न यथार्थ की मर्मभेदी चीत्कार है, आँसुओं का सैलाब है और अन्तर्मन में दहकती अग्नि की झुलसाती लपटें हैं। छोटे–छोटे सुख और बड़े–बड़े दुख का सूक्ष्म निरीक्षण करने में समर्थ उनको मानव–मन एवं मानव–मूल्य की गहरी पहचान है। डॉ0 शान्ति सुमन का प्रत्येक गीत जनमानस की अव्यक्त वेदना को मुखरित करता है जिसकी परिधि में गाँव से लेकर नगर तक और शैशव से लेकर वृद्धावस्था तक की मीठी–कड़वी अनुभूतियों को आत्मसात कर, नये संदर्भ में उन्हें मुखरित किया है इसीलिये उनके अधिकांश गीत लोकगीतों से अनुप्राणित होते हैं और आंचलिक विशिष्टतायें भी सम्प्रेषण को नयी दिशा देती है। वे समग्र रूप से लोक संवेदना की प्रतिनिधि कवयित्री हैं। इस संदर्भ में निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

"चम्पा के पेड़ नहीं बाबा/महुवा के पेड़ उगाना/
खाली हथेली औ' खाली चँगेरियाँ/चुभती हैं
बहुत इन दिनों/माँ का सूना ललाट कहता है
बार–बार/पसीने की बूँद मत गिनो/जंगली
सुअर ना आये/ऊँचा मचान एक बनाना/हाथों
से होते हुए पेट तक/बुना हुआ एक मकड़जाला/
तोड़ेंगे, क्या छोड़ेंगे ऐसे ही/बन्द पड़ा कबका
यह ताला/कामगार बस्ती में खलता है/चौबारा
खड़ा पुराना/टहनियों भर पेड़ तले/झंडा एक
गाड़ेंगे/तोड़ेंगे अड़हुल के फूल/महुवा की

छाँहों में कीर्तन की धुन पर/मिहनत को करेंगे कबूल/
कहती है भूख–प्यास अपनी/मौसम के जंग छुड़ाना।'

इस प्रकार के गीत जहाँ लोकधुनों की बानगी देते हैं वहीं ताल–वृत्त एवं विशिष्ट लय से बँधे हुए हैं जिनमें ग्रामीण जीवन की समस्त विरूपतायें और गरीबों की पीड़ायें सन्यस्त हैं। परम्परा से जुड़ाव एवं नूतनता का स्वभाव करते ऐसे गीत जन जीवन के अधिक निकट हैं जिनमें आंचलिकता की महक अनुभव की जा सकती है।

प्रारम्भ से लेकर वर्तमान तक डॉ0 शान्ति सुमन के सृजन–संसार की यात्रा के उपरान्त मेरा निश्चित मत है कि उनकी तुलना किसी अन्य से नहीं की जा सकती है क्योंकि वे अपने ढंग की अकेली हैं। ग्रामीण एवं नगरीय जीवन–संघर्ष के प्रत्येक पक्ष की आनुभूतिक संवेदना को उन्होंने मौलिक स्वर दिया है और प्रबल जिजीविषा का परिचय देते हुए अपनी अलग पहचान बनायी है जिसका हिन्दी काव्य–जगत में अपूर्व स्वागत भी हुआ है। मेरी कामना है कि उनकी लेखनी अनवरत चलती रहे तथा सृजन के प्रत्येक क्षेत्र में नये प्रतिमान गढ़ती रहे।

■

डॉ० शान्ति सुमन : एक गीत वसुन्धरा

❑ डॉ० राधेश्याम शुक्ल

गीत तथा नवगीत के 'संज्ञात्मक विग्रह' और तमाम परानुभूति के अप्रमाणिक वक्तव्यों से परे हटकर, यदि गीत की बात करें, तो स्वाभाविक रूप से यह सिद्ध हो जायेगा कि गीत तो गीत है। हर युग में सामयिक परिवेश में संवाद और प्रतिवाद करता हुआ निरंतर विकास की गति से परिवर्तनशील और भारतीय लोकमानस का सहज प्रवाह है, जिसमें शालीनता और संयम की लहरें धरती–आकाश को अपने में समोये हुए हैं। जिस तरह इन्सानियत न कभी पुरानी होती है न नई, वह तो एक अनवरत प्रवहमान नदी की धारा है। ठीक इसी प्रकार गीत नए–पुराने कवचों को धारता–त्यागता हुआ अपनी निरंतरता और समाज सापेक्षता से जुड़कर सदानीरा धारा की तरह चलता रहा है। गीतकार शांति सुमन का समस्त रचनाकर्म, इस बात को प्रभाणित करता है। उनके अब तक प्रकाशित गीत संग्रहों में हम अपने अतीत और वर्तमान को देखते हैं तथा भविष्य के मांगलिक आश्वस्ति के एहसास पाते हैं।

इस सृष्टि का श्रेष्ठ प्राणी मनुष्य स्वाभाविक रूप से सर्वाधिक ममतालु है। यह ममता ही है जो थोड़े से सुख और घने दुखों वाले संसार से मनुष्य को जोड़े रहती है। मानवीय मन की भोर रिश्तों की ललछौंहीं नरम धूप से शुरु होती है। यहीं से उपजा हुआ 'राग' हमें अपने आज से जोड़ता है, हमें विस्तार देता है। यह विस्तार ज्यों–ज्यों व्यापक होता जाता है त्यों–त्यों हमारी संवेदनशीलता घर–आंगन से फैलती हुई गांव–गली, शहर–समाज, जिला–जवार, प्रदेश एवं राष्ट्र के क्षितिजों को पार करती हुई वैश्विक बन जाती है। शांति सुमन इसी रागवत्ता एवं संवेदनशीलता से सर्वथा सम्पृक्त गीत कवयित्री हैं। 'नारी' होने के कारण उनके करुण मन में मानवीय भाव जगत के वे सभी उत्स फूटते हैं, जिनसे यह संसार 'शिव' और 'सुंदर' बनता है। उनकी संवेदना, 'दुःखतप्तानां प्राणिनां आर्तिनाशनं' की हामी है। उनकी यह संवेदना भवभूति के उस करुण रस की तरह है, जो निमित्त भेद से समस्त मानवीय भावनाओं का रूप धारण कर लेती है।

आज शांति सुमन एक प्रौढ़ गीत कवयित्री के रूप में सारे देश में चर्चित हैं। अब तक उनके नौ गीत–संग्रह प्रकाशित हो चके हैं। 1970

में प्रकाशित 'ओ प्रतीक्षित' गीत–संग्रह के बाद 'परछाईं टूटती', 'सुलगते पसीने', 'पसीने के रिश्ते', 'मौसम हुआ कबीर', 'तप रहे कचनार', 'भीतर–भीतर आग', 'पंख–पंख आसमान' तथा 'एक सूर्य रोटी पर' नामक गीत–संग्रहों की कड़ी में उनका नया गीत–संग्रह 'धूप रंगे दिन' 2007 में प्रकाशित हुआ है। ये सभी रचनाएँ उनके युगीन अनुभवों के प्रामाणिक निदर्शन हैं। मनुष्य का पहला अनुभव ममता और वात्सल्य है, जो उसे माँ से मिला है। मैं अपनी बात यहीं से शुरु करता हूँ जहाँ वे माँ को याद करती हुई उन्हें पूरी पृथ्वी बना देती हैं, जो कितने ही ताप सहकर अपनी संतानों को सावनी हरियाली देती है तथा घर के पौधों की खातिर स्वयं को 'खाद' बनाकर चुक जाती है –

तू पूरी पृथ्वी हो माँ
सपनों में रोज सुलगती
ऊपर–ऊपर ठोस मगर
भीतर से बहुत धधकती।
तेरे शब्द बिना माने भी
कितनी दूर तलक जाते थे
अपनों से मिलने की खातिर
अपने से ही हट जाते थे
घर के पौधे की खातिर तू बनी स्वयं ही खाद।

अम्मा को याद करते–करते अपने गँवई गाँव के प्रति सुमन जी की मोह–माया और ममता उजागर हो जाती है। मन में पैदा हुआ ग्राम्य परिवेश तमाम भौतिक परिवर्तनों के बाद भी धुँधलाता नहीं, खासकर पुरानी पीढ़ी की आँखों में। 'गाँव नहीं छोड़ा' गीत में वे कहती हैं –

दरवाजे का आम–आँवला
घर का तुलसी–चौरा,
इसीलिये अम्मा ने अपना
गाँव नहीं छोड़ा।

क्योंकि उस गाँव के घर में पायल की घुँघरू की तरह रुनझुन करते और छोटे–छोटे, नरम–नरम, उजले–उजले बताशे की तरह पोती–पोते हैं। इससे भी आगे बढ़कर अपने गहनों को बेचकर खरीदे हुए खेत और बाबूजी के कहे हुए सारे सपने उस गाँव–घर में हैं। इसीलिए अम्मा ने

गाँव नहीं छोड़ा। इस गीत को पढ़ते हुए मुझे लगा कि यह गीत आज की उस नई पीढ़ी को आगाह करता है जो अमरीका के पूँजीवादी बाजार में आकंठ डूबे हुए, 'पैकेज' की लालच में अपनी माटी की तनिक भी परवाह नहीं कर रहे हैं।

माता–पिता के लिए बेटी–बेटे ही घर को पारिभाषित करते हैं। एक गीत में ससुरैतिन बिटिया गौने से लौटकर पहली बार मायके आई है। उसकी माँग में दिपदिपाता सुहाग सिंदूर, उमाकांत मालवीय के शब्दों में, 'बादलों के गाँव में गुलाब की गली' और माथे की बिंदी 'सोने की थाल में आरती की लौ' सी लगती है, उसकी लाल चूड़ियों, उसके पाँव के महावर आदि की आभा से माता–पिता का घर उत्सवी हो उठा है। इस प्रकार की रागात्मकता को अभिव्यक्त करता हुआ शांति सुमन का यह गीत किसे धन्य नहीं बनाएगा ?

धीरे पाँव धरो
आज पिता गृह धन्य हुआ है
मंत्र–सदृश उचरो।
तू अम्मा के घर की देहरी
बाबूजी की शान
तू भाभी के जूड़े का पिन
भैया की मुस्कान... ।

गीत की ये पंक्तियाँ हमारे अंतरंग भावों की नई आभा हैं।

नारी की रचना करते समय विधाता ने संसार की सारी कोमलता और भावुकता को एक साथ पिरो दिया है। यह कोमलता जगत की सारी परुषता को मृदुता प्रदान करती है किंतु नारी जगत में एक अपवाद प्रायः देखने–सुनने में आता है कि नारी अपनी ही जाति के प्रति निर्मम रही है। साह–बहू और भाभी–ननद के रिश्तों की कड़वाहट लोकगीतों से लेकर अभिजात साहित्य तक में पाई जाती है। शांति सुमन ने इस पारंपरिक मिथक को तोड़ा है और अपने एक गीत के माध्यम से 'सास' में मातृत्व और 'बहू' में पुत्रीत्व भाव की प्रतिष्ठा, जिस रागात्मकता के साथ किया है, उससे साहित्य के सामाजिक सरोकार को सार्थकता एवं उसकी शिवं–सुंदरं की चेतना को नई ऊर्जा मिली है। अपने इकलौते बेटे की बहू के आगमन पर लिखा गया यह गीत पूरे घर को एक नई

संपदा से भर गया है –

सपनों ने साँसें लीं
घर यह घर की तरह हुआ
हीरे–मानिक से क्या कम है
तेरे लिए दुआ
नहीं जान पाओगी अपने
होने के तुम माने
कितने–कितने सपनों में तुम
रची रही सिरहाने
केवल दीवारें थीं घर में
अब संसार हुआ
आकर इस छोटे घर को
पूरा परिवार किया।

इस तरह रिश्तों से बँधे हुए घर को शांति सुमन ने साँस–साँस जिया है।

नारी ने ही संसार को दाम्पत्य नेह से सार्थक बनाया है। नितान्त निजता और एकान्त के क्षणों की तन्मयता एवं अलौकिकता को वे संकेतों में इस प्रकार कह जाती हैं कि पाठक अपने अनुभवों का अहसास, नए–नए स्वादों में जीने लगता है –

होने दे ओ रे मितवा
जो जी में है

x x x

केसर रंग रँगा मन मेरा
सुआपंखिया शाम है
बड़े प्यार से सात रंग में
लिखा तुम्हारा नाम है।

x x x

तन धीरे हुआ कास–वन
मन सूरजमुखी बन गया।
छवि खिंची दरपनी वक्ष पर,
एक तूफान थमने लगा।

इसी संदर्भ में कुछ और संकेत मन को कहाँ–कहाँ उड़ा ले जाते हैं –

एक बादल बरसता रहा
और धुलती गई वासना।

दाम्पत्य भाव में प्रतीक्षा जब ऊब जाती है तब किस तरह उलाहने देती है –

खिड़की के पल्ले खुले,
परदे उड़े सारी रात
पिया कहाँ बँधे तुम रहे।

इसी प्रकार दाम्पत्य स्नेह को प्रभावी बनाती मान–मनुहार की ये पंक्तियाँ कितनी काम्य लगती हैं –

ये लो चनक गई
तीज चढ़ी चूड़ी
ओहो, बड़े वैसे तुम
मानो मजबूरी।

दाम्पत्य प्रेम की परिधि से बाहर भी रागात्मक अनुभूतियाँ शांति सुमन के गीतों में पूरी व्यापकता के साथ मुखरित हुई हैं। इस प्रकार उनके गीतों में एक पूरा रागात्मक संसार रचा–बसा है, जिसमें वह सबकुछ तो है ही जो वहाँ अपेक्षित होता है, उनके अतिरिक्त भी बहुत कुछ है, जिनकी व्याख्या शब्दों से नहीं अनुभवों से की जा सकती है। उनका एक प्रसिद्ध गीत है 'बादल लौट आ' जो अपने निहितार्थ में व्यंजना की अनेक मुखरता लिए हुए है।

स्त्री–विमर्श के संदर्भ में आजकल लोग मिथ्या संवेदन ओढ़े हुए, ईर्ष्या, स्पर्धा, अराजकता और स्वच्छंदता–पूर्ण वैरभाव वाले साहित्य की रचना कर रहे हैं किंतु भारतीय कवत्रियी शांति सुमन के गीत इस फैशनी लेखन को छोड़ कर त्याग और समर्पण के माध्यम से स्त्री के लिए पुरुष को और पुरुष के लिए स्त्री को पूज्य बना रहे हैं। एक मैथिली गीत में पत्नी के नाक का मोती पति की आँखों में रंग घोलता है और पत्नी की माँग के सिंदूर की लाली से पति की आँखों में दसों दिशाएँ नेह के रंग से लाल हो जाती हैं।

इन सबके बावजूद दाम्पत्य जीवन में एक दूसरे के प्रति विश्वास,

त्याग और आस्था उपजाने वाले और इन्हें शुभ संकल्प के सूत्रों में बाँधने वाले न आने कितने गीत शांति सुमन ने रचे हैं। वास्तव में जीवन एक यज्ञ है और इस यज्ञ में पति और पत्नी स्त्री–पुरुष के रूप में तन–मन से साथ होकर कर्म की आहुतियाँ डालते हैं। भारतीय संस्कृति में तो यहाँ तक कहा गया है कि पति के बिना पत्नी और पत्नी के बिना पति अधूरा होता है। दोनों के परस्पर समर्पण, त्याग और सच्ची नियति से किए गए रागात्मक विश्वास से ही गृहस्थ धर्म सफल होता है। यही भारतीयता है, जिसमें न स्पर्धा और न ही प्रतिद्वंद्विता। इसी से पारिवारिक और सामाजिक संबंध बनते हैं।

अपने कुछ गीतों में स्त्री–विमर्श के नाम पर शांति सुमन ने मध्यवर्गीय नारी की श्रम–शिथिल और अभावग्रस्त जिंदगी के तमाम यथार्थ चित्र भी उकेरे हैं। इनका एक बहुसमर्पित और चर्चित गीत है, 'क्रोशिया काढ़े दिन बीते, अब तो चूल्हे–चौके की बात।' कल्पना करें कि किसी प्रतिभावती बालिका की हसरतें चूल्हे–चौके की कारा में कैद होकर, कुंठाग्रस्त होकर जब समाप्त हो जाती हैं तो उसके मन पर क्या बीतती होगी, गीत की एक पंक्ति कहती है –

कोहबर के पुष्प–रेणु रीते,
अब तो बस सब मौके की बात।

इसके अतिरिक्त ऐसी नारी की स्थिति का शब्दांकन करते हुए गीत की अगली पंक्ति कहती है –

परदे बीमार और बंद गली दरवाजे,
सीखचों में कैद कोई धूप गई मर लाजे।'

कितने सटीक और अनुभूति–प्रवण प्रतीक हैं, इसे कोई सहृदय प्रमाता ही समझ सकता है।

साहित्यकार की परिस्थितियाँ, परिवेश और भोगा हुआ समय–सत्य, उसे तदनुरूप संवेदन दे जाता है। सामान्य मध्यमवर्ग में जन्मी शांति सुमन जी ने अपने घर एवं बाहर बड़ी गंभीरता से श्रमजीवी वर्ग की उपेक्षा, अभावग्रस्तता और बेबसी आदि को देखा, समझा और अनुभूत किया है। इसलिए उनके वे गीत, जिन्हें असली सामाजिक सरोकार के गीत कहना चाहिए, पूरी वैष्णवी पीड़ा के गीत हैं। 'ओ प्रतीक्षित' नवगीतों का विलक्षण संग्रह है। इन गीतों में जिस मानुषी भावना का संचार है,

वही साहित्य की शक्ति है। कुछ गीत उन्होंने ऐसे भी लिखे है जो उनको दूसरों से अलग और ऊपर ले जाते हैं। उदाहरण के लिए 'मुनिया के घर का सूरज', 'उदास आँखें', 'बेरोजगार हम', 'मजदूर माँ की लोरी', 'अकाल में बच्चे' आदि जनवादी गीत निराला, नागार्जुन एवं केदारनाथ अग्रवाल जैसे वैष्णव कवियों की उदात्त भावना से सम्पृक्त हैं। जहाँ चक्कियाँ चलाती हुई माँएँ आटा–आटा होकर रह जाती हैं और स्थिति परिवर्तन का इंतजार करती आँखें काठ के बुरादे सी ढ़ह जाती हैं, वहाँ आज सच्ची नियति से गाँधी और बाबू जयप्रकाश नारायण जैसी क्रांति करने की जरूरत है। इनकी एक प्रसिद्ध जनवादी रचना है 'एक सूर्य रोटी पर।' इस रचना की नायिका शकुंतला निराला की 'मजदूरनी' का नया संस्करण है। यह गीत आँखों देखी और पूरे मन से अनुभव की गई पीड़ा का एक ऐसा दस्तावेज है जिसकी व्याख्या में करुणा और आक्रोश के कई–कई काव्य लिखे जा सकते हैं –

यह भी हुआ भला
कथरी ओढ़े तालमखाने चुनती शकुंतला
कंधे तक डूबी सुजनी की देह गड़े काँटे
कोड़े से बरसे दिन, जमा करे किस–किस खाते

x x x

लहठी सना पसीना मन में चुभती गर्म सलाखें
एक सूर्य रोटी पर औंधा, चाँद नून–सा गला।

देश के अनेक ग्राम्य–परिवेशों में ऐसी न जाने कितनी शकुंतलाओं के सौंदर्य का विगलन–बेबसी और दारुण स्थिति सहृदय की आँखों को खून के आँसू रोने को विवश कर देती है।

जिस देश में रोजी और रोटी ही सबसे बड़ा और अनसुलझा सवाल बनकर अस्सी प्रतिशत आबादी की उम्र जी रहा हो वहाँ गरीब लोगों के जीवन का क्या अस्तित्व है। आज के मनुष्य के समक्ष यह सबसे बड़ा चिंतन–संदर्भ है।

'हम मुठभेड़ हुए' गीत में शांति सुमन जब यह कहती हैं –

थाली उतनी की उतनी ही, छोटी हो गई रोटी
कहती बूढ़ी दादी अपने गाँव की...
कहती नवकी भौजी अपने गाँव की

तब 'बूढ़ी दादी' और 'नवकी भौजी' पदों की ध्वन्यर्थ व्यंजना सहृदय के मर्म को मथ डालती है और वर्ग–विषमता की इस विडम्बना की एक लंबी परंपरा का ऐतिहासिक बोध कराती है। लेकिन जनवादी गीत–कवयित्री शांति सुमन आक्रोश के बाद आस्था, आस्तिकता और आशा का स्वर भी संजोती हैं –

बीते दिन बहुरेंगे, पाँखी लौटेंगे

x x x

चाहे रहो गाँव में भाई, चाहे रहो शहर में,
चुप होकर अब नहीं बैठना, अपने टूटे घर में

x x x

अपनी लाचारी का अब हम गीत न गायेंगे
ताकत नई बटोर क्रांति के बीज उगायेंगे।

इनके अतिरिक्त सुमन जी ने खेतिहर मजदूरों और निम्न मध्यमवर्गीय किसानों की व्यथा–कथा को भी अपनी प्रामाणिक अनुभूति से गीतों में सँजोया है। तमाम हरित क्रांति के बावजूद यू० पी०, बिहार के छोटे किसानों, भूमिहीनों आदि की स्थिति प्रेमचंदीय युग से बहुत ज्यादा बेहतर नहीं हुई है। आज भी वहाँ के किसान अपनी इच्छा, अपने सुख–दुःख, सभी खेत के नाम लिखकर सूनी आँखों सपने देखते हैं। जहाँ तक दुःख–दर्द दूर होने या भुलाने की बात है, वह स्थिति इन गीत–पंक्तियों में व्यक्त हुई है –

दुख सहकर ही हमने दर्द
भुलाया है दुख का
बचा हुआ है आँखों में
अभियान गीत सुख का।

कभी–कभी भूमिहीन किसान संपन्न किसानों की जमीन बँटाई पर लेकर काश्त करते हैं। उनके अपने दुःख है। ठीक वही दुःख हैं जो प्रेमचंद की कहानी 'पूस की रात' के 'हल्कू' के हैं –

खेत बँटाई के देते हैं
नहीं रातभर सोने,
सपने में सपने आते हैं
घर–विवाह–गौने।

कुछ गीतों में राजनैतिक व्यवस्था पर आक्रोश और करुणा मिश्रित व्यंग्य भी है –

बन्दोबस्त हुआ अच्छा अब
भूखों नहीं मरेंगे लोग
अपने ही सपनों को खाकर
अपना पेट भरेंगे लोग

भ्रष्ट सियासी व्यवस्था पर अफसोस जताती ये पंक्तियाँ –

सड़कों पर बनते जुलूस देखूँ जब मेरे बेटे
लगता एक गलत आजादी तेरे हाथ लगी

रोजी–रोटी की तलाश में गाँव के दुखड़े शहर में सुकून पाने जाते हैं, लेकिन महानगर के फुटपाथ बनकर रह जाते हैं। 'पत्थरों के शहर' नामक गीत में सुमन जी के एहसास संवेदना की कलम से इस प्रकार चित्रित हुए हैं –

यह शहर पत्थरों का, पत्थरों का शहर
टूटी हुई सबह यहाँ
झुकी हुई शाम
जेलों से दफ्तर के
शापित आराम।

महानगर में औपचारिक परिचय–प्रणाम के साथ संबंध खत्म हो जाते हैं। चाय पिलाकर चीनी के दाम जोड़ने वाला व्यापारिक संबंध, कितना–कितना लिजलिजा लगता है।

दुनिया–जहान के सारे दुखड़ों और रोने–धोने के बीच कई बार मन इनसे छन भर को ही सही, विलग होना चाहता है। वह चाहता है कि कुछ लोकरस की बात की जाए। एक बार 'धर्मयुग' के यशस्वी संपादक स्वर्गीय धर्मवीर भारती ने कैलाश गौतम के लोकरस भींगे गीतों पर टिप्पणी करते हुए लिखा था कि 'इन गीतों में मग्न होकर कुछ पल जी लेना, दुखड़ों के हजार–हजार दिनों के अवसाद को जीत लेना है।' 'नागकेसर हवा' नामक गीत की ये पंक्तियाँ ऐसे ही एहसास कराती हैं –

एक चिड़िया चोंच भर
लेकर उड़ी अनबन,

भाभियों के खनकते
हाथों हिले कंगन
स्वागतम् गूंथी हथेली
धो गई शिकवा

इसी तरह 'गंध लिखी देहरी' नामक गीत में 'घर' का सांस्कृतिक बोध मन को कितना पुलकित कर जाता है –

दरवाजे के सांकल
छाप अँगुलियों की ठहरी
भुनी हुई सूजी की मीठी
गंध लिखी देहरी।
याद बहुत आते हैं घर के
परिचय और प्रणाम

'कोई बच्ची' नामक गीत सलज, शृंगारी वयस की पूर्वदीप्ति के रूप में सहृदय पाठकों को लुभाता है –

जब कभी कोई बच्ची
वर्षा में नहाती है
घर की याद आती है
x x x
इमामी की महक से
भरी हुई दुपहरी
भुनी हुई सूजी की
गंध लिखी देहरी
गेरू से रंगी आँखें
इस घाट पर लजाती हैं

इस सारी जाँच पड़ताल के बाद मन यह कहने को लालायित हो उठता है कि शांति सुमन ने जीवन के विभिन्न आयामों को साँस–साँस रजकर जिया हैं और उन्हें गीतों में ढालते वक्त स्वयं में उपनिषद हो गई हैं। मैं उन औपनिषदिक क्षणों को नमन करता हूँ, जिनमें डॉक्टर शांति सुमन की सारस्वत लेखनी से ये गीतामृत फूटे हैं।

इन गीतों की कुछ सीमायें भी हैं जैसे औचित्य को लाँघकर आंचलिक शब्दों का प्रयोग, 'जनवाद' की हुमक में मार्क्सवादी कामरेड

बनने की जल्दबाजी, क्रांतिधर्मिता की हड़बड़ाहट और विचारधारा का अतिरेकी वर्णन इत्यादि। लेकिन ये सब बातें एक साहित्यकार के लिए सामाजिक सरोकार के दायरे में आती हैं और एक प्रतिबद्ध साहित्यकार अपने समय से जद्दोजहद करता है तथा इसी के चलते कभी–कभी उसका आक्रोश काव्य रचना के स्तर पर नितांत अभिधात्मक हो जाता है।

जहाँ तक शांति सुमन के रचना–शिल्प की बात है उसकी कोई सानी नहीं। मुझे तो ऐसा लगता है कि अपने गीतों में डॉ0 शांति सुमन स्वयं ही अनुभूति बन गई हैं और स्वयं ही अभिव्यक्ति।

■

धुंध की कैद से सूरज की मुक्ति को आतुर नवगीतीय स्वर डॉ० शान्ति सुमन

❑ डॉ० रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'

छायावादी चतुष्कोण में एक कोण महादेवी वर्मा भी थीं परन्तु अनायास क्या हुआ कि छायावादोत्तर काव्य–परिदृश्य से हम कवियित्रियों को लगभग अदृश्य पाते हैं। क्या यह प्रगतिवाद की नारों की सीमा को छूती हुई शोषण–मुक्तिकामना और अति स्थूलता तथा प्रयोगवाद की शुष्क बौद्धिकता का परिणाम था ? जो भी हो छायावादोत्तर गीत के क्षेत्र में तारा पाण्डेय और नई कविता में शान्ता सिन्हा और कीर्ति चौधरी अकेली खड़ी दिखाई देती हैं। ऐसा नहीं है कि इस युग में महिला रचनाधर्मिता में कमी आ गयी थी क्योंकि 1955 में उभरी नई कहानी में हम मन्नू भण्डारी, उषा प्रिदम्वदा, मृदुला गर्ग, नमिता सिंह, मणिका मोहिनी और सुधा अरोड़ा के रूप में एक रचनात्मक विस्फोट के दर्शन करते हैं। दुर्भाग्य से नवगीत में भी महिला भागीदारी बहुत कम (या नगण्य) रही। यों शैल रस्तोगी और नीलम श्रीवास्तव जैसे नाम भी नवगीकारों में परिगणित किये गये परन्तु वहाँ भी शान्तिसुमन अकेली ही खड़ी दिखाई देती हैं। डॉ0 सुमन नवगीत में जनवादी तेवर और अपने गीतों में विषमतामूलक समाज को बदलने की तीव्र आकांक्षा व्यक्त करने वाली सामाजिक सरोकार वाली गीतकार हैं। उनके गीतों में अपने समय के दुर्दान्त प्रश्नों से टकराने का जज्बा है परन्तु आश्चर्यजनक रूप से उनमें तीव्र आक्रोश, धधकता उताप या नाराधर्मी उत्तेजना नहीं है अपितु बहुत शान्त ढंग से वे व्यवस्था–परिवर्तन की बात कहती हैं। जब तक यह शोषणमूलक, विषमता को जन्म देने वाली व्यवस्था नहीं बदलेगी, तब तक न अमन–चैन की कल्पना की जा सकती है न समतामूलक समाज का सपना साकार होगा। इसलिए वे बड़े सहज भाव से कहतीं है –

करना होगा खत्म कर्ज, यह सूद उगाही लहना
लापरवाह व्यवस्था के खूंटे में बंधकर रहना
नाम भूख का रोटी पर
जीतेगी अपनी गोटी
कहती रानी बहना अपने गांव की

यही आशावाद, यही स्वप्नदर्शी मन डॉ0 सुमन के गीतों का मूल स्वर है।

स्वतंत्र भारत का नंगा सच यह है कि यहाँ अभी भी विषमता का साम्राज्य है। इस लोकतंत्रीय व्यवस्था ने गरीबों को अधिक गरीब और अमीरों को अधिक अमीर बनाया है। पूरे समाज को जाति, वर्ग, वर्ण और सम्प्रदायों के नाम पर लड़ाया है, राजनीतिबाजों ने पुलिस और माफिया के साथ मिलकर मेहतनकश जनता के अधिकारों को छीना है। आज भी इस देश में बहुसंख्यक वर्ग रात–दिन खटकर भी दो जून रोटी नहीं खा पाता। 'स्वानो को मिलता दूध वस्त्र भूखे बालक चिल्लाते हैं' वाली अमानवीय व्यवस्था और अधिक मजबूत हुई है। डॉ0 सुमन में इस अमानवीय व्यवस्था को बदलने की दुर्दभनीय आकांक्षा है जो उनकी क्रान्ति–दृष्टि का निर्माण करती है। उसका वास्तविक रूप यह है कि जहाँ वे शोषक व्यवस्था की विकरालता, शक्ति और अजेयता को रेखांकित करती हैं वहीं उसके टूटने–बिखरने और बदलने का आशा भरा संदेश भी दे देतीं हैं। उदाहरणार्थ 'रानी का गीत' शीर्षक गीत में वे वर्तमान व्यवस्था की प्रतीक रानी की शक्ति, विलासिता और अजेयता को चित्रित करती है। गीत का यही मूल स्वर है। यथा –

खटे न कभी मिल में
करे न कताई
रानी की देह पे है
रेशमी रजाई
पीठ के निशान भी न गिने
उनके कोड़े
कौन है जो रानी के रथ को
पीछे मोड़े

परन्तु इस गीत का अन्त क्रान्ति की संभावना दूसरे शब्दों में कहे तो उद्घोष के साथ होता है –

कौन कहे समय की भी
होती है सिलाई
काटता है वही जो
करता है बोआई

कभी छोटी चिड़िया भी
बाज को मरोड़े

यह क्रान्ति स्वर, यह आशावाद ही उनके गीतों का स्वर है। यह सच है कि यह सच अभी जमीनी स्तर पर आकार नहीं ले पाया है परन्तु आने वाली पीढ़ी के भीतर यह सुगबुगा रहा है। यह सत्य के जन्म की प्रक्रिया का प्रारंभ है। यह सपना बच्चों के मन में है, युवाओं की आंखों में है। यह नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी की तरह सबकुछ भाग्य के भरोसे छोड़ने को तैयार नहीं। वह कठोर श्रम में विश्वास करती है परन्तु अपने श्रम का फल किसी और को खाने देने को तैयार नहीं। वह अपना वर्तमान अपने हाथों संवारना चाहता है, वह जानता है कि वर्तमान सुधर गया तो भविष्य तो स्वतः ही संवर जायेगा। सबसे बड़ी बात यह है कि वह वर्तमान से असंतुष्ट है। यही असंतोष भविष्य का क्रान्ति बीज है, यही डॉ0 सुमन का विश्वास है। 'बेटा मांगे चन्द्रमा' गीत में वे नयी पीढ़ी के इस क्रान्तिधर्मी स्वर को वाणी देते हुए कहती हैं –

फटी हुई गंजी ना पहने
खाये बासी भात ना
बेटा मेरा रोये, मांगे
एक पूरा चन्द्रमा
पाटी पर वह सीख रहा
लिखना ओ ना मा सी
अ से अपना आ से आमद
धरती सारी मां सी
बाप को हल में जुता देखकर
सीखे होश सम्हालना

x x x

बाप सरीखा उसको आता
नहीं भूख को टालना

वस्तुतः डॉ0 सुमन मजदूरों, किसानों, कृषि मजदूरों, दिहाड़ी मजदूरों, निम्न वर्ग और निम्न मध्य वर्ग की व्यथा–कथा उकेरती हैं। उनके गीतों में 'ओढ़े हुए सच' की नहीं 'भोगे हुए सच' की संवेदना है। *यहाँ 'दीवारों के विरवों सी रोती मजदूरी है, जो रेलों की छतों पर*

सपनों की खेती करती है' पट्टे पर बंजर जमीन पाने वाले छले हुए भूमिहीन हैं, 'पैसे की खातिर अपना लाल लहू सुखाता बड़े लाल है' अलमुनियम के तसलों में पकते भात सा उबलते मन बाला मजदूर है, नयी ताकत बटोर कर क्रान्ति का बीज उगाने वाले स्वर हैं, मुंह में बिना कौर वाले अकाल में रोते बच्चे हैं, बिना कम्बल पूस की सर्दी की रात काटने वाले परिवार है, गोबर–माटी सने हाथ में जीने की भाषा है, पेट की आग आँखों में बोने वाली पसीने में डूबी जिजीविषा है, मुड़े हुए नाखून, ईख सी गाँठदार उंगली तथा जंग लगी खुरपी सी पसली वाली कृषक बधू है और 'यह जालिम घुसखोरी/ कब तक छिपा रहेगा/अपना लाल सूरज भी/ इस मोटी खादी में' जैसे धधकता प्रश्न पूछता युवा मन है। यों कहें कि उनके गीतों में पीढ़ी का दर्द भी है और दर्द के उपचार का मार्ग भी। वे केवल उन लोगों पर बार–बार लानत भेजती हैं जो इस व्यवस्था के अलमबरदार हैं और मेहनतकश की मेहनत का अपहरण करते हैं। वे इस रजस्वल समय को धिक्कारती हैं जहाँ विषमता नंगा नाच करने को स्वतंत्र है।

प्रतिक्रियावादी शोषक शक्तियों के निष्प्रभ और शक्तिहीन होने की कल्पना, उनके प्रति सात्विक आक्रोश, उनके टूटने–बिखरने की कामना तथा शोषितों, मजदूरों, किसानों की खुशहाली की इच्छा को संवेदनात्मक धरातल पर व्यक्त करना डॉ0 सुमन के गीतों का सामर्थ्य है परन्तु यही सामर्थ्य कहीं उनकी सीमा भी बन गयी है। हम जानते है कि प्रगतिवाद के अल्पायु होने का कारण यह था कि उस समय बहुत से कवि नारे और प्रचार साहित्य लिखने लगे थे। दुर्भाग्य से डॉ0 सुमन के कुछ गीतों में भी यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। आस्था का गीत और लाल कवच पहने जैसे गीत तथा 'जुल्मों को नकार कर जिसने लाल कवच पहने' तथा 'देखें सब दम–खम वैसा संगठन बनायेंगे' जैसी पंक्तियाँ प्रचार–साहित्य अधिक लगती है। वस्तुतः गीतकार के पास शिल्प के अनेक धारदार अस्त्र होते हैं जिनसे वह अपनी बात अधिक गीतात्मक बनाकर प्रस्तुत कर सकता है। सुमन जी कुछ गीतों में इन अस्त्रों से काम लेने में चूक गयी हैं। परन्तु जहाँ वे विशुद्ध गीतकार की भूमिका में उतरी हैं वहाँ बड़े भावपूर्ण प्रभावी और कालजयी गीतों का सृजन कर गयी हैं। परिवार–संस्कृति और संबंधों की आत्मीयता को बड़ी कोमलता के साथ

चित्रित करता उनका 'निम्न मध्यवर्ग का गीत' भीतर तक छूता है। गीत घर के बंटवारे पर तुली भाभी से देवर के कथन के रूप में है –

सारा घर–आंगन लिखवा लो
भाभी यह दलान लिखवा लो
पर अपने हिस्से भैया का प्यार
नहीं दूंगा

x x x

पर इस आंगन में बनने दीवार
नहीं दूंगा
सबके हो जायेंगे आधे
माँ का क्या होगा
कैसे आधी होंगी काली
गहबर का क्या होगा
बाबूजी का धोती वाला तार
नहीं दूंगा

इसी प्रकार 'कोशी के कछेर की लड़की' भी अत्यन्त मार्मिक गीत है। यह पति के साथ गांव से शहर आयी लड़की का गीत है। मजदूर पति की यह नवविवाहिता किन संवेदनों से गुजरती है इसका अत्यन्त मार्मिक चित्रण गीत में है। कुछ और मार्मिक भावपूर्ण और गीत की सभी शर्तों को पूरा करने वाले गीतों में धीरे पांव धरो, तुमको चाहा कितना, गांव नहीं छोड़ा, पहली लाली, अपनी सुबह, कठिनतम क्षण आदि गीत को परिगणित किया जा सकता है।

मुझे लगता है कि डॉ0 सुमन के गीतों की दो विषेशतायें उन्हें अपने समय के गीतकारों की पंक्ति से कुछ अलग करती हैं। उनके गीतों में अभिव्यक्त प्रबल आशावाद या अनथक जिजीविषा। उनके गीतों में बार–बार यह स्वर उभरा है कि समय दुर्दान्त है। शोषक शक्तियाँ अपराजेय लगती हैं। खेत–खलिहान उनके, पुलिस दरोगा उनके, सत्ता उनकी, व्यवस्था उनकी और तन्त्र उनका। फिर भी निराश होने, निष्क्रिय होकर बैठने का कोई कारण नहीं। क्योंकि दलितों, पीड़ितों के मन में एक असंतोष, एक आवेग, एक आग सो रही है, जो जब जागेगी इस शोषण के गगनचुम्बी तिलिस्मी महल को भस्मसात कर देगी क्योंकि जो

आग आज चुप है वह कल भी चुप रहेगी, यह नहीं कहा जा सकता। 'चुप्पी का गीत' में इसी आग का संकेत देते हुए उन्होंने कहा है –

हवा चुप है नदी चुप है, बाग चुप है
पर क्या सच है कि जलती आग चुप है
ढह रही बेवस छतों पर
सूखते लत्ते
नयी किताबों को मिले
कुछ पुराने गत्ते
महासागर का धुना यह झाग चुप है

उनका यह आशावाद (कि एक दिन शोषण मुक्त समतामूलक समाज बनेगा) कहीं 'धूल–माटी में खिलेगा/रक्त का परचम/वक्त ये पैगाम लाया है कि/हम कीमत वसूलें/गीतों ने कह दिया हवा यह/बदलेगी फिर से', 'अंधियारों का ढहा किला है/सोया था जो मद में/हंसी चुराने वाले मोटे हाथ लगे कंपने, अपना गांव हुआ/रोशनियों के लिए सिरजता/सूरज एक नया' तथा – एकजुट होंगे समय के साथ हम/भूख है हथियार जीतेंगे समर' जैसी गीत पंक्तियों में भी बड़ी शिद्दत के साथ अभिव्यक्त हुआ है।

डॉ0 सुमन के गीतों की दूसरी ध्यातव्य विशेषता है उनकी भाषा का रचाव। उनके गीतों की भाषा में मौलिक रचाव है, उक्ति वैचित्य की अनछुई कहन है, मुहावरों का सार्थक प्रयोग है, ताजे टटके बिम्ब हैं, ऐसे प्रतीक हैं जो जीवन व जगत की दैनन्दिन दुनिया से उठाये गये हैं। वे परिचित भाषा को नयी अर्थ–भंगिमा देने में कुशल हैं। उनका उक्ति–वैचित्र्य भाषा को ऐसी ढब दे देता है कि वह सरल और विचित्र होकर पाठक को बड़ी त्वरा के साथ उनके वांछित अर्थ तक ले जाती है। यथा –

चीजों के दाम जंगली
नदियों के शोर हो गये

इस पंक्ति को देखें महंगाई बढ़ रही है। बढ़ती महंगाई जंगल की तरह न किसी कानून में बंध पा रही है न वह किसी नियम को मान रही है। जंगल की तरह उसमें भी शक्तिशाली का कानून चल रहा है। नदियाँ जैसे सतत् बहती जाती हैं वैसे ही महंगाई भी निरन्तर बढ़ती जा रही है और जैसे शोर में कुछ सुनाई नहीं देता उसी तरह इस बढ़ती

आमजन की चीख पुकार कोई नहीं सुन रहा। व्यवस्था के कान पर जूं तक नहीं रेंग रही, यह अर्थ तत्काल पाठक के मन पर अंकित हो जाता है। उनकी उक्ति वैचित्र्य से सम्पन्न कुछ और पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

1. सपने में सपने आते हैं।

2. कच्चे घर की दीवारों पर/छपते सपने कल के

3. कमने लगीं हवायें/अब आकाश हुआ छोटा (यहाँ 'कमना' कवयित्री की गढ़ी हुई भाववाचक संज्ञा है जो 'कम होना' क्रिया से गढ़ी गयी है)

4. नाचघरों में बोयी जाती/पूंजी मिली जहर में

5. वैसे कितना पानी चढ़कर/उतरा है सिर से

ऐसे उक्ति वैचित्र्यपूर्ण कथन उनके गीतों में असंख्य हैं जो नये युग की नयी सूक्तियाँ बनने की क्षमता रखते हैं।

गीत में बिम्बधर्मी भाषा उसे अधिक संप्रेषणीय बनाती है। डॉ0 सुमन के गीतों की भाषा भी बिम्बधर्मी है। उनके बिम्ब नितान्त नवीन और टटके हैं। उन्होंने गीतों में ऐन्द्रिय बिम्ब–गन्ध, रूप, रस, स्पर्श तथा ध्वनि – संश्लिष्ट बिम्ब और गतिशील बिम्बों का बड़ा सार्थक प्रयोग किया है। यथा –

1. सांझ दहशत में सनी होगी नहीं काली – संश्लिष्ट बिम्ब (दृश्य व भाव)

2. परिचित सा एक रंग–रंग में गन्ध मिला देता – संश्लिष्ट बिम्ब (दृश्य व रस्य (आस्वाद)

3. तट पर रूनझुन नूपुर बजते (ध्वनि बिम्ब)

4. हरी टहनियों सी ये दसों दिशायें फैली सी (रंग बिम्ब दृश्य)

5. पोस्टर पर स्याहियाँ भरीं (दृश्य बिम्ब)

6. दुखती हैं टहनी की बाहें/जड़ से दिन भर बतियाती है (भाव बिम्ब)

7. तड़कती हुई पसलियाँ/रोटियों के सवाल पर (ध्वनि बिम्ब)

8. बोये हुए बीज खेत में/रचते हैं रंगोली अंकुरायेंगे तब सखियों की/होगी हंसी ठिठोली (गति बिम्ब)

9. पांव भर फैली थकानें/सीढ़ियाँ चढ़ती (गति बिम्ब)

10. लहकी दुनिया अहसासों में/बीत गये दिन की बातों में राम कसम पहले से अधिक लजायी लगती हो (भाव बिम्ब)

हम देख सकते हैं कि इन उद्धरणों में भाषा बिल्कुल नयेपन के साथ सम्प्रेषण को सहज और सरल बना रही है।

जहाँ तक भाषा की आलंकारिकता का प्रश्न है कवयित्री ने कहीं भी अलंकारों का सायास प्रयोग नहीं किया है। अभिव्यक्ति की सहज भंगिमा में जो अलंकार आ गये हैं उन्हें उन्होंने आने दिया है। यही कारण है कि शब्दालंकारों का आडम्बर उनके यहाँ बहुत कम है। 'अर्थालंकारों' में भी लक्षणामूलक, विरोध मूलक और असंगतिमूलक अलंकारों का प्रयोग अधिक हुआ है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

1. रोशनी का रथ लिये जो/अंधेरा पीती रही – (विरोधाभास)

2. हवा चुप है, नदी चुप है, बाग चुप है – (मानवीकरण)

3. ब्लैक बोर्ड सा टंगा पड़ा/यह मेघ भरा आकाश – (उदाहरण)

4. खुद को ऐसा लगे कि जैसे/हो औरों की चीज – (उत्प्रेक्षा)

5. हंसी और नींद पसरी है, हवा चुप है, खेत बटाई के देते हैं/नहीं रात भर सोने/हंसिया मचल रहा हाथों में – (मानवीकरण)

6. डोल रहे अपनी मर्जी से/घोंसले हवा में/जैसे दर्जी की मशीन पर/सिलते पजामें – (उदाहरण)

7. कोमल गाने, मीठे घरौंदे, बेवस छतों, बूढ़ी लालटेन, हंसती सुबह, नकली लाचारी – (विशेषण विपर्यय)

8. धानों की फूटी किलकारी/फूलों सी महकी/कपास सी सुबह/कटी फसल की महक/लगे अनलिखे पते सी/झुकी हुई आंखें लगतीं/अब करुणा की बोली सी – (उपमा)

9. घर में रहे खेत की चिन्ता/खेत रहे तो घर की – (असंगति)

10. स्नेह का जल, सुखों के शैवाल, श्रम का चाक – (रूपक)

इन सभी उद्धरणों में न तो आलंकारिक प्रयोग बलात् किये गये लगते हैं न वे पारंपरिक शैली के हैं। अप्रस्तुत विधान नितान्त नया है और भाषिक संरचना ने अभिव्यक्ति को अधिक सामर्थ्यवान बनाया है।

डॉ0 सुमन की भाषिक संरचना की एक अन्यतम विशेषता उनकी प्रतीक योजना है। भाषा को सामर्थ्यवान बनाने के लिए उन्होंने प्रतीकों का भरपूर प्रयोग किया है परन्तु उनके प्रतीक चिर–परिचित हैं। आकाश, नदी, मेघ, हंसी, हवा, हंसिया, कुदाल, फाबड़ा, लौकी, पोखर, दूब–धान, सपने, सूरजमुखी, धान, चावल, सूरज, चन्द्रमा, ऊसर, आंगन, नाव, पाल, मीनार, पतवार, जाल, बाजार, मछली, वन तुलसी, आक जवासे, हवेली, फूल, पत्ती, गंध, सावन, गोरैया, सोनजुही, ऋतु, बैलगाड़ी, कुंआ, मशीन, राजमहल, भूख, हल, फाल तथा बचपन जैसे चिर–परिचित प्रतीक तो नये अंदाज में प्रस्तुत हुए ही हैं साथ ही उन्होंने कुछ नामों को भी प्रतीकात्मक अर्थ में प्रयुक्त किया है। जैसे शकुन्तला, रमेसर, सोने लाल, बड़े लाल, मुनिया, रमजानी तथा लुधियाना। ये साधारणतः निम्न मध्यवर्ग या निम्नवर्ग के व्यक्तियों के वर्ग–प्रतीक बनकर ही आये हैं।

डॉ0 सुमन के नवगीतों की कुछ और विशेषताओं की ओर संकेत करना आवश्यक है। साम्यवाद में उनकी गहरी निष्ठा है। वे साम्यवादी मान्यताओं के अनुरूप किसान, मजदूरों और शोषितों के संगठन में ही समतामूलक समाज की स्थापना को साकार होता हुआ देखती हैं। इसीलिए उन्होंने बार–बार संगठन पर बल दिया है और लाल रंग को क्रान्ति का प्रतीक माना है। यह लाल रंग उनके गीतों में बार–बार आया है। यथा – 'खबरें फैला रही यहाँ/फूलों की लाल पंखुड़ियाँ', 'गैंची–कतला के संग लाया/साड़ी टह टह लाल', 'आंचल में हम फूल गीत/इंगुर की लाली के', 'लेकर लाल मशाल खेत/खलिहानों में जाये' आदि।

नवगीतकारों ने पारंपरिक गीत से अपने को अलग दिखाने के लिए नयी शब्द–योजना, प्रतीकात्मकता, अर्थगर्भी नयी भाषा, जीवनगत विसंगतियों का चित्रण, मूल्य–विघटन और अनास्था को कथ्य में सम्मिलित तो किया ही साथ ही गीत को अर्थखण्डों में लिखना भी प्रारंभ किया जबकि पारंपरिक गीत लयखण्ड में लिखा जाता था। नवगीतकारों के भी दो वर्ग रहे – (1) एक वे जो पूरी तरह छन्दाश्रित गीतों का सृजन करते रहे यद्यपि गीतो को उन्होंने लिखा अर्थखण्डों में ही अर्थात् एक लयखण्ड को तीन या चार पंक्तियों में लिखा। जैसे –

इस उजाड़ तक लाकर छोड़ गये
ऐसे तो ये दिन
लौट चलूं इन मेहरावों में फिर
कभी नहीं मुमकिन

यहाँ हवा है तेज
बदन बेसुध हिलता है
आंख–आंख में फर्क
नहीं बेशक मिलता है

कुछ चौकन्नापन से जोड़ गये
घाव बड़े कमसिन

डॉ0 सुमन के इस गीत के ध्रुव पद (मुखड़े) पहली व तीसरी पंक्ति में 18–18 मात्रायें हैं जिन्हें 10–10 मात्राओं वाली दूसरी व चौथी पंक्ति से जोड़ा गया है। अन्तरा 24–24 मात्रा का है जो दो–दो पंक्तियों में अर्थखण्ड के हिसाब से लिखा गया है। (2) दूसरा वर्ग उन नवगीतकारों का है जो छन्द का अनुगमन नहीं करते और केवल लय को गीत के लिए आवश्यक मानते हैं जैसे सोम ठाकुर के एक गीत का उदाहरण देखें –

खिड़की पर आंख लगी देहरी पर कान
धूप भरे सूने दालान
हल्दी के रूप भरे सूने दालान

इस ध्रुव पद की प्रथम पंक्ति में 22 मात्रायें, दूसरी में 15 और तीसरी में 21 हैं परन्तु इसमें लयात्मकता है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि डॉ0 सुमन प्रथम श्रेणी की गीतकार हैं। उनके गीत पूरी तरह छन्द के बन्धन को स्वीकार कर चले हैं। इसीलिए वे सहज गेय हैं और उनमें कहीं अपवाद स्वरूप भी लयभंग का दोष नहीं है। इसीलिए निर्विवाद रूप से वे ऐसी रचनाकार हैं जो कालजयी रहेंगी। वे ईश्वर की नहीं अपना मान स्वयं गढ़ने वाली मानव–प्रतिमा की पुजारिन हैं। इस ठोस, यथार्थ, कर्मशील मानव की प्रतिमा गढ़ने वाले गीतकार के रूप में वे सदा–सर्वदा पठनीय रहेंगी।

■

बादल और अगिन : डॉ० शान्ति सुमन

❑ अनूप अशेष

रचना में जब घर–परिवार की बात होती है तो उसमें समाज, देश, उसके परिवेश की बात की जाती है। घर–परिवार तो प्रतीक रूप में होते हैं। माँ–पिता, भाई–बहन लोक परिवार से होते हैं। मेरी रचनाओं का सच भी यही है। यह अर्थ हर नवगीत–कवियों की रचनाओं का भी होता है। डॉ0 शान्ति सुमन की रचनाओं का अर्थ और कथ्य:भी यही है। इनकी रचनाओं से परिचित होना एक पारिवारिक अनुभव भी रहा है मेरा – आत्मीय सृजनात्मक मेल का, आंतरिक अनुभूति का। इनके नवगीतों में लोक प्रेम–जागरण अपने समग्र रूप में उपस्थित है। किंतु अंतरंगता के साथ ये लोक और गाँव की निश्छल मानसिक उपस्थिति में ही रमती हैं। गाँव, खेत, बीज, फसल, किसान, मजदूर, शोषण–प्रतिरोध इनके नवगीतों में भिन्न–भिन्न बिम्बों, अछूते प्रतीकों के साथ नए रूपों में अभिव्यक्त होते हैं। यही इनकी सृजनधर्मिता भी है। ये अपनी विचार–अभिव्यक्ति में पूर्णतः सफल भी हैं। नवगीत आधुनिक समकालीन कविता की शाश्वत विधा है। इसका और नई कविता का जन्म भी लगभग एक ही समय का है। शान्ति सुमन ने नई कविताएँ भी लिखी हैं। शान्ति जी ने अपने जिन संग्रहों को जनवादी गीत संग्रह घोषित किया है वस्तुतः वे नवगीत संग्रह ही हैं। उनकी आत्मा और मन में नवगीत है। इनमें वही रचनाएँ स्वाभाविक और महत्वपूर्ण हैं जो नवगीत के धरातल पर हैं। शेष रचनाएँ विचार और सोच की अपनी सीमा में हैं। कहने का अर्थ यह नहीं कि वे महत्वूपर्ण नहीं हैं। महत्वपूर्ण होती है रचना की संवेदना और शान्ति सुमन के जनवादी गीतों में संवेदना, जीवन की तरलता भीतर से फूटती है। इसीलिए इनकी रचनाएँ नारों से हट कर हैं अपनी सम्प्रेषणीयता के साथ।

शान्ति सुमन के 'भीतर–भीतर आग' संग्रह का नवगीत है –

'धीरे पाँव धरो
आज पिता–गृह धन्य हुआ है
मंत्र सदृश उचरो'

इस संग्रह के अधिकांश गीत अपनी संवेदना, शिल्प और कथ्य में

श्रेष्ठ नवगीत हैं। इसी तरह 'एक सूर्य रोटी पर' तथा 'धूप रंगे दिन' संग्रहों में नवगीत ही तो हैं। 'ओ प्रतीक्षित' और 'परछाईं टूटती' इनका पहला और दूसरा घोषित नवगीत–संग्रह हैं।

'परछाईं टूटती' का एक अंश देखें –

'गेहुओं की पत्तियों पर
छपा सारा हाल,
फुनगियों पर दूब की
मौसम चढ़ा इस साल,
रंग हरे हो गए पीले
बात में मितवा।'
'यादों की बिटिया अँगूठे को चूसती।'
'हो गया है इंतजार विदेह
बादल लौट आ।'

इन नवगीतों में कवयित्री अपनी अंतरंग छवियों के बीच घर (घरों) की स्थितियों से अपने छोह की तरह जुड़ी हैं –

'कहीं–कहीं दुखती है
घर की छोटी आमदनी,
धुआँ पहनते चौके
बुनते केवल नागफनी।'

'परछाईं टूटती' में यही वैयक्तिक और सामाजिक स्थिति 'मौसम हुआ कबीर' संग्रह तक अनुभव की गहनता के साथ यथार्थ की, सामाजिक संदर्भों की नई–नई परतें उघड़ती हैं इनके नवगीतों में।

'थाली उतनी की उतनी ही
छोटी हो गई रोटी।'

यह आज, पहले से अधिक भयावह हो गया है। इसके मुँह में सामान्य शोषित जन की ही नहीं पूरी मनुष्यता की हड्डियाँ पिस रही हैं।

'फेन–फूल से उठे/मगर राखों के ढेर हुए
धँसे हुए आँखों के किस्से
हम मुठभेड़ हुए।
भूख हुई अजगर–सी

सूखी तन की बोटी–बोटी
कहती बड़की काकी मेरे गाँव की।'

डॉ0 शान्ति सुमन आदमकद सामाजिक हैं। इनके नवगीतों में एक अपील है, खिंचाव है जो मन को बाँधता है। शान्ति सुमन का छांदसिक कविता में आना या उभरना मैं बड़ी घटना मानता हूँ। उँगली पर गिनी कुछ पुरानी कवयित्रियों को छोड़ दें तो गीत–कविता का लोक एकदम सूना था। कुछ रानियाँ, देवरानियाँ, सौतें थीं, हैं जो दूसरे अंकशायी मित्रों के गीत मंचों पर पढ़ कर मुजरे का आनंद देती थीं, देती हैं भी। छोटी जगहों (पत्रों) में छपती भी हैं। इनमें अधिकांश गुम गईं। शान्ति सुमन अपने लेखन, प्रकाशन काल से लेकर आज भी नवगीत कविता की अकेली महत्वपूर्ण, समर्थ कवयित्री हैं। दूसरा कोई नाम ऐसा नहीं जिसे नोट किया जा सके।

नवगीत अंतर्मुखी होता है। बिम्ब–प्रतीक अपनी भाषा में उसे वाणी देते हैं, अभिव्यक्त करते हैं। यह जब मुखर होता है, तब जनगीत का रूप धारण करता है। जैसे शांत जल में कंकड़ मारने से उसमें हलचल होती है, हिलोरें आती हैं। यह हलचल ही नवगीत और जनगीत की सीमा– रेखा है। जैसे व्यक्ति अपने में एक होता है किन्तु कभी परिस्थितियोंवश उसकी मुद्राएँ बदलती हैं। शान्ति सुमन के नवगीतों का ही एक अंश–भाग उनका जनवादी गीत भी है। मुद्राएँ अलग हैं, देह एक ही है। समकालीन नवगीत कविता का सच भी यही है।

शान्ति सुमन की रचनाओं का आधारविन्दु मनुष्य को मनुष्य के पक्ष में रेखांकित करने की रचनात्मक स्वानुभूति ही है। वह परिवर्तन, आक्रोश या सहज मानवीय तरलता किसी भी रूप में हो। बड़ी कविता वही हो सकती है जो कवि को मनुष्यताके अतीत और वर्तमान में अपनी उपस्थिति पारिभाषित कर सके। इनका उपन्यास 'जल झुका हिरन' मैथिली काव्यसंग्रह 'मेघ इन्द्रनील', नई कविता का संग्रह 'सूखती नहीं वह नदी' भी प्रकाशित हैं। इनकी छंद में लिखी कविताएँ नवगीत की पृष्ठभूमि से उठी कविताएँ हैं। इसीलिए धर्मवीर भारती, अज्ञेय, गिरजा कुमार माथुर, रघुवीर सहाय तथा कुँवर नारायण के लयात्मक बोध की, शिल्पगत बिम्बात्मक सौंदर्य की कविताओं की तरह ही सहज सम्प्रेषणीय हैं। आज की अधिकतर कविताओं की तरह आधे गद्य का तोतला–बयान नहीं हैं। विजेन्द्र, मान बहादुर सिंह की जन, लोक परंपरा में जीवंत

तरलता, अब तक के अपहुँच में प्रवेश की कविताएँ हैं। ये विशेषताएँ इनकी कविताओं, नवगीतों में शाश्वत रूप में उपस्थित हैं।

आज कविताओं में भी कहानियों की तरह देह उपस्थिति दे रही है। इनमें विमर्श है। वैश्विकता है, भूमंडलीकरण है, उत्तर आधुनिकता है, अर्थात् समस्त जूठनें एकत्रित हैं। इनमें अगर कुछ नहीं है तो वह कविता है। ऐसी त्रासद स्थितिमें नवगीत कवियों के साथ डॉ0 शान्ति सुमन अपनी रचनाओं से इस विधा के प्रति एक आश्वस्ति देती हैं। 'शान्ति सुमन की गीत रचना और दृष्टि' ग्रंथ छपा है। इसमें शान्ति सुमन के सृजन का संपूर्ण परिचय और उनके जीवन के मीठे–कटु अनुभवों का आत्मालोचन भी है। शान्ति सुमन ने घोषित जनवादी गीतों में, अपने या सहकर्मियों (कवियों) के विशेष आंदोलित आग्रह पर जो कुछ लिखा उनमें विचार तो हैं, पर शान्ति सुमन नहीं हैं। ऐसा लगता है कि जैसे इनका किसी जन्य के तहत सृजनात्मक उपयोग किया गया है। शलभ श्री राम सिंह, रमेश रंजक, राजेन्द्र प्रसाद सिंह एक जिद की हद तक जनवाद को ढोते रहे। इनके साथ शान्ति जी भी रहीं। ये सभी नाम नवगीत के प्रारंभिक और अविस्मरणीय नाम हैं। किन्तु कथित प्रगतिशील सिरमौर जो आज भी हैं – ने इन सभी की भयंकर उपेक्षा की। छंदहीन अधकचड़े कवियों को प्रगतिशील/जनवादी आलोचना बड़े समकालीन कवि घोषित करती रही। किन्तु छंद को इसने छुआ तक नहीं। गीत, नवगीत को ये आलोचक कविता ही नहीं मानते। यही स्थिति प्रेम शंकर रघुवंशी के साथ भी रही।

डॉ0 शान्ति सुमन के सृजन में फिर से नवगीत लौटा है। यह सुखद है। ऐसा लगता है जैसे इनके नवगीतों में लोकगीत की आत्मा देह पा गई है। एक नई चेतना अपने विशिष्ट रचाव में बिम्ब, प्रतीक और संकेतों के सहारे अपने अर्थ के विस्तार में सोच और संवेदना के अथाह दुर्लभ को एक आत्मीय रूप दे रही हो, जिसके अवयव जन जीवन से फूट रहे हों। सोच और संवेदना के स्तर पर समकालीन कविता की गहराई से सीधे जुड़े हों। यह भी सच है कि शान्ति सुमन अपने आरंभिक जनवादी गीतों की नारेबाजी से शीघ्र ही निकल कर अनेक महत्वपूर्ण और कालजयी नवगीतों की रचना कर पाई हैं। ये नवगीत लोक और जन से सम्पृक्त होकर नवगीत को समृद्ध करते हैं। डॉ0 शिव कुमार मिश्र ने शान्ति सुमन के नवगीतों की समग्र व्याख्या की है। 'शान्ति सुमन के

गीतों में उद्‌बोधन, आवेग और एक उमंग तरंगित मन का उत्साह भर नहीं है, समय की विद्रूपताओं से उनकी सीधी मुठभेड़ और युगीन यथार्थ का वह खरा बोध भी है, जिसे जन और उसके जीवन–संदर्भों के बीच से उन्होंने अर्जित किया है।'

शान्ति सुमन के नवगीतों में लोक, प्रेम, काल, जागरण अपने समग्र रूप में उपस्थित हैं, किन्तु अंतरंगता के साथ ये लोक और गाँव की मानसिक उपस्थिति में ही रमती हैं। गाँव, खेत, बीज, फसल, मजूर, किसान, शोषण–प्रतिरोध इनके गीतों–नवगीतों में भिन्न–भिन्न बिम्बों, अछूते दुर्लभ प्रतीकों के साथ नए रूपों में अभिव्यक्त होते हैं। यही इनकी सृजनधर्मिता भी है और इनकी वैचारिक अभिव्यक्ति भी। डॉ० शान्ति सुमन संवेदना की कवयित्री हैं, राजनीतिक नहीं। राजनीति कविता का मूल नहीं हो सकती, किन्तु कवि में राजनैतिक चेतना आवश्यक है। यह चेतना सुमन जी में है। इनके नवगीतों, जनवादी नवगीतों, मैथिली की कविताओं में यथार्थ जन–संवेदना की तह से ऊपर उठा है। वर्तमान परिस्थितियों, देशी राजनीति और लोक सम्पृक्त जीवन के छुए–अनछुए प्रश्नांकित प्रतिरूपों से हमारी भेंट होती है। इनकी रचनाओं में यथार्थ एक सीमा तक ही वर्णित हुआ है। संवेदनशील रचनाकार अक्सर यथार्थ का अतिक्रमण करता है। पर यह यथार्थ का विरोध नहीं है। प्रश्न यह है कि जटिल परिस्थितियों में रचनाकार यथार्थ को रचना में कैसे लाता है। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि यह यथार्थ से भागना है। एक बँधे फार्मूले से रचना को मुक्त करना ही है। फार्मूलाबद्ध या दलबद्ध लेखन जीवन को करीब से नहीं देख सकता। जीवन–समाज कैसा भी हो वह अपने निश्चित ढाँचे में ही उसे देखेगा। सुमन जी की रचनाओं में यथार्थ जन–संवेदन के साथ उठा है। यह कविता के संतुलन में सधा भी है। अतिक्रमित नहीं हुआ। थोपित नहीं किया गया।

प्रेम जीवन का सबसे अहम और शाश्वत पक्ष है। शान्ति सुमन अपनी रचनाओं में इस पक्ष को पूरी आंतरिकता के साथ लेकर चली हैं –

'नामहीन पत्थर को तोड़ दिया
किसी स्वीकृत क्षण ने/तुमको मुझसे जोड़ दिया।'
'गंध भटकाती रही हर द्वार सारी रात
स्वयं मन की तृप्तियों के लिए।'

शान्ति सुमन के ये संवेगात्मक क्षण उनके सहज और प्रीतिक मन को हमसे जोड़ देते हैं। वे इनमें चिर–प्रतीक्षित मन के भावों की दृश्य–प्रतिमा बनाती सी लगती हैं। शान्ति जी ने अपने नवगीतों में अप्रतिम, अछूते बिम्बों की रचना की है –

'ईख–सी गाँठदार उँगली।'
'दुबक गई चिड़िया पत्तों की फटी रजाई में।'
'धान की बाली जहाँ अखबार हो जाए।'
'बेटी–सी सुंदर हरियाली पकड़ उँगलियाँ चलती।'
'तालाबों में आँख मलती जग रही हैं मछलियाँ।'
'सुख पहनकर नाचती थी रात में कजरी।'
'शिशु की पहली गर्म साँस जैसी अगहन की धूप।'
'आँख मलते धुँआए खपरैल।'
'आँचल में हैं फूल–गीत ईंगुर की लाली के।'

आज के पूँजीवादी कठिन समय में हम अपनी अस्मिता के संकट से जब गुजर रहे हैं हमारे असंगठित प्रतिरोध की आवाजें बिखरी हुई हैं। हमारी मानवीय भावनाओं को सम्पत्ति के रूप में बाजार अपना रहा है। हम वैश्विक दूकानों की चीज होते जा रहे हैं। इस संयुक्त संकट को हम रचनाओं में अनुभूतित कर पा रहे हैं। कविता या नवगीत यथार्थ और अनुभव से आगे चलता है। हमारी अंतःवृत्ति सृजनात्मक रूप में किसी भी सत्ता की प्रतिपक्ष होनी चाहिए। शान्ति सुमन सावधान कवयित्री हैं। इनकी रचनाओं में प्रेम, वियोग, स्वाभिमान, संघर्ष सभी का समय निश्चित है। इनकी रचना सहज और कठिन दोनों रास्तों से प्रशस्त हुई है। सहज में इनका स्वाभाविक मन है। कठिन में इनकी प्रतिबद्ध सोच है। जिन रचनाओं में मन और सोच का एकाकार हुआ है वे उल्लेखनीय बन पड़ी हैं। जहाँ रचना शिल्प में शिथिल हुई है इन बिम्ब–प्रतीकों ने उसे कथ्य के साथ उल्लेखनीय बना दिया है। शान्ति सुमन अपने मूल स्वभाव से आधुनिक समकालीन नवगीत की ही कवयित्री हैं। इस कवयित्री ने मध्यम वर्ग के जीवन में शीत और घाम दोनों को जिया है। इनमें बादल और अग्नि दोनों का संयोग है। ये वसंत–फागुन में करहाई भी हैं। अपने जीवन के कठोर यथार्थों का सामना चुनौती के साथ किया है। अपनी अनुभूति को शब्दों में नवगीत के रूप में जिया भी है।

आज की कविता भाषा के ताप में तप रही है। वहाँ जल और जल

की शीतलता से परहेज किया जा रहा है। अग्नि दाहक है वहीं जल शीतल। किन्तु जल के उफान से अग्नि पराजित है। कविता की एक ताकत भाषा भी है। भाषा–बोली जब शब्द में उतरती है तब वह एक रूप ग्रहण करती है। वह रूप सृजन के जीवन का रूप होता है। डॉ0 शान्ति सुमन के सृजन में भाषागत शीत–ताप दोनों हैं। यही कारण है कि वे विश्वसनीय सृजन कर पायीं।

आज का सृजन–समय लेन–देन का समय है। नेतृत्व और अनुनयन का समय है। शान्ति सुमन इसमें नहीं समा पाईं। हर कवि की भाषा में कुछ अपनी विशेषताएँ होती हैं जो ठीहे या नेतृत्व से नहीं आतीं। शान्ति सुमन की अपनी भाषा–विशेषता है, अपनी शैली है। अपना प्रतीक विधान है। लोक–सम्पृक्त, देशज बोलों की अंतर्ध्वनियों की अनुगूँज अगहन की धूप की तरह मोहक है, नशीली है। कविता की उत्तेजना ठहरती नहीं, जबकि शांत स्थिरता भीतर तक उतरती है। भाषा का चमत्कृत रूप भी उत्तेजित क्षण सा ही है जो बार–बार पढ़ने पर घिसा सा अनुभव होने लगता है। देवेन्द्र. कुमार, नईम, ओम प्रभाकर, माहेश्वर तिवारी की नवगीत कविताएँ अचानक ही भीतर उतर जाती हैं। नई कविता के एक समय के उत्तेजक कवि धूमिल और कुँवर नारायण पर विचार करें तो कुँवर नारायण आज भी हैं लेकिन धूमिल बहुचर्चा के बाद भी दृश्य–पटल से गायब क्यों हैं ? सुमन जी भाषा से धनी हैं। ये जब भी उत्तेजित हुई हैं, रचना अपने आकार से छोटी हुई है। आज जीवन–मूल्य. तेजी से बदल रहे हैं। अवसरवादिता, भ्रष्टाचार सांस्कृतिक रूप ले रहा है। शासन की विरूपताओं से देश और जन साँसत में है। इसका क्षोभ लेखन में जरूरी है। हमारे लेखन का सरोकार मनुष्य से मनुष्येतर होने की कोशिश है जिसमें विचार और अनुभूति का सघन संबंध हो। सच्ची कविता यह कर रही है। कविता प्रगतिशील होती है, वह वैचारिक हथियार नहीं हो सकती। शान्ति सुमन शायद बेमेल यात्रा से अब घर (नवगीत) वापसी में हैं।

स्मृतिहीनता से निकल कर ही हमारा सर्जक कुछ पा सकता है। कुछ दे सकता है। नवगीत में हमारा अतीत, हमारी परंपरा रहनी ही चाहिए। डॉ0 शान्ति सुमन हमारी सहयात्री हैं। यह आलेख भी एक कवि का है आलोचक का नहीं।

■

जनपक्षधर कला की ऊँचाइयों को नापते हुए शान्ति सुमन के गीत

❑ महेन्द्र नेह

आज हम जिस दौर से गुजर रहे हैं, मैं इसे घनघोर अंधेरे और प्रतिक्रियावाद के नग्न–नर्तन के दौर के नाम से जानता–समझता हूँ। इस दौर में अँधेरे की ताकतें स्वयं को पुनर्संगठित ही नहीं कर रहीं, बल्कि वे उजाले की पक्षधर ताकतों पर गिरोहबद्ध होकर हमले भी कर रही हैं। वे हर सम्भव तरीके से भावों और विचारों की दुनिया में नित्य नये भ्रमों की सृष्टि करने में लगी हैं।

21वीं सदी का प्रभु–वर्ग इस बात से भली–भाँति परिचित है कि वह केवल हथियारों की ताकत से समूची दुनिया के अर्थतंत्र पर काबिज नहीं हो सकता। वह जानता है कि हथियारों के प्रतिरोध में स्वयं उनके अपने खेमे के लोग भी खड़े हो सकते हैं। हजारों–हजार वर्षों की गुलामी के विरुद्ध आजादी की एक सुदृढ़ परम्परा का भी निर्माण हुआ है, जो किसी भी तरह के प्रत्यक्ष उपनिवेशवाद को सहन नहीं कर सकती। अतः नव उपनिवेशवाद के प्रवर्तक हथियारों से अधिक अपनी नव उपनिवेशवादी सांस्कृतिक मुहिम पर भरोसा करते हैं। वे अपनी उत्तर आधुनिक सांस्कृतिक मुहिम पर अरबों–खरबों डालर व्यय करते हैं। वे धर्म, संस्कृति, जाति, भाषा, कला, साहित्य, संगीत, फिल्म के क्षेत्र में यथा–स्थितिवाद, तंत्र, मंत्र, नीलम, पुखराज, धन लिप्सा, हिंसा, सेक्स, लूटपाट के बाजार को गर्म करते हैं और जन–गण को उनकी अपनी संस्कृति से विच्छिन्न करके एक ऐसे मोहक वातावरण की सृष्टि करते हैं, जिसमें छद्म ही यथार्थ प्रतीत होता है और यथार्थ को हाशिये से भी विस्थापित कर दिया जाता है।

संस्कृति के अन्य अंगों के मुकाबले साहित्य और कला के क्षेत्र में प्रभु–वर्ग के हिमायती साहित्यकार–कलाकार बेहद बारीक तरीकों से अपनी मुहिम चलाते हैं। वे जानते हैं कि प्रेमचन्द ने अपने एक ऐतिहासिक उद्‌बोधन में कहा था कि साहित्यकार स्वभाव से ही प्रगतिशील होता है और सामाजिक परिवर्तन की मशाल लेकर आगे–आगे चलता है। वे इस कथन के सार तत्त्व को विरूपित करते हुए आत्म–ग्रस्त

लिप्साओं को युगीन सत्य के नाम से प्रचारित–प्रसारित करते हैं और जन–गण के सामूहिक विक्षोभ को अनदेखा करते हुए एक–दूसरे को कला व साहित्य की दुनिया का मसीहा घोषित करते हैं। बदले में प्रभु–वर्ग उन्हें रंगीन मीडिया, व्यावसायिक पत्रिकाएँ, पद, पुरस्कार, प्रकाशन और विदेश यात्राओं के तोहफे भेंट करता है, जिन्हें वे अपने जीवन की उपलब्धि बताते हुए जन–गण से दिनों–दिन न केवल विरत होते जाते हैं, अपितु जन पक्षधर–साहित्य का नामं सुनते ही उन्हें मितली सी आने लगती है।

लेकिन, प्रभुवर्गीय कला–साहित्य को चुनौती देने वाले साहित्यकारों व कला–कर्मियों द्वारा सृजित रचना कर्म की एक अंतर्धारा भी है, जो वर्तमान अँधेरे और प्रतिक्रियावादी वातावरण के जन–विरोधी चरित्र को भली–भाँति चीन्हती है और अपने युग के यथार्थ के प्रति एक द्वन्द्वात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए शोषित–पीड़ित जन के पक्ष में हस्तक्षेप करती है और मानव–मुक्ति का एक नया अध्याय रचती है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में हम जन पक्षधर धारा के समकालीन सृजन की अग्रिम कतारों में शामिल जिन रचना कर्मियों के नाम सम्मान के साथ ले सकते हैं, शान्ति सुमन उनमें से एक हैं। यह राय मेरी व्यक्तिगत धारणा या अनुभववाद से निर्मित नहीं हुई है, बल्कि हिन्दी के चेतना सम्पन्न पाठकों, समीक्षकों और समकालीन रचनाकारों के सामूहिक अभिमत ने इसे रूपाकार दिया है। यहाँ तक कि प्रभु–वर्ग के प्रच्छन्न मानस–पुत्र भी उनके सृजन की लोक–धर्मिता, भाषा–विधान, शिल्प और दृष्टि के कायल हुए हैं।

विगत में किसी एक साहित्यकार को केन्द्र में रखकर उसके रचनाकर्म की समुचित परख और मूल्यांकन की परंपरा काफी क्षीण रही है। इसके मुकाबले अभिनन्दन–ग्रंथों की परंपरा अधिक फलती–फूलती रही है। समय माँग कर रहा है कि न केवल अपने पूर्ववर्तियों बल्कि समकालीन रचनाकर्मियों के सृजन का भी पूरे वस्तुपरक ढंग से संकलन व मूल्यांकन किया जाये। खास तौर से उस दौर में जब एक समय के आधुनिक और 'नव' प्रवर्तक कहे जाने वाले चुके हुए लेखक–संपादक अपनी परित्यक्ता पत्नियों और प्रमोटेड लेखिकाओं के साथ सेक्स के किस्सों को पूरी ढीठता ओढ़कर लिख रहे हों और बाजार में बेच रहे हों।

दिनेश्वर प्रसाद सिंह 'दिनेश' द्वारा संपादित 'शान्ति सुमन की

गीत–रचना और दृष्टि' वस्तुगत ढंग से की गई समीक्षा और सामूहिक मूल्यांकन की दिशा में किया गया एक गंभीर व श्रमसाध्य प्रयास है। हिन्दी साहित्य में शान्ति सुमन ने एक नवगीतकार के रूप में अपने सृजन की शुरूआत की और शनैः–शनैः अपनी सृजनधर्मिता, मानवीय संवेदनाओं, लोकधर्मिता, लेखकीय जिम्मेदारी, जनपक्षधर चेतना और दृष्टि को निखारती हुई वे एक परिपक्व जनवादी गीतकार के सम्मानीय शिखर तक पहुँचीं। उनके तीन नवगीत संग्रहों, पाँच जनवादी गीत संग्रहों, एक मैथिली गीतों के संग्रह के अलावा नई कविताओं के संग्रह 'समय चेतावनी नहीं देता' और 'सूखती नहीं वह नदी', उपन्यास 'जल झुका हिरन' व आलोचना पुस्तक 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य' इस बात के प्रमाण हैं कि उन्होंने न केवल नवगीत की सीमाओं का अतिक्रमण किया बल्कि विधागत परिधि की जकड़न को भी तोड़कर अपने लेखन को विस्तार दिया है।

'शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि' में हिन्दी के समीक्षकों ने उनके गीतों की विकास–यात्रा का अपने–अपने दृष्टिकोण से विवेचन किया है। उनके नवगीतों और जनगीतों पर अलग–अलग अध्यायों में चिन्तन व विश्लेषण करते हुए अपने भिन्न मत व्यक्त किये हैं। इसके अलावा उनके व्यक्तित्त्व व आत्म–कथ्य के जरिये लेखिका का निजी संसार एवं उनके वैचारिक पक्ष को भी सामने रखा गया है।

पुस्तक में डॉ0 शान्ति सुमन के गीतों की पृष्ठभूमि और उनकी सृजन–प्रक्रिया पर भी विस्तृत आलेख हैं। समूचे हिन्दी गीतों के बीच उनके गीत अपनी किन खूबियों के कारण अपनी विशिष्ट पहचान बनाते हैं, इस सब पर भी खूब चर्चाएँ हैं।

उनके गीतों पर पचास से अधिक गीतकारों व समीक्षकों द्वारा लिखे गये विश्लेषणत्मक आलेख एवं समीक्षात्मक टिप्पणियाँ उनके सृजन के प्रति हिन्दी जगत की आत्मीयता और जिम्मेदारी को व्यक्त करते हैं। पुस्तक के अन्तिम अध्याय में डॉ0 शान्ति सुमन के संग्रहों से उनके प्रतिनिधि गीत भी प्रकाशित किये गये हैं, जिससे पाठक उनके गीतों का आस्वादन अपने ढंग से कर सके व अपनी राय कायम कर सके।

इस पुस्तक में शामिल समीक्षा–कर्म के कुछ द्वन्द्वों और पेचों को मैंने अपने स्तर पर खोलने की कोशिश की है। यह कोशिश शान्ति सुमन के

गीतों की जमीन, उनकी दृष्टि व विचारों की विकास यात्रा के बरक्स समीक्षकों की दृष्टियों व धारणाओं के द्वन्द्वों को जानने–समझने का उपक्रम भी है। यह तय है कि शान्ति सुमन के गीतों के बारे में मुकम्मल राय तो गीतों में गहरे डूबकर और उनमें से सार–तत्व ग्रहण करके ही बनाई जा सकती है, लेकिन सच्चाई का दूसरा पहलू यह भी है कि इस पुस्तक में छपे आलेख व समीक्षाएँ हमारी राय बनाने में बहुत मदद करते हैं।

मैं डॉ0 रेवतीरमण के आलेख से अपनी बात प्रारंभ करना चाहूँगा, वे लिखते हैं, "नागार्जुन की कविता को अमरता देने वाले मैथिल संस्कृति के उपकरण शान्ति सुमन के गीतों में भी सक्रिय हैं। .....शान्ति सुमन के भीतर गीत की संवेदना निश्छल है, अमिश्रित है। उनके भावावेश अलंकृत नहीं, स्वभावजन्य हैं। वे गीत रचने और उनकी सम्यक प्रस्तुति के लिए बनी हैं। संभव है जन–आंदोलनों का पीछा करने की प्रेरणा उन्हें उद्दाम युग चेतना से मिली हो।"

डॉ0 अरविन्द कुमार शान्ति सुमन के गीतों में निरन्तर उपस्थित ग्रामीण लोक चेतना को समकालीन यथार्थ चेतना से जोड़कर जिस तरह व्याख्यायित करते हैं, वह अपने आप में अद्‌भुत है। वे कहते हैं, "शान्ति सुमन के यहाँ गीत का मतलब सिर्फ प्रकृति या मौसम तक ही सीमित नहीं है, यह उनके भीतर रक्तबीज की तरह मौजूद है और यही रक्तबीज उन्हें निरन्तर उस गाँव की सरहद पर ले जाता है। शान्ति सुमन के यहाँ शब्द बोलते हैं, चाहे वे बिम्बों के रूप में हो या रूपक के रूप में। साथ ही उनमें एक प्रकृति बोलती होती है और होती है उसकी हरियाली, उसका सौन्दर्य। यहाँ तक कि रिश्तों की अकुलाहट में भी प्रकृति मौजूद है। वे कहते हैं – "अब तक शकुन्तला का मतलब रहा है कि रूप और शृंगार का एक युग्म, जहाँ कोमलवदना शकुन्तला दुष्यन्त की प्रेयसी बनती है, पर यहाँ की शकुन्तला का रूप बिल्कुल अलग है – ***"मुड़े हुए नाखून/ईख सी गाँठदार उँगली/टूटी बेंट जंग से लथपथ/खुरपी सी पसली"*** .....नागार्जुन के यहाँ भी ताल मखाने के तालाब हैं, पर तालाब के पानी में धंसकर कथरी ओढ़े ताल मखाने चुनती, मुड़े नाखूनों और गाँठदार उंगलियों वाली शकुन्तला नहीं है। आप सोच सकते हैं कि गीतकार के लिए इस रूपक को गढ़ना कितना कठिन रहा होगा। आप यह भी सोच सकते हैं कि शान्ति सुमन

की संवेदना का स्तर क्या है ?"

'शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि' में शामिल गीतकारों के बीच नवगीतकार शान्ति सुमन और जनवादी गीतकार शान्ति सुमन को लेकर जो द्वन्द्व उपस्थित हुआ है, उसे समाज की वर्गीय संरचना, लेखकों की वर्गीय दृष्टि और शांन्ति सुमन की वर्गीय दृष्टि को ढंग से समझे बिना जानना कठिन है। जनवादी गीतकार नचिकेता जहाँ शान्ति सुमन के प्रारम्भिक गीतों में मध्यवर्गीय निराशा, घुटन, दिशाहीनता, यथास्थितिवाद और ढुलमुलपन का चित्रण मानते हैं, लेकिन वेयह भी कहते हैं कि "परछाई टूटती" के गीतों तक आते–आते शान्ति सुमन के नवगीतों पर से मध्यवर्गीय निराशाबोध और ढुलमुलपन की काली परछाई भी शनैः शनैः हटती दिखलाई देती हैं।" राम निहाल गुंजन की तो स्पष्ट मान्यता है कि "नवगीत वास्तव में स्वांतः सुखाय और वैयक्तिक आशा–आकांक्षा तथा कलावाद को ज्यादा प्रश्रय देते हैं, यह बात अलग है कि कभी–कभी उनमें सामाजिक यथार्थ की जाने–अनजाने अभिव्यक्ति दिखाई पड़ जाती है।" उनका मानना है कि शान्ति सुमन के गीतों में नवगीत के संस्कार देर तक पीछा करते रहे, लेकिन अंत में वे कहते हैं कि "शान्ति सुमन के ऐसे ही आस्थावादी गीतों के जरिये उनके जनवादी चिन्तन और जनपक्षधरतापूर्ण लेखकीय दायित्व की सूचना मिलती है। इस दृष्टि से विचार किया जाये तो उनके समग्र गीत साहित्य का उचित मूल्यांकन जरूरी प्रतीत होता है।"

मेरी अपनी मान्यता है कि शान्ति सुमन जहाँ "मौसम हुआ कबीर" और "एक सूर्य रोटी पर" के गीतों में मौजूद जन–करुणा, जन–बोध और जन पक्षधर कला की ऊँचाइयों को नापती हुई जनवादी कला कर्म के नये द्वार खोल रही होती हैं, वहीं उनके नवगीतों को भी एक लेखक की क्रमिक विकास–यात्रा के रूप में देखा जाना चाहिए। उनके अनेक नवगीत ऐसे हैं, जिनमें उनके परवर्ती जनवादी गीतों के बीज अपनी पूरी आभा के साथ उपस्थित हैं।

लेकिन हमारी साहित्यिक दुनिया जिस मध्यवर्ग से बनी है, उसमें ऐसे लेखक–समीक्षक भी हैं, जो भले ही शोषक–वर्ग से नाभिनालबद्ध न हों लेकिन पूँजीवाद मात्र एक अर्थ–तंत्र ही तो नहीं है, वह एक सुसंगठित विचारधारा भी है, जो हमारे उन लेखकों–समीक्षकों के जेहन

में साँप की तरह कुंडली मार कर बैठ गई है। वे अपनी ईमानदारी के अंतर्गत भले ही अपने विचारों को सौन्दर्य की कसौटी मानते हों, लेकिन वस्तुतः वे जाने–अनजाने जन पक्षधर साहित्य और रचनाकर्मियों का मूल्यांकन करते समय विष–वर्षा ही कर रहे होते हैं।

"शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि" में ऐसी कई समीक्षाएँ शामिल हैं जो न केवल पूर्वाग्रहों से ग्रस्त लगती हैं, बल्कि अपनी वैचारिक व कलात्मक दरिद्रता का भी फूहड़ प्रदर्शन करती हैं। इस दृष्टि से नवगीतों के शीर्ष समीक्षक कहलाने वाले डॉ0 सुरेश गौतम के आलेख को पढ़ना और उनके मंतव्यों को समझना इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि वे एक ओर डॉ0 शान्ति सुमन के नवगीतों की श्रेष्ठता स्थापित करने में कोई कसर नहीं छोड़ते, वहीं उनके जनवादी गीतों में "मार्क्सीय दृष्टि का उथला आवेग" आरोपित करते हुए उन्हें कोई संकोच नहीं होता। वे एक ओर लिखते हैं कि गीतों के क्षेत्र में शान्ति सुमन का कोई पासंग नहीं है, वे पहले उनके जनवादी गीतों की पृष्ठभूमि और उनकी सामर्थ्य की प्रशंसा करते हैं, इसके पश्चात् बेहद बारीकी से वे लेखिका के नवगीतों के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए बताते हैं कि "इस जनवादी संघर्ष को जारी रखने के और ताकत देने के लिए नवगीत के पल बहुत महत्वपूर्ण हैं। हर समय संघर्ष के लिये प्रतिबद्धता अलग चीज है, भुजाओं और विचारों में बजते नूपुरों की खनक बिल्कुल अलग। भुजाओं का नूपुर–खनक से मेल ही वस्तुतः वे आत्मचेता स्थितियाँ हैं जो आदमखोर हवाओं को भी बाँध लेती हैं।" यहाँ तक लगता है कि वे नवगीत के सौन्दर्यशास्त्र को जनवादी गीतधारा के सहायक उपकरण के रूप में व्याख्यायित कर रहे हैं, लेकिन कुछ देर बाद ही उनके संयम का बाँध टूट जाता है। जब डॉ0 शान्ति सुमन द्वारा उनके नवगीतों में मौजूद सीमाओं को, बल्कि नवगीत की सीमाओं को भी रेखांकित करते हुए स्वयं की आत्मालोचना करती हुई जनवादी गीत सृजन के अपने सोपान के प्रति अपना गहरा विश्वास और प्रतिबद्धता व्यक्त करती हैं तो डॉ0 सुरेश गौतम "नवीय रचना शास्त्र" की सैद्धांतिकी गढ़ते हुए कवयित्री और मार्क्सवादी दृष्टि दोनों के प्रति आक्रामक मुद्रा धारण कर लेते हैं। वे लिखते हैं – "जनवादी गीत का नेतृत्व हथियाने की साहित्यिक उठक–पटक में कवयित्री स्वयं ही अपने नवगीतों को जनवादी गीतों के समक्ष बौना बना देती हैं जबकि इनके नवगीत व्यक्ति और समाज के

जीवन्त बिम्ब बन कर उभरे है।" वे आगे कहते हैं – "मार्क्सीय सिद्धान्तों को दिमाग में रखकर पोटली को कुछ खास शब्दों के माध्यम से इधर–उधर करते रहने से गीत प्रभावशाली नहीं हो जाते। उसे जनवादी गीत कहने का संतोष यदि कवयित्री को सुकून देता है तो और बात है। सैद्धान्तिक दुराग्रह की चौखटों में कैद इस प्रकार की दृष्टि ने कवयित्री की रचनात्मकता को बाधित किया है।"

अपने लम्बे आलेख में डॉ0 गौतम बार–बार शान्ति सुमन के नवगीतों के लोक रंग, उनकी ताजगी और हृदय छूने के रोमानी स्पर्श की प्रशंसा करते थकते नहीं हैं। यहाँ तक कि आलेख को समेटते–समेटते वे तटस्थ मुद्रा में आने का भी रोचक अभिनय करते हैं। वे नवगीत के प्रवर्तक डॉ0 शम्भूनाथ सिंह आदि पर डॉ0 शान्ति सुमन के नवगीतों को 'नवगीत दशकों' में शामिल न किये जाने के लिए उनके विरूद्ध शिविरबद्धता और गुटपरस्ती का आरोप लगाते हैं तो दूसरी ओर वे कहते हैं – "चौखट का घुन लगा एक हिस्सा यदि राजेन्द्र प्रसाद सिंह, शम्भूनाथ सिंह हैं तो दूसरा शान्ति सुमन और नचिकेता हैं।" लेकिन साथ में एक पंक्ति और जोड़ देते हैं – "इनको सावन के सूरदास की तरह सभी तरफ जनवादिता की हरियाली ही हरियाली दिखाई देती है।"

डॉ0 सुरेश गौतम जैसे वरिष्ठ समीक्षकों से, मैं एक बार अपने समस्त दुराग्रह छोड़कर, शोषण से लेकर अज्ञान तक मुक्ति की राह दिखाने वाले, मानवीय करुणा और गरिमा से युक्त–मार्क्सवादी विचारों का पारायण करने की धृष्टता तो नहीं कर सकता लेकिन इतना जरूर कह सकता हूँ कि वे नवगीतों में वर्णित आम्रकुंजों, खंड–खंड स्वप्नों की त्रासदी, खुले बाजूबंदों, परछाइयों में गमकती यादों, धुँआ–धुँआ आस्थाओं, पितरों के गौरी गणेश और मोरपंखिया शामों में जीवन का जो परमानन्द ढूँढते हैं, वह और कुछ नहीं मध्यम व उच्च वर्गीय आकांक्षाओं की ही मोहग्रस्त प्रतिच्छवियाँ हैं। हमारे गाँव–देश के मेहनतकशों की जिन्दगी उनसे एकदम भिन्न हैं, जिसे शान्ति सुमन अपने गीतों में इस तरह व्यक्त करती हैं –

"फटी हुई गंजी ना पहने, खाये बासी भात ना
बेटा मेरा रोये, माँगे एक पूरा चन्द्रमा

पाटी पर वह सीख रहा
लिखना ओ–ना–मा–सी
अ से अपना, आ से आमद
धरती पूरी माँ–सी
बाप को हल में जुता देखकर सीखे होश संभालना।''

डॉ0 शान्ति सुमन के गीतों के माध्यम से मैं उत्तर आधुनिकतावादी एवं यथास्थितिवादी पुरोधाओं से विनम्रतापूर्वक अनुरोध करना चाहूँगा कि गैर जनवादी चिन्तन–धाराओं के पास टूटन, निराशा, हताशा, अलगाव घृणा और शंकाओं की टूटी पताकाओं के आर्त्तनाद और विकल्पहीनता के अलावा शेष क्या बचा है ? इसके विपरीत जनवादी कला और साहित्य को केवल संघर्षों तक सीमित करके देखना एकांगी दृष्टिकोण है। समूची प्रकृति, जीवमात्र एवं मनुष्यता के प्रति करुणा, प्रेम और लोक–संवेदनाएँ, जनवादी सृजनकर्म और सौन्दर्य दृष्टि में जितनी व्यापकता के साथ अंतर्निहित हैं, यह तो वही समझ सकता है जो यथास्थितिवाद की जकड़न से स्वयं को मुक्त करे और बदलते हुए समय की धड़कनों को सुन सके।

अंत में, मैं डॉ0 मैनेजर के वक्तव्य के साथ अपनी बात समाप्त करना चाहूँगा – ''खुशी की बारत है कि कई दूसरे गीतकारों की तरह शान्ति सुमन की संवेदनशीलता विचारधारा की आँच से सूख नहीं गई है। इसलिए उनके गीतों में विभिन्न मानवीय जन, कठिन जीवन जीते हुए भी अपनी मानवीयता की रक्षा करता है। विचारधारा की सारी लड़ाई समाज को सचमुच मानवीय बनाने की ही लड़ाई है।''

■

शान्ति सुमन के गीत : गीतधर्मिता का विस्तार

❑ वीरेन्द्र आस्तिक

विख्यात कवयित्री डॉ0 शान्ति सुमन के नाम से मैं सन् 1984 से परिचित हूँ। तब नवगीत के संस्थापक कवि श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह को कानपुर की कई संस्थाओं से आमंत्रित किया था। उनका संभाषण मेरे लिए नया अनुभव था। नवगीत के इतिहास और उसकी प्रवृत्तियों पर उनके विचार सुनने के लिए कानुर के प्रबुद्ध श्रोता और रचनाकार उमड़ पड़े थे। मेरी उनसे कई गोष्ठियों में नजदीकियाँ बढ़ीं, कई बार तो पूरी रात बहस–मुबाहिसों में कट गई। उन्हीं से पहली बार मैंने शान्ति सुमन जी का नाम सुना तथा नचिकेता और सत्यनारायण आदि अन्य नवगीत प्रतिभाओं के बारे में भी जानकारी मिली। सुमन जी के विपुल साहित्य में सन् 2009 में मुझे दो पुस्तकें पढ़ने को मिली, एक – नचिकेता द्वारा प्रेषित एवं संपादित 'पंख–पंख आसमान' और दो – सुमन जी द्वारा प्रेषित एवं श्री दिनेश (दिनेश्वर प्रसाद सिंह 'दिनेश') से संपादित कृति 'शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि'। यों विभिन्न पत्रिकाओं में उन्हें पढ़ता रहा हूँ, क्योंकि उनके नवगीत पाठ की दृष्टि से मुझे प्रेरित करते रहे हैं।

विद्वानों ने सुमन जी की रचनात्मकता को कथ्यात्मक कथन के स्तर पर दो वर्गों में – नवगीत और जनगीत में विभाजित करने का प्रयास किया है। उनकी रचनात्मक प्रक्रिया में एक दूसरा तथ्य भी गोचर होता है, जहाँ गीतधर्मिता अपनी सीमाओं का विस्तार करती है। उक्त दोनों तथ्यों के ताने–बाने से इस आलेख का विस्तार हुआ है। मेरा मानना है कि नवगीत शुरू से ही अपने कथ्य में जनबोधी रहा है। सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर जैसे–जैसे विद्रूपताएँ और बर्बरताएँ बढ़ती गईं, नवगीत का स्वर तेजतर और सहजतर होता गया। रचनाकार के समक्ष घर–समाज और उसके समय की जो स्थितियाँ होती हैं उनके बरक्स सबसे अहम बात यह होती है कि वह उन सारे घटनाक्रमों को किस दृष्टि से देख पाता है तथा उसके बाद उन्हें अपनी रचना में किस स्तर तक मूल्यांकित कर पाता है।

शुरूआती दौर में नवगीत के नाम से कथ्य और भाषा के स्तर पर जो जमीन तोड़ी गई वह लोक और ग्राम्यांचलिकता के अति निकट थी, क्योंकि वहीं से भाषा की नई जमीन तोड़ी जा सकती थी। लेकिन बहुत जल्दी ही नवगीत ग्रामबोध के साथ–साथ शहरी मिजाज और आर्थिक–राजनीतिक संत्रास आदि को अभिव्यक्ति का आधार बनाकर विकास करने लगता है। ऐसा नहीं है कि सारे नवगीतकार एक ही प्रकार के गीत लिख रहे थे। छठे–सातवें दशक के गीतों में 'वंशी और मादल' से प्रभावित गीत भी हैं और निरालावादी भी। विशेष रूप से ऐसे गीत भी हैं जो नई कविता के बिम्बादि से कुछ ज्यादा ही प्रभावित हुए। वहाँ बिम्बों का इतना आधिक्य है कि रचनाकार स्वयं कहने लगे – 'नवगीत होने के लिए बिम्ब जरूरी शर्त है। शायद यही वह बिन्दु है जहाँ से डॉ0 शान्ति सुमन के नवगीतों (ओ प्रतीक्षित, 1970) की शुरूआत होती है।

यह बिम्बवाद अकारण नहीं था। मेरी दृष्टि में ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि राष्ट्र और उसकी गरीब जनता को उसके मानविक अधिकारों से वंचित कर अधिनायकवादी ताकतों ने उसको हताशाओं, अवसादों, कुंठाओं और स्वप्नभंग आदि के अंधेरे में झोंक दिया। मजबूरन भय और दहशत से आक्रांत तत्कालीन जनता को और रचनात्मक अभिव्यक्ति को बिम्ब की शरण में जाना पड़ा, जहाँ उसका स्वातंत्र्यबोध और उसका खुलापन दबकर आहत हुआ। डॉ0 सुमन की पहली कृति 'ओ प्रतीक्षित' के अधिकांश गीतों में उक्त परिवेशजनित कोलाजी भाषा का संस्कार मिलता है –

"औंधे कजरौटे–सा आसमान
फटे आँचल–सी नदी
पथराए बरगद के नैन
ठहरी–सी कोई सदी
मौसम ने फेंके पाँसे
मछली छपी–छपी
बरफों के फूलों पर ठहरी भोर

इस स्थिति को लाने में अज्ञेयवादी भाषा भी एक कारण है। नवगीत अज्ञेय की अभिजातीय भाषा से प्रभावित रहा है। इस सत्य से इनकार किया नहीं जा सकता। सुविधावादी और अभिजात कवच–शैली के

अज्ञेय हमेशा राजनीतिक हलचलों और उठापटक से महफूज रहने में माहिर थे। परन्तु यह स्थिति ज्यादा दिनों तक रह नहीं सकी। जैसे–जैसे जनान्दोलन सक्रिय होते हैं, जन चेतना जाग्रत होती है, वैसे–वैसे नवगीत में जन–तत्त्व कुछ ज्यादा ही खुलेपन के साथ प्रवेश पाता है।

आज की रचनात्मकता में समय सापेक्ष जनोन्मुखता है तथा उसमें कहन के स्तर पर संवादशीलता और कथात्मकता भी है और है आवश्यकतानुसार बिम्ब–प्रतीक आदि का संतुलन। अर्थात् समय के तकाजे को देखते हुए अब गीत–नवगीत और जनगीत एकमेक हो चुके हैं। अब उसे कोई भी गीत कहिए, क्या फर्क पड़ता है। सुमन जी की अनेक गीत संग्रहों की – 'खुशबू का आखर', 'एक सूर्य रोटी पर', 'बेटा मांगे चन्द्रमा' आदि अधिकांश रचनाएँ उक्त कसौटी पर खरी उतरती हैं। इन रचनाओं में यदि बिम्ब नवगीतीय है तो कथ्य जनवादी। वास्तव में रचनाकार न नवगीत लिखता है न जनगीत। रचना, रचनारकार की दृष्टि और समय की टकराहट में अनुभूति का विस्तार होती है। यदि समय गतिशील होगा तो रचना भी गतिशील होगी। डॉ0 विजेन्द्र नारायण सिंह ने ठीक ही कहा है – प्रतिभा की एक पहचान यह है कि वह विकसनशील होती है। डॉ0 सुमन के गीत इस तथ्य के साक्ष्य हैं। मेरी नजर में (जैसा मुझे महसूस हुआ) 'ओ प्रतीक्षित' में कच्चे अनुभवों की गंध है, जैसे दूधिया मन से बिम्ब शब्दों में भावों के रंग बिखर गए हों। नवगीत का यह क्राफ्ट आगे चलकर 'परछाईं टूटती' में कथात्मक आकार ग्रहण करने लगता है। 'सुलगते पसीने' और 'पसीने के रिश्ते' गीत संग्रहों के शीर्षक ही बोलते हुए हैं। यहीं से शुरू होती है, सच्ची सोद्देश्यता जो नवगीतों को जनबोधी और जनवादी बनाते हुए दिशाबद्ध करती चलती है। यही रंग बाद के संकलनों में और गाढ़ा हुआ है। वस्तु–तत्त्व संवादशील और कथात्मक आवरण पहन कर एकरेखीय हुए हैं –

'पहली बार ट्रेन में बैठी, पहली बार शहर आई
कोशी के कछेर का अपना, घर आँखों में भर लाई
खोज रही है खपरैलों पर, पसर गई लौकी की लतरें
गिरने को दीवार मगर है, थाम रही छानों की सतरें
दूब–धान की जगह जानकी आँचल में ही पियराई

रेखांकन योग्य एक तथ्य यह भी है कि कवयित्री नवगीत के इतिहास में अनेक कथ्य–बिम्बों के प्रथम प्रयोक्ता के रूप में प्रसिद्ध है। मेरी दृष्टि में परवर्ती गीतों की जमीन के लिए ऐसे गीत बीज–गीत की श्रेणी में आते हैं। सन् 1970 की समयावधि में इस रचनाकार की खोजपूर्ण वैचारिकता और कल्पनाशीलता बेमिसाल है – ***'माँ की परछाईं सी लगती/गोरी दुबली शाम, पिता सरीखे दिन के माथे/चूने लगता घाम' या 'जब भी कोई बच्ची, वर्षा में नहाती है/घर की याद आती है।'***

सुमन जी की रचना प्रक्रिया में एक दूसरा तथ्य भी गोचर होता है, जहाँ गीतधर्मिता अपनी सीमाओं का विस्तार करती है अर्थात् उसने बनी बनाई सीमा (मानक, सिद्धांत आदि) का अतिक्रमण किया है। रचना प्रक्रिया की दृष्टि से पहले प्रकार की वे सीमाएँ हैं जो विषयवस्तु को घेरने का प्रयास करती हैं। प्रायः यह कहा जाता है कि गीत एक कोमल विधा है। अब यदि वह कोमल है तो दुनिया के जटिल यथार्थ का भार नहीं उठा सकती। मेरी दृष्टि में यह ऐसा ही है कि स्त्रियाँ कोमल होती हैं तो वे फावड़ा और कुदाल आदि नहीं चला सकतीं। बावजूद इसके स्त्रियाँ कुदाल चलाती रही हैं और तलवारें भांजती रही हैं और आज भी भांज रही हैं। एक दूसरा स्त्रैण जुमला है कि गीत को विधा प्रधान नहीं होना चाहिए, उसमें चेतना के प्रवेश से उसकी रागात्मकता आदि नष्ट होती है। बावजूद इसके गीत–नवगीत में भाव–चेतना या राग संवेदना आदि का समाहार होता है। नवगीत ने अपने दरवाजे वैचारिक चिंतन के लिए शुरू से ही खोल दिए थे। यहाँ तक कि अनेक शब्दों और विषयों को वर्जनीय माना जाता रहा है कि कहीं उसका शील भंग न हो जाए। हकीकत यह है कि नवगीत--जनगीत उक्त प्रकार के कठघरों से बाहर निकलने की जद्दोजहद में स्वयंको संस्कारित करते रहे हैं। डॉ0 सुमन के विचार भी कमोबेश कुछ इसी अंदाज में है – ''नवगीत में अभिजात बोध (वही अज्ञेयवादी भाषा संस्कार) शुरू से ही शामिल था, फलस्वरूप एक 'मैनरिज्म' का शिकार हुआ, किन्तु जब सड़कों पर निकल आने की जरूरत हुई, नवगीत अपनी चहारदिवारी से बाहर भी आया। (प्रेसमेन : 11 जुलाई 2009)।

किन्तु समय की धड़कन के साथ–साथ चलने वाला यह नवगीत प्रायः उस जड़ीभूत आलोचना का शिकार होता रहा जो स्वयं खेमेबाजी

और पूर्वग्रहों की शिकार थी, जो कविता और नवगीत तथा नवगीत और जनगीत के बीच दीवार खड़ी करती रही और आज भी बदस्तूर क्रम जारी है। समकालीन नवगीत में यह कसक आज भी है कि उसकी आलोचना सही परिप्रेक्ष्य में कभी नहीं हो सकी। इस दर्द को डॉ0 सुमन ने भी अपने तरीके से सहा है – 'जिस तरह धूप मुट्ठी की पकड़ में नहीं आती उसी तरह गीत की संवेदना भी सबकी पकड़ में नहीं आती (वही प्रेसमेन)।' गीत की संवेदना और आलोचक के बीच का फासला क्यों बढ़ता गया है, यह विचार का मुद्दा है। सच्चाई यह भी है कि गीत की रचना प्रक्रिया पारम्परिक व्याकरण की सीमा में नहीं अँट पाती। आनुभूतिक स्तर पर वह जितनी जटिल होती गई है उतनी ही संवेदनशील भी हुई।

रचना प्रक्रिया की दृष्टि से नवगीत के रूपाकार (फॉरमेट) पर भी सवाल खड़े किए जाते हैं। 'विधा' जैसे शब्द की ओट में उस पर हमले किए जाते रहे हैं, यह दूसरे प्रकार की जकड़बंदी है।

दरअसल काव्य का विकास 'प्रयोग' आधारित होता है। प्रयोग तत्व चाहे अघोषित रहा हो पर उसकी विद्यमानता पूर्ववर्ती युगों में भी देखी जा सकती है। नवीनता का उद्घोष प्रयोग द्वारा ही संभव होता है। एक सही नवगीत प्रयोग का संवर्द्धित रूप होता है। प्रयोग करते समय मुख्यतः दो बातें ध्यान में रखनी होती हैं – समय सापेक्षता और संप्रेषणीयता। हालांकि गीत की संप्रेषणीयता जगजाहिर है, फिर भी नवगीत उक्त दोनों कसौटियों पर स्वयं को निखारने में सचेष्ट रहा है। उधर आधुनिकतावाद के दौर में और समकालीनता के संदर्भ में संप्रेषणीयता तथा उसकी प्राथमिकता काव्य की केन्द्रीय विशेषता के रूप में रही है। मैं इन सारे तथ्यों को डॉ0 सुमन के नवगीतों के संदर्भ में कह रहा हूँ। गौरतलब है कि उनके गीतों में 'प्रयोग' स्वाभाविक ढंग से जज्ब हो सके हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि काव्य जगत में नवगीत अकेला वह काव्य रूप है जिसने सांस्कृतिक चेतना की रक्षा करते हुए प्रयोग के स्तर पर पिछले सारे मानको–पद्धतियों का परिशोधन किया है। प्रयोग न होता तो गीत से नवगीत की शाखा न फूटती। सन् 60 के बाद श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह, वीरेन्द्र मिश्र, रवीन्द्र भ्रमर, डॉ0 शंभुनाथ सिंह, डॉ0 केदार नाथ सिंह, मन्नूलाल शील, ओम प्रभाकर, नईम, शिव बहादुर सिंह भदौरिया, डॉ0 देवेन्द्र शर्मा इन्द्र, डॉ0 शान्ति सुमन, श्री नचिकेता और

उमाकांत मालवीय जैसे रचनाकारों ने नवगीत को उक्त कसौटियों पर स्थापित किया है। इन नवगीतकारों का कार्य केवल नवगीत रचना तक सीमित नहीं रहा है, मूल्यांकन को लेकर आलोचना के क्षेत्र में इन्होंने हस्तक्षेप भी किया है।

व्यावहारिक रूप में विधा शब्द विभाग या प्रकारका बोध कराता है यानी साहित्य के प्रकार। विधा शब्द में साहित्य के किसी भी प्रकार के मूल उद्‌गम (रूट) का बोध निहित है, जैसे छन्दबद्ध कविता और छन्दमुक्त कविता। यह स्वाभाविक–सा तथ्य है कि हम काव्य को पढ़ते समय विधा नहीं पढ़ा करते। विधा पर अटकेंगे तो वह हमें काव्य के इतर अपनी ऐतिहासिकता का बोध कराने लगेगा, जबकि काव्य इतिहास के बाहर का बोध होता है। वह इतिहास का सहारा लेते हुए वर्तमान को क्रियाशील कर सकता है और भविष्य में छलाँग लगा सकता है। दूसरे शब्दों में कहें तो एक सही गीत कविता सहृदय को विधागत विधि–विधान तक पहुंचाने की फुर्सत ही नहीं देता, जबकि कुछ ऐसे भी रसज्ञ होते हैं जिनका रस बाल में खाल ढूँढ़ना ही होता है।

रूपाकार परिवर्तनशील हुआ करते हैं जैसे प्रयोगवादी कविता, नई कविता आदि या जैसे छायावादी गीत, नवगीत आदि। कुछ रूपाकार (छन्द) अपरिवर्तनीय भी होते हैं जैसे दोहा आदि। दरअसल नवगीत छन्द से अधिक लय आधारित होता गया है। उसके मीटर आदि कथ्यवस्तु आधारित स्वनिर्मित होते गए। जाहिर है कि उसकी पाठ–विधि और अर्थ संप्रेषण आदि भी परिवर्तनशील होंगे। डॉ0 सुमन के गीतों में उक्त प्रकार के प्रयोग–परिवर्तन देखे जा सकते हैं, जैसे 'रानी का गीत', 'एक सूर्य रोटी पर' और 'अकाल में बच्चे'। इन युग–सापेक्ष गीतों की गति और यति परम्परित नहीं है।

कहना चाहूँगा कि गेयता और संप्रेषणीयता की कसौटी पर नवगीत ने कथ्य–वस्तु और लय–छन्दादि के स्तर पर अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करके सीमाओं का विस्तार किया है। ऐसा करके प्रकारान्तर से उसने अपनी विधा मूलक शक्ति का परिचयात्मक बोध कराया है। क्या यह सही नहीं है कि सभी विधाएँ (कहानी, डायरी, उपन्यास आदि) विधाधर्मी होते हुए भी अपनी सीमाएँ तोड़ती हैं। व्यक्तित्व का निर्माण तभी संभव हो पाता है जब व्यक्ति की संघर्षशैली अनेक आयामों में दूर तक विस्तार कर पाती है। 25–30 साल पहले आम पाठक को तत्कालीन

नवगीत अर्थात्मक दृष्टि से जितना कठिन लगता था, आनुभूतिक तौर पर आज उतना ही सहज संप्रेषणीय और हृदयस्पर्शी। नवगीत रचना प्रक्रिया संबंधी कुछ उक्त प्रकार की विशेषताओं का जिक्र यहाँ इसलिए जरूरी समझा गया क्योंकि डॉ0 सुमन के नवगीत–जनगीत (जितने मुझे पढ़ने को मिले हैं) उसके हकदार हैं। सुमन जी स्वभाव से कल्पनाशील हैं और खूब कल्पनाशील हैं। विचार (या विचारधारा) की मौलिकता की आधार पीठ होती है कल्पना शक्ति। ऐसा मेरा समझना है। रचनाकार में विचार के प्रति भी संवेदना होती है क्योंकि विचार रचनाकार द्वारा ही प्रसूत होता है। संवेदना विचार से अलग नहीं है। सुमन जी की रचनात्मकता में उक्त विकासात्मक प्रवाह है अर्थात् उनकी रचनाओं में बुद्धि और हृदय तत्वों का समाहार स्वभावगत है। जबकि अनेक आलोचक कविता और नवगीत को क्रमशः बुद्धि प्रधान और हृदय प्रधान सिद्ध कर दोनों के बीच दीवार खड़ी करते रहे हैं।

निष्कर्षतः डॉ0 शान्ति सुमन की रचना दृष्टि आम आदमी की संघर्षात्मक (अन्तःबाह्य) प्रवृत्तियों एवं मानसिक उद्वेलन का समंजित योग है। उनकी विचारधारा में प्रतिरोध है तो संस्कृति की गहरी पैठ भी है। मैं अपनी बात श्री नचिकेता के विचारों से स्थगित करना चाहूँगा। ''डॉ0 सुमन स्त्री रचनाकारों में नवगीत–जनगीत के सर्वोचच शिखर पर हैं। वे आनुभूतिक सघन संरचना, बेहद आत्मीय, पारिवारिक और ऐन्द्रिक बिम्ब संयोजन और भावों की संवेदना से सहज ही तादात्म्य हासिल कर लेने में अत्यंत सक्षम हैं।'' मेरी दृष्टि में सुमन जी के व्यापक रचना संसार को समझने–परखने का कार्य होना अभी शेष है।

■

'खारिज' पर 'काबिज' शान्ति सुमन की गीतयात्रा

❑ लालसा लाल तरंग

बुर्जुआवर्ग की चिंता की कोशिश होती है कि आम जनता में विभ्रमपूर्ण स्थितियाँ अपना अड्डा जमाए रहें ताकि वह सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक भूत, वर्तमान एवं भावी स्थितियों से परिचित न हो सकें। जनवादी और प्रगतिशील लेखक और कवि का यह विश्वास होता है कि स्थितियों को कुरेद–कुरेद कर लोकभाषा और आम आदमी की भाषा में विभ्रम के छिलके उधेड़–उधेड़ कर उसे समूल मिटाने का प्रयास हो। यह कार्य गीत, नवगीतों और हिन्दी में लिखी जा रही गजलों ने तब से शुरू किया जब से 'काव्य को सृजनात्मक होने का दावा किया जाने लगा क्योंकि काव्य विधा में विचार प्रक्रिया के साथ–साथ शब्दों का जन्म–पुर्नजन्म भी होता है। गीत वस्तुतः आदमी की जिन्दगी में हर उतार–चढ़ाव, लघु–दीर्घ अनुभूतियों सुख–दुःख, आकांक्षा–आशा, जय पराजय और सामूहिक मुक्ति के संघर्ष के सामूहिक संवेगों और रागात्मक संवेदनाओं की लयात्मक अभिव्यक्ति है। कविता को जीवन का शब्द रूप कहा गया है। देशकाल से घिरे जीवन को, उसके अनुभवों को कवि शब्दबद्ध करता है। गीत वस्तुतः इसी शब्दबद्ध रूप का एक सार्थक एवं मानवीय सरोकार का पक्ष है। गीतों में वस्तुनिष्ठता होती है। गीतों में कवि प्रत्यक्षतः दिखता है। इसमें मानवीय सरोकार को जोड़ते हुए सुख और दुख और दुख दूर करने के उद्देश्य की अनुभूति होती है। जरूरी नहीं कि यहाँ गीत या नवगीत की परिभाषाएँ गिनाई जाय लेकिन संदर्भतः मैं भी डॉ0 सुरेश गौतम से सहमत हूँ कि "गीत कविता की व्यास पीठ साहित्यकार की सर्वोत्तम कृति, जाग्रत विचार और आधार हैं। सार्वभौमिक सत्ता में व्याप्त ऋतम और सत्यम भारतीय मानस का स्थायी भाव है। गीत आज भी जीवन के सुलगते उपन्यास के केन्द्रीय कथानक हैं जिसकी जड़ें कविता के भीतर और परिवेश के परिसर में अपना कल्प–प्रसार करती हैं।" छायावादी काव्य संसार के बाद ही परंपरागत गीत की लीक से हटकर गीत को एक नया और विस्तृत भावबोध, एक नई शैली और नवशिल्प देकर निराला ने इसे व्यापक धरातल दिया। इसके बाद गीतों की यात्रा एक पृथक दिशा की ओर चली। राजेन्द्र

प्रसाद सिंह की 1958 में गीतांगिनी 'संकलन', इलाहाबाद साहित्य सम्मेलन की गोष्ठी में 1957 में वीरेन्द्र मिश्र द्वारा पढ़ा गया – 'नवगीत' नामकरण संबंधी आलेख और 1951–52 में वाराणसी की गोष्ठियों में निबंध पाठों में नवगीत की चर्चाएँ हुईं। दूसरे शब्दों में 'यह नवगीत आधुनिक युगबोध से संपृक्त वह स्वाभाविक रचना है जिसमें आत्मनिष्ठा के साथ भोगी हुई परिवेशगत स्थितियों को नवीन शैली–शिल्प में ताजी अभिव्यक्ति मिलती है।'

गीत–नवगीत के इतिहास में न जाकर प्रसंगवश यह कहा जा सकता है कि नवगीत के प्रतिपाद्य विषय प्रेम–श्रृंगार, विरह, वेदना, प्रकृति, वैयक्तिक सुख–दुख एवं लिजलिजी भावुकता से भीगे हुए नहीं बल्कि आजादी के बाद की स्थितियों ने जिस घुटन, भय, कुंठा, संत्रास एवं अलगाव को जन्म दिया था वही नवगीत के कथ्य बनने लगे। हालांकि यह रेखांकित करना जरूरी है कि इन गीतों और नवगीतों को उन्हीं दिनों जोरदार ढंग से खारिज करने का कुचक्र भी पूरी ताकत से चलने लगा था। तथाकथित पाश्चात्य अन्ध अनुरागी विद्वानों एवं कवियों का कुतर्क था कि हिन्दी गीत व्यक्तिपरक है। वह मनुष्य की लिजलिजी भावुकता की अभिव्यक्ति मात्र का माध्यम है, वह आज के जीवन की जटिलताओं को संप्रेषित करने में असमर्थ है। इतना ही नहीं एक समय गीतों–नवगीतों को मृत घोषित कर दिया गया था और अब नवगीतों और गीतों को कुछ भीषण आलोचक एवं समीक्षकों ने उसके 'पुनर्जीवित' करने या 'पुनर्स्थापन' की भांति चर्चा भी शुरू कर दी। जब गीत–नवगीत मरे ही नहीं, और जो आदिम और अमर्त्य हैं, तो उन्हें पुनर्जीवित करने की बात कितनी हास्यास्पद है। ये तो आदिम भावना और युगीन हैं। नवगीतकारों ने नई कविता या तथाकथित कविता की बपौती वाले विषयों को ही अपने नवगीतों के केन्द्र में रखकर उसे बेहतर और प्रगतिशील ढंग से प्रस्तुत किया। यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि 'नवगीत कविता का सहोदर नहीं है, सहयोगी भी नहीं, हाँ कविता का पूरक कहा जा सकता है जो संपूर्णता को प्राप्त हुआ।

छठे दशक में राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने 'गीतांगिनी' के संपादकीय में लिखा – ".....प्रयोगवाद के द्वारा जब मौलिकता नवीनता, आधुनिकता, जटिल संश्लेषण, अनुबिम्बन, छंद विरोध मनोवैज्ञानिकता, बुद्धिवाद और राहों का अन्वेषण आन्दोलन की तीव्रता से प्रचालित होने लगे तब

व्यक्तित्व का बहुमुखी अन्तःसंगीत गीतों में व्यक्त होने को अकुलाता रहा। गीतधारा बहती वर्गसंघर्ष, क्रान्ति, कोलाहल तथा यथार्थवादी अतिवादिता की चुनौती पर परिस्थिति से क्षोभ, वैयक्तिक पीड़ा, सामाजिक करुणा जन संस्कृति, लोकरूचि और ग्राम–सौन्दर्य को स्वर देती रही।"

यह स्मरणीय है कि उन्हीं दिनों जिन कुछ साहसी नवगीतकारों ने लीक छोड़कर, विरोधों की लीक की परवाह किए बिना नवगीत लेखन में जोरदार ढंग से अपनी अलग लीक बनाई, उन्हीं बहादुरों की सशक्त कड़ी में एक नाम है शान्ति सुमन का जो नवगीत के उन्मेषकाल के पूर्व से ही नवगीत से जनगीत तक की यात्रा में विरोधों एवं विघ्न–बाधाओं को रौंदते हुए आगे बढ़ती रहीं। उन्हें खारिज करने की हर मुहिम ने उन्हें आगे बढ़ने ही की प्रेरणा दी। अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वे एक नव सौन्दर्यशास्त्र रचने में लगी रहीं और रचती रहीं। 'वरवर राय' की पंक्तियों के सहारे कहा जाये तो "....कवि जीता है अपने गीतों में। और गीत जीता है जनता के हृदयों में।" शान्ति सुमन अपने गीतों के साथ गीतों में ही जी रही हैं (भले उन्होंने कुछ अतुकांत कविताएँ भी लिखीं जिसका एक संकलन भी आया) और उनके गीत आम जनता के दिलोदिमाग में जी रहे हैं और काम भी कर रहे हैं। इस तरह सच मानिए कि "गीतों को जब जनता माने/गीतों को जब हर दिल जाने/दूर खड़े हों आलोचक तब/गीत अमर है गीत अजर हैं।

मैं उन दिनों गढ़हरा–बरौनी (बेगूसराय) बिहार में रेलकर्मी था। हिन्दी साहित्य परिषद्, गढ़हरा (जिसका मैं सचिव था) के तत्वावधान में आयोजित कवि सम्मेलन में अन्य कवियों के साथ राजेन्द्र प्रसाद सिंह और शान्ति सुमन भी आमंत्रित थीं। मैंने शान्ति सुमन का नाम सुना था। उनके कुछ गीत भी पढ़े थे परन्तु मंच पर पहली बार उन्हें सुना। शान्ति सुमन से कई नवगीत पढ़वाए गए। मुझे लगा कि नवगीत का परचम डॉ0 शान्ति सुमन ने बड़ी मजबूती और बुलंदी से थामा था। सुखद आश्चर्य यह है कि शान्ति सुमन को एक तरफ कुछ लोग काली स्याही से खारिज करते रहे और दूसरी तरफ आम जनता, सुधी पाठक और अधिकांश गीत–नवगीत आलोचक तथा गीतकार रेवन्यू–रेकार्ड (माल खाते) के 'खसरा–खतौनी' में लाल स्याही से निरन्तर 'काबिज' बनाते इन कागजात को प्रमाणित करते रहे। तात्पर्य यह है कि जिन दिनों नवगीत और जनगीतों को एक सोची समझी गंदी राजनीति–रणनीति

और कुछ विशिष्टवाद, कवितावादी (मुक्त छंदवादी) सुनियोजित षडयंत्र के तहत खारिज किया जाता रहा, उन्हीं दिनों अत्यंत साहस, विद्वता, सहजता और लोकवादी विचारधारा से लैश होकर शान्ति सुमन जनगीतों की 'उड़नपरी और रानी' बनती रहीं। यह एक ऐतिहासिक स्टैन्ड था। गहन अनुभूतियों और गाँव–गिराँव के बोलचाल के शब्दों की सरलता, कलात्मकता और मारक अभिव्यक्ति उनकी विशेषताएँ रहीं। वहीं प्रेम–सौन्दर्य का पुट भी उनकी रचनाओं में अलग ढंग से मिलता है।

मुझे लगता है कि शान्ति सुमन की गीत–प्रवृत्ति में नवगीत और जनगीत महादेवी जी की परिभाषा – "सुख–दुख की भावावेशमयी अवस्था विशेष का गिने–चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है" – से काफी आगे बढ़ गए। उनकी मानवीय सरोकार और संवेदनशील अनुभूतियाँ सार्थक अभिव्यक्ति बनकर आगे बढ़ गईं। आज तो नवगीत ही समकालीन गीतों की सशक्त परिणति बन चुके हैं। सुमन जी की यह आत्मस्वीकृति ('प्रेसमेन' भापाल, 11–7–2009) भी मान्य लगती है कि "मुझको यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि नवगीत को उसके अपने कुछ नवगीतकारों से ही अहित हुआ है। जब विधा की पहचान पकड़कर उसके विकास का इतिहास लिखा जाना चाहिए था तब उसके उत्स को लेकर ही विवाद होता रहा। छायावाद के कवियों ने स्वयं अपने ऊपर और अपने समानधर्मा कवियों के ऊपर जितना लिखा, उस विधा को समझने के लिए वह पर्याप्त है, पर नवगीत में यह काम नहीं हुआ। नवगीतकार एक दूसरे से आगे निकलने की होड़ में ही बेचैन रहे। उन्होंने विधा नहीं, अपने विकास के बारे में अधिक सोचा।" मैं जोड़ना चाहूँगा कि तत्कालीन गीतकारों–नवगीतकारों ने जो गीतात्मकता और गीत आलोचना की दृष्टि अपनाई, वह शान्ति सुमन जैसे अनेक सशक्त नवगीतकारों की टांग खींचने वाली ही दिखी। इतना ही नहीं, कुछ 'अतिवादी' लोगों ने 'गीतफरोश' 'जब गीत मर गया' चांद रोने आया' 'गीत का स्मारक' जैसे अनेक जुमले प्रयोग कर गीत, जनगीत और नवगीतों का विरोध किया। जब शान्ति सुमन के नवगीतों– जनगीतों का गहराई से अध्ययन किया जाय तो मानना पड़ता है कि जनोन्मुखता कवयित्री के कथ्य और रूप दोनों को ही अभिमुखीकृत करती चलती है। इनमें जहाँ लोकोन्मुखता एक वैचारिक अन्तर्दृष्टि बनकर यथार्थता को मूर्तरूप प्रदान करती है वहीं उनके शब्द

सहज संप्रेषित होकर सार्वजनीन बनते चलते हैं। वे आजादी के पूर्व और आजादी के बाद की परिस्थितियों की नब्ज पर बड़े चिकित्सीय ढंग से उंगुलियाँ रखती हैं और आश्वस्त होकर इनकलाबी मार्ग पर बढ़कर, चुनौतियों को स्वीकार करती हुई पक्का इरादा व्यक्त करती हैं –

"नहीं चाहिए आधी रोटी और न जूठा भात
यह खोटी तकदीर एक दिन खायेगी ही मात
हम गरीब मजदूर भले, हम किसान मजबूर भले
पर अपनी लाचारी का अब गीत न गायेंगे
ताकत नयी बटोर क्रांति के बीज उगायेंगे।
कच्चे गीतों से अच्छा है, नारा एक लिखो
बंधे हुए द्वीपों से बेहतर धारा एक दिखो,
लेकर श्रम का नाम चले, लाल मशालें थाम चले
हाथ–हाथ मिल रोशनियों की तीज मनायेंगे।

और इन इरादों का आगाज देने के साथ वह कहीं भी मानवता के आदर्श से डिगती नहीं हैं। 'फलों से लदी विनम्र शाखों की शायरी' के वसूलों पर वह आगे कहती हैं –

"नए सूर्य के स्वागत में/फसलों से हम झुक लें
जोर जुल्म अब बहुत खले/आग हथेली पर रख ले,
देखें सब दमखम वैसा संगठन बनायेंगे।"

शान्ति सुमन की यह विशेषता है कि समकालीन यथार्थ और गंवई संवेदना से अत्यंत गहराई के साथ जुड़े होने के कारण आंचलिक – बल्कि, ग्रामीण भाषा के अत्यधिक देशज शब्दों का उन्होंने अपने जनगीतों में प्रयोग किया है। नवगीतों की अन्तर्वस्तु कीं बारीकियों को संजोने के क्रम में उन्होंने रंगीन बारीक धागों को आकार देते हुए अपने कला कौशल और गंभीर सामयिक पकड़ का स्पष्ट एवं भरपूर परिचय दिया है।

"आज तक नहीं छूटी
रेहन पर लगी जो
जमीन पिछुआरे की
बहिना की शादी में।

x x x

दूब ने कनखियों से क्या देखा
खिंची हुई भाल पर सगुन रेखा,
नदी घाट सूखते अंगोछे
धूपों ने लहरें के मुँह पोंछे।

ध्यातव्य है कि यहाँ पिछुआरे, बहिना, कनखियों और अंगोछे अपने अर्थ गौरव में, ग्राम्य संस्कृति के साथ–साथ 'लोक' को ध्वनि भी गुंजित है। इनकी रचनाओं में ऐसे शब्दों को प्रायः देखा जा सकता है। कहना चाहिए कि इनके तमाम नवगीत–जनगीत आम जनजीवन, सामूहिक जनजीवन से जुड़े तो होते ही हैं स्वयं एक दूसरे से सम्बद्ध भी लगते हैं और मनुष्यता के व्यापक कैनवास की सच्ची, सफल एवं समर्थ कथायात्रा भी हैं। इनकी रचनाओं में पीढ़ी दर पीढ़ी की विसंगतियाँ और उनकी व्यथा यथार्थतः संवेदित दिखती हैं।

एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

"फटी हुई गंजी ना पहने/खाए बासी भात ना
बेटा मेरा रोए मांगे/एक पूरा चन्द्रमा।"

इस गीत में सारी परिस्थितियों को गूंथा गया है परन्तु नई पीढ़ी के क्रोध एवं आक्रोश को भी, साथ ही प्रतिरोधी स्वभाव को भी उद्घाटित किया गया है। अंतिम बंद में कवयित्री ने अपना स्वर, अपनी मंशा और विचारधारा भी जड़ दी है –

"अभी समय को खेतों में/पौधों सा रोप रहा
आँखों में उठने वाले/गुस्से को सोच रहा,
रक्तहीन हुआ जाता/कैसे गोदी का पालना।"

शान्ति सुमन को क्रान्तिकारी कवयित्री और संवेदनाओं के स्तर पर सोच विचार कर लोगों को संघर्ष से जोड़ने का मंत्र सिखाने वाली रचनाकार के रूप में देखना, परखना और संबोधित करना कतई अतिरंजना नहीं है। पूंजीवादी व्यवस्था और व्यवस्था की रानी (भले वह एलिजाबेथ या इन्दिरा गाँधी रही हों) के सामने कोई कुछ नहीं कर पाता –

"रानी के पास हैं, बहुत धन, हाथी घोड़े
कौन है जो रानी के रथ को पीछे मोड़े ?

इस 'रानी के गीत' में भी आखिर शान्ति सुमन अपने रंग और संघर्षी, इरादों को स्पष्ट कर देती हैं। अंतिम बंद में – *"कौन कहे समय की*

भी/होती है सिलाई/काटता है वही/जो करता बोआई/कभी छोटी चिड़िया भी बाज को मरोड़े।'' अर्थात् रानी का प्रतिरोध समय की मांग है और आम जनता रानी को सबल जवाब देने में सक्षम है। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि 'जब–जब जन तना है उनका महल ढहा है।' मजदूर, किसान और सर्वहारा के तनने का सबब पूंजीवादी व्यवस्था के पाए को कमजोर कर उसकी मजबूत दीवारों को ढहाना ही है। जनचेतना से गुजरते उनके गीत नवगीत और जनगीत शनैः शनैः नवगीत का इतिहास लिखते गए। एक समय जब 'प्रयोगधर्मी कविताओं के बासीपन को धोने के लिए कवि नवगीत की ताजगी से स्फूर्ति और स्वास्थ्य लाभ करने लगे थे, नवगीतकार नवगीत के सहज और टटके भाव से अपनी आंतरिक चेतना को संस्कारमुक्त और स्वच्छंद वातावरण में विचरण करता हुआ पाते थे। यही कारण है कि आज फिर नवगीत का दबा हुआ 'सोता' समय की धरती को फोड़कर बाहर निकल आया है।'' मुझे स्मरण है जब शान्ति सुमन बरौनी (गढ़हरा) में काव्यपाठ करके मुजफ्फरपुर लौट चुकी थीं। मेरे ही कुछ कवि मित्र – जो तत्कालीन नयी कविता (छंद मुक्त) के कई 'वादों' वाले दिल्ली, पटना और कलकत्ता के नई कविता मठाधीशों के प्रभाव में थे – शान्ति जी के जनगीतों की खिल्ली उड़ाए। सुरेश समीर, विश्वरंजन, श्री हर्ष, निर्भय मलिक आदि नामचीन कवियों की 'अभिशप्त पीढ़ी' शनीचरी पीढ़ी, भूखी पीढ़ी, फ्रेन्चलेदरी पीढ़ी, अकवितावादी और जाने कौन–कौन पीढ़ीवादी नई कविता के 'नएवादों' को ओढ़े महाकवियों का नाम जपते वे व्यंग्य कसते अघाते नहीं थे। वे खुले आम शान्ति सुमन को खारिज करते भी नहीं थकते थे। चूंकि मैं भी मूलतः गीतकार रहा इसलिए ऐसे घटिया स्तर के प्रतिरोधों का सामना करना पड़ता था और मैं उनका जवाब किसी न किसी रूप में आम जनता के बीच अपने गीतों के माध्यम से देकर शान्ति सुमन के गीतों–नवगीतों को स्थापित करने की कोशिश करता रहा। आज अधिकांश नामचीन नई कवितावादी लोगों को पता नहीं है कि अब शान्ति सुमन कविता के इतिहास में दर्ज एक प्रतिष्ठित एवं प्रसिद्धि प्राप्त ऐतिहासिक नाम हैं। वस्तुतः राजेन्द्र प्रसाद सिंह की 1952 और 1958 की अवधारणाओं तथा घोषणाओं का व्यावहारिक प्रतिफलन शान्ति जी के नवगीत हैं जिन्हें तमाम विरोधों के बावजूद आज अग्रिम पंक्ति में गिना जा रहा है। एक बात यहाँ साफ कर दूं कि जिन

लोगों को यह मुगालता है कि '.....जबसे कुछ आलोचकों ने कविता लिखनी शुरू कर दी और जब से कुछ कवियों ने आलोचना आरंभ कर दी तब से दोनों क्षेत्र दूषित हो गए हैं।' उन्हें यह भी बताना चाहिए कि गीत–नवगीत के कितने आलोचक हैं जो कवि नहीं हैं या यह भी कि जब कविता के नामचीन आलोचक गीत नवगीत को कविता न मानकर उनकी आलोचना या समीक्षा करना छूत की बीमारी मानते हैं तो गीतकार नवगीतकार इस विधा पर नहीं लिखेंगे तो कौन लिखेगा ? आश्चर्य तो यह है कि साहित्यिक आतंक ने उस समय राष्ट्रीय स्तर के गीतकारों को भी धमकाकर अपनी पंक्ति में खड़ा कर दिया तब आखिर 'आत्मरक्षार्थ' हथियार तो उठाना ही था। अगर यह कार्य 'दूषित' माना गया होता तो आज वे लोग – जो गीत–नवगीत को खारिज कर रहे थे (इसमें कई बड़े आलोचक भी शामिल हैं और कई बड़े गीतकार भी) आज गीत–नवगीत के दबी या खुली जबान से समर्थन पर क्यों उतरे ? शान्ति सुमन की *''कच्चे गीतों से अच्छा है/नारा एक लिखो/बंधे हुए द्वीपों से बेहतर/धारा एक दिखो।''* जैसी पंक्तियों को, या 'यह न सोचो सीकचों में बंद होता इनकलाब धरती का हर लाल है अब इनकलाब (तरंग) जैसी पंक्तियों को आह्वान गीत की तरह लोग गाते और पढ़ते थे, आज भी गाते और पढ़ते हैं। और इनके नवगीतों में जनवादिता, जनचेतना की अनुगूंज की चर्चा की जाती थी जो गीतों की आलोचना करनेवालों को भी हिलाकर रख देती थी। अगर राजेन्द्र प्रसाद सिंह 'गीतांगिनी' और बाद में 'आइना' का नवगीत विशेषांक (1983–84) नहीं संपादित किए होते तो नवगीत का मार्ग प्रशस्त कैसे होता ? स्वयं डॉ0 शंभुनाथ सिंह ने नवगीत–गीत से संबंधित कई महत्वपूर्ण पुस्तकें दीं। शान्ति सुमन का ही एक अच्छा लेख 'नवगीतों में गृहस्थ जीवन की मानसिकता' (नवगीत का विकास और मौजूदा बहस – आइना – 1903–04) प्रकाशित हुआ जो इस दिशा में महत्वपूर्ण है। इस नवगीत परंपरा में दोष कब, कहाँ और कितना दिखता है ? ''सामाजिक मानों के बदल जाने से अपनी अनुभूति को व्यक्त करने के लिए नवगीत कवियों को नए बिम्बों–प्रतीकों, टटकापन भाषा एवं अभिव्यंजना की नई शक्तियों का सृजन करना पड़ा है।'' शान्ति जी को भी अन्य नवगीतकारों की भांति ही समाज में व्याप्त अराजकता, सिद्धांतहीनता, वैचारिक एवं भावनात्मक बिखराव (जिसने मानव को भटका रखा था) – और भटकाव

एवं रिक्तता की अनुभूति तथा सामाजिक, नैतिक मूल्यहीनता को रेखांकित कर लक्ष्य निर्धारण करना पड़ा। वहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि 'जरूरी नहीं कि हर गीतकार आलोचना लिखने में या हर आलोचक गीत लिखने में सक्षम हों'। हाँ, सातो सवार में अपना नाम गिनाने के लिए कितने ही गीतकार मुक्तछंद कवि बन गए और गीत–आलोचक भी। "विश्व समाज आजकल पतन के गहन गर्त्त में है जिसका कारण है उनका गलत दर्शन शास्त्र (falsephilosphy)। आजकल का समाज व्यक्ति की गुणवत्ता (Genous) को कुचल देता है, केवल मूर्ख और पेटू मेजारिटी के लिए। लोगों के मनों को निर्जीव और जड़वत समझ लिया गया है। उनको चाहे जिस काम में लाया जा सकता है। बुद्धिमान और गुणवान व्यक्ति उत्पन्न करना आज के समाज का इष्ट नहीं। यह मशीन मैन चाहता है।" यह मानना है मुक्तिबोध का। लेकिन साहित्यिक बाजार में भी इस सामाजिक कोढ़ को औषधीय मानदण्ड पर परखा जा सकता है। उपर्युक्त भटकाव ऐसा ही है। जब शान्ति सुमन की रचनाओं की शल्य चिकित्सा की जाय तो उनका उद्देश्य बुद्धिमान और गुणवान नागरिक बनाना तो दिखता ही है, साथ ही वर्ग चेतना का व्यावहारिक पाठ भी विद्यमान मिलता है।

"खूनी जबड़े तोड़ेंगे हम/उनके कानूनों के/
नया समाज गढ़ेंगे हम/समता के मजमूनों से/
हर मुश्किल पर दहक उठेगी/अपनी लाल मशाल/
भइया रोटी नहीं सवाल/बहिना रोटी नहीं सवाल।"

कवयित्री को हर मुश्किल की चिन्ता है। हर दुख मुसीबत की चिन्ता है। उसे केवल रोटी की ही नहीं, हर मानवीय सरोकार की चिन्ता है। देश में सही सोच, सही दृष्टि, सही पहचान और आदमी को आदमी बनाने की भी चिन्ता है। करुणा की मात्रात्मकता और ममता की अन्तर्वस्तु की चिन्ता है, जिसके सहारे वे स्वार्थी और पूंजीवादी हित में गढ़े गए कानूनों को तोड़ने की बात करती हैं। नए समाज गढ़ने की बात करती हैं, एक नया, सजग और बुद्धिमान, गुणवान समाज और यह बताना चाहती हैं कि वे 'जनता के विशाल समुदाय की हलचल से बेखबर नहीं हैं। इनके नवगीत संकलनों पर यदि गहन दृष्टिपात किया जाए तो निश्चित यह विश्वास दृढ़ से दृढ़तर और दृढ़तम होता जाएगा कि 'इनके संग्रहों में श्रमजीवी संघर्षरतजन के श्रम सौन्दर्य के शिल्प में

ढले हुए जनवादी गीत हैं।'

डॉ0 बुद्धिनाथ मिश्र गीत–नवगीत के इतिहास में एक जाना–पहचाना नाम है, एक सशक्त कड़ी हैं। इनका एक गीत अपने आरंभिक काल से लोकप्रिय और कवि सम्मेलनी रहा 'एक बार और जाल फेंक रे मछेरे, जाने किस मछली में बंधन की चाह हो" (कुछ ऐसी ही पंक्ति है) हालांकि यह मछली की प्रकृति का विरोधी स्वर है। शान्ति सुमन ने उस गीत के काफी पहले एक गीत लिखा जिसकी पंक्ति है "फंसी नहीं मछली/जाल फेंकता रहा मछेरा।" इस गीत के बंदों में जाल फेंकने का आह्वान नहीं है बल्कि 'जाल फेंकने वाले की अन्तर्मुखी मंशा को समझ बूझकर मछली का न फंसने का दृढ़ संकल्प, मछेरे के आसपास बुनी गई दुर्गम घटनाओं और सुनियोजित षड्यंत्र को सावधानी से पढ़ लेने की जनवादी संकल्पना स्पष्ट है। मछली और मछेरे के प्रतीकों के माध्यम से कवयित्री ने पूंजीवादी और साम्राज्यवादी व्यवस्था द्वारा आमजन को अपने पंजे में बझाने के षडयंत्र का पर्दाफाश किया है साथ ही मछलियों (जनता) को उस षडयंत्र का सीधा एहसास कराया है। इस तरह के अधिकांश प्रगतिशील और जनवादी गातों से इनके संकलन भरे पड़े हैं।

एक अत्यंत तात्कालिक संदर्भयुक्त विषय यह है कि पर्यावरण के बिगड़ने के गंभीर परिणामों के प्रति संपूर्ण संसार चिन्तित है। पर्यावरण के साथ–साथ मानव परस्पर अन्तःक्रिया करता है। मानव के साथ अगणित जीव जन्तु, जानवर, पेड़–पौधे और वनों के उद्‌भव, विकास और अंत (मृत्यु) तक को जलवायु या पर्यावरण प्रभावित करता है। शान्ति सुमन को भी अपनी जलवायु या पर्यावरण की चिन्ता है जो किसी भी प्रगतिशील रचनाकार की युगीन चिन्ता है। क्योंकि Nature is really solid life light. कवयित्री ने यह रेखांकित किया है कि प्रकृति को भी आदमी के दर्द और संवेदनाओं का अनुभव होता है। एक पेड़ अपने विकास क्रम में केवल चुपचाप बड़ा नहीं होता है बल्कि उसके अंग–अंग में मानवीय संवेदनाएँ होती हैं, आदमी के दर्द से दर्द होता है, खुशी से खुशी होती है, आदमी के श्रमशील क्षणों को पेड़ भी जीते हैं। इसके बावजूद इतनी बड़ी सहानुभूति और मानवहित में जीते मरते पेड़ों को आदमी ही काट–काटकर नष्ट कर रहा है, यह कितना दुखद है और पेड़ की प्रकृति की विरोधी घटना है। जबकि जलवायु परिवर्तन की जटिल विभीषिका से पूरी दुनिया ही चिन्तित है और कोपेनहेगन के शीर्ष

सम्मेलन में 'जुटकर' भी विकसित राष्ट्रों के प्रतिवेदनों के नीचे 'अनजुट' होकर सम्मेलन बिखर गया। शान्ति सुमन की सोच देखिए –

'इस तरह होते बड़े ये पेड़/नहीं केवल चुप खड़े ये पेड़/
टहनियों में दुख रहीं/नोकें सवालों की/बज रही
समवेत धुन/कलछी कुदालों की/हो नहीं पाते हरे
ये पेड़/जड़ों से बेहद कड़े ये पेड़/आज तक खाते
रहे जो/दुधमुंहे हिस्से/चुभ रहे उनको उन्हीं के/
दांत के किस्से/खुद बखुद उनसे लड़े ये पेड़/
भर रहे खाली घड़े ये पेड़/
उगीं हाँ अब उगीं/किरने रोटियों वाली/सांझ दहशत
में सनी/होगी नहीं काली/दीखते कितने बड़े ये पेड़/
नहीं मर कर भी मरे ये पेड़।''

एलिजाबेथ के भारत आने पर बाबा नागार्जुन ने भारतीय कांग्रेसी व्यवस्था पर चोट करते हुए व्यंग्य किया था – ''

''आओ रानी हम ढोयेंगे पालकी
राय बनी है यही जवाहर लाल की....।''

शान्ति सुमन ने भी 'रानी का गीत' लिखा जो तत्कालीन राष्ट्रीय परिस्थितियों, राजनीति और सत्ताधीन वातावरण पर कितना भारी पड़ रहा है –

''रानी के पास है बहुत धन
हाथी–घोड़े
कौन है जो रानी के रथ को
पीछे मोड़े ?
रानी न खेत जाए, करे ना सिंचाई
रानी की थाल में है, खीर और मलाई
आग जो लगाए, उनके हाथ गोरे–गोरे
कौन है जो रानी के रथ को पीछे मोड़े ?

x x x

रानी के पांव लगे, नहीं धूल छाई
रानी की भेंट चढ़ी हमारी कमाई
चान औ' सुरुज सभी हाथ उन्हें जोड़ें.....''

'यह द्रष्टव्य है कि भारत की कर्मशील व्यवस्था के विरूद्ध आज की पूंजीवादी और विकसित राष्ट्रों से प्रतियोगिता में पागल भारतवर्ष जैसे विकासशील राष्ट्रों की यही स्थिति दृष्टिगोचर है। बाबा नागार्जुन ने एलिजाबेथ पर व्यंग्य के कोड़े मारे थे, शान्ति सुमन का व्यंग्य–कोड़ा दूर दृष्टि भरा और तत्कालीन राष्ट्रीय निर्माण के प्रति व्यवस्था के प्रलाप को उजागर करता है और रानी (इन्दिरा गाँधी) की तानाशाही को रेखांकित करता है जिसका प्रमाण था भारत में लगाया गया आपातकाल। यह अदम्य साहस भरा जनवादी कदम है। इन पंक्तियों में साम्राज्यवादी, तानाशाही, अधिकारों का दुरूपयोग, जनता की उपेक्षा और फासीवादी चेहरे को बेपर्द किया गया है।

वस्तुतः पाठ के सभी गुण गीत, नवगीत, जनगीत सभी में होते हैं। इनके साथ ही इनमें संगीत्मकता, संगीत एवं प्रगीतात्मकता और आरोह–अवरोह के गुण भी होते हैं। इनमें 'आत्मपरक प्रगीतधर्मिता' स्पष्टतः देखी जा सकती है जिसे नामवर सिंह ने भी मुक्तिबोध की लंबी कविताओं के साथ–साथ (कविता के नए प्रतिमान के वर्षों बाद 'वाद विवाद–संवाद' में) स्वीकारा कि उनकी अनेक छोटी कविताओं में प्रगीतात्मकता भी है, आत्मपरक प्रगीतधर्मी गुण भी हैं ''वे कविताएँ अपने रचना विन्यास में प्रगीतधर्मी है।'' उपर्युक्त गुण गीत–नवगीत या जनगीत जैसी कविताओं को सहज संप्रेषणीय भी बनाते हैं और उनके शब्द सामर्थ्य की ग्राह्यता को आम पाठक या श्रोता की ग्राह्य सामर्थ्य से एकाकार करते हैं।

शान्ति सुमन के आरंभिक दिनों की एक संक्षिप्त चर्चा मैं कर चुका हूँ। वे गीतों का पाठ करते समय, जहाँ आवश्यक रहा, आरोह अवरोह और 'स्वर भरण' का सहारा भरपूर लेती रहीं जो इसी प्रगीतात्मकता धर्म का निर्वाह है। यह किसी भी गीतकार के लिए एक अतिरिक्त एवं आवश्यक गुण भी है। नई कविता की मृत्यु के पीछे एक यह भी कारण रहा क्योंकि उसमें ये गुण नहीं है। नई कविता (अतुकांत) में यह भी क्षमता नहीं है कि वह आम पाठक या श्रोता को याद हो जाय और शान्ति जी के गीतों की पंक्तियाँ मैंने बिहार और उत्तर प्रदेश के कई काव्य मंचों पर संचालकों या विभिन्न मजदूर–किसान संगठनों के वक्ताओं द्वारा कोट करते सुना है। रचनाक्रम में 'खरोचें' सभी को लगती हैं। खासकर आलोचकों की कलम के नीचे। कोई प्रगतिशील बनता है और कट्टर हिन्दू या मुस्लिमवादियों या कट्टर दक्षिणपंथियों या देश

के गद्दारों के खानदान से शाबासी और पुरस्कार लेने में नहीं हिचकता। कोई अपनी रचनाओं और पुस्तकों की प्रायोजित प्रशंसा ऐसे ही लोगों से कराने में भी नहीं हिचकता। एक तरफ फर्जी विरोध दूसरी ओर व्यावहारिक संबंध निर्वाह। ये सारी बातें रचनाक्रम में 'खरोंच' ही तो है लेकिन शान्ति सुमन इन खरोंचो से दूर–दूर तक कोई रिश्ता नहीं रखती। कभी–कभी 'विरोधों के लिए विरोध' तो होते हैं परन्तु बचाव के साक्ष्य यथार्थ और तथ्यमूलक भी होने चाहिए। शान्ति सुमन ने कभी ऐसी घटिया राह नहीं पकड़ी। शिव कुमार मिश्र जी का कथन – ''शान्ति सुमन के गीत मानवीय चिंता के एकात्म से उपजे गीत होते हैं' से मैं भी पूर्ण सहमत हूँ। यह दलील कि ''मानवीय चिंता का एकात्म किसी राजनैतिक वाद, विचार अथवा दल के चिन्तन का विषय नहीं हो सकता क्योंकि एकात्मभाव विराट् की चिन्ता करता है, वर्ग की नहीं।'' यह कथन बिल्कुल निराधार एवं अव्यावहारिक है। 'विराट्' में 'वर्ग' और 'वर्ग पहचान' निहित है। जब साहित्य मानवीय एकात्म की परिधि में होता है तो उसे गलत और सही की सच्ची परख करनी पड़ती है क्योंकि 'कोई अधिक से अधिक खाकर रोगी होता, अस्वस्थ होता है और मरता है, तो कोई एक–एक रोटी के अभाव में सपरिवार या तो चिन्तित होता है, अस्वस्थ आत्महत्या कर डालता है या खुद मर जाता है। दोनों ही स्थितियों में मृत्यु होती है। 'विराट' की परिधि में ये दोनों घटनाएँ आती हैं परन्तु 'मानवीय चिन्ता का एकात्म' में दोनों वर्ग अलग–अलग हैं। अमीर और गरीब इन दोनों वर्णों को संबोधित करते है – अलग–अलग। यह रेखा शाश्वत है। बिना 'विचार' के रचना होती ही नहीं। इस संदर्भ में शान्ति सुमन के कई नवगीतों के साथ 'रानी का गीत' देखा जा सकता है। 'मार्क्सवाद एक विचारधारा है अंतिम सत्य नहीं' और कि 'किसी विचारधारा से असहमति व्यक्त करना किसी मनुष्य और किसी लेखक का बुनियादी अधिकार है।'' यह अधिकार सभी का है अर्थात् शान्ति सुमन का भी। तब 'बुराई और अच्छाई' को अपने तराजू पर तौलना और अच्छे को सभी के सामने प्रस्तुत करना भी रचनाकार का ही दायित्व है। 'मार्क्सवाद के प्रति जड़प्रतिबद्धता' के लिए किसी को कोई विवश नहीं करता है। अगर कोई यह मानता है कि 'फला रचना पर मार्क्सवादी विचारधारा हावी हो रही है' तो आखिर कोई क्यों और कैसे यह महसूसता है ? हाबी होते क्यों देखता है ? और अब हाबी होते

देखता है तो उसे निरीह प्राणी ही कहा जाएगा। वरना उसे तो उस रचना से बेहतर 'पुस्तक' या 'रचना' साहित्य के बाजार में देना चाहिए। सबका अपना–अपना अधिकार होता है। हाँ अगर मार्क्सवाद 'अंतिम सत्य' नहीं है तो 'अंतिम सत्य' है क्या ? यह रेखांकन भी आचश्यक है। इसपर लंबी बहसे हुई हैं और हो रही हैं। एक बड़ा सत्य है 'लोक'। एक अंतिम सत्य 'अंधकार' है जिस पर स्थायी विजय पाने के लिए 'प्रकाश' का अनवरत संघर्ष करने की बात करता है – यह एक युग सत्य, कालजयी सत्य है। हर गलत और विसंगति से संघर्ष, गलत मानव से सही मानव का संघर्ष, पूंजीवाद से साम्यवाद और समाजवाद का संघर्ष, प्रकृति से मानव का संघर्ष, असत्य से सत्य का संघर्ष और अन्ततः अंधकार से प्रकाश का संघर्ष यही सत्य है। और इसीलिए शान्ति सुमन कहती हैं –

''इस ओर सूखा है/बाढ़ है अकाल है/एक ओर
सत्ता की/यह दुहरी चाल है/....कुछ बया की चोंचें/
लाल लाल रंग गईं/पुराने डैनों की/चमक हुई सुरमई/
सुलगी पसलियों की आँख में उबाल है।''

(धूप रंगे दिन, पृ0 33)

ये हैं संघर्ष के स्वर, गलत और सही के संघर्ष के स्वर, यह है प्रकृति के संघर्ष का स्वर। यह है व्यवस्था को नंगा करने का स्वर। उसके षडयंत्र को तार–तार करना। और यह सिर्फ मार्क्सवाद के माध्यम से ही संभव है। और कहा जा सकता है कि यही अंतिम सत्य है। आपका अधिकार है आप माने या न माने। वस्तुतः हमें साहित्यिक सांप्रदायिकता और साहित्यिक आतंकवाद से दूर रहना ही चाहिए। डॉ0 मैनेजर पांडेय ने एक भाषण में (संवेद–11, पृ0 70) कहा था – ''मार्क्सवाद के अलावा कोई दूसरा दर्शन नहीं है जो समाज के सबसे पीड़ित एवं शोषित और उपेक्षित लोगों की ओर से न केवल सोचने की चिंता करता है बल्कि बदलने की कोशिश भी करता है।'' इस दर्शन से हर कोई प्रभावित हो सकता है जिसे मानवीयता से प्यार है, इनसानियत की चिंता है और सामूहिक मुक्ति की कामना है। जिसका समष्टिवाद से जरा भी रिश्ता है।

मुझे डॉ0 राम विलास शर्मा की कुछ पंक्तियाँ स्मरण हो आ रही हैं ''पूंजीवादी व्यवस्था का आधार व्यक्तिगत मुनाफा है। इस अवस्था में

जनता की समस्याएँ हल नहीं होतीं। न तो सार्वजनिक चुनाव का अधिकार देने से, न लोकसभा में बहस करने से, न शुभकामनाओं से, न पूर्ण प्रस्ताव पास करने से सामाजिक विषमता कम होती है, वर्ग संघर्ष दिन पर दिन तीखा होता जाता है और लगता है कि मुनाफे का आधार खत्म करके समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के बाद ही वह संघर्ष बंद होगा।'' (आस्था और सौंदर्य, पृ0 177) और तब अगर शान्ति सुमन जैसा कोई रचनाकार मार्क्सवाद से प्रभावित होता है तो वह भी उसका बुनियादी अधिकार है जो समीचीन है। जो आज के हालात की मांग है।

बात बड़ी साफ है कि सच्चे गीतों का स्वर आम जनता में संप्रेषित और उनके द्वारा ग्राह्य होता है और स्वीकृत भी। अधिकृत गीतों का स्वर न तो कभी हारा है, न तो कभी झुका है, यही गीतों की शाश्वतता है जो शान्ति सुमन की गीतयात्रा में भी स्पष्ट झलकती है। सौन्दर्य की परिभाषा में 'प्रकृति, जीवन तथा ललित कलाओं के आनंददायक गुण' सम्मिलित माने जाते हैं। इस स्थापना पर आपत्ति चाहे जो हो पर इतना तो निर्विवाद सत्य है कि कला में 'कुरूप' और 'असुन्दर' विवादी स्वरों के समान हैं। हम उस कला से प्रेम करते हैं जो हमें 'वीभत्स' से घृणा करना ही सिखाती है। शान्ति सुमन के गीतों में प्राकृतिक सौन्दर्य और मानवीय सौन्दर्य – दोनों के पुट बखूबी मिलते हैं। वे अच्छे को छांटकर परोसती हैं।

आजादी के बाद भी खुद को और आम आदमी को आजाद न महसूस करना आम बात हो गई है। दूसरी आजादी की मांग तक की जा रही है जो 'आर्थिक आजादी' के रूप में व्यक्त की जाती है। रचनाकारों की भूमिका वर्तमान राष्ट्रीय राजनीति और भावी राजनीति पर अहम मानी जाती है। भारतवर्ष की राष्ट्रीय अर्थनीति और व्यवस्था में जब दोष दिखा तो दिनकर, बाबा नागार्जुन आदि ने अपनी कविताओं के माध्यम से बहुत कुछ कहा। शान्ति सुमन ने भी अपने ढंग से रोष व्यक्त किया –

''पहले तेरी कुर्सी पर हम फूल चढ़ाते थे
अब तेरी कुर्सी पर हम बारूद बिछा देंगे
पहले अपने कर्जे में हम जान गंवाते थे
अब कर्जे के खातिर तेरी जान वसूलेंगे।''

वस्तुतः दूसरी आजादी में आर्थिक आजादी और सांस्कृतिक आजादी

ही शामिल मानी जाती है। इस पर बाहर–भीतर सभी ओर से साम्राज्यवादी, सांस्कृतिक, साहित्यिक और राजनैतिक हमले होते रहे हैं। किसानों, मजदूरों और गरीबों की जो स्थिति प्रेमचंद के समय में थी उसका सिर्फ परिष्कृत रूप ही हमारे सामने है परन्तु शोषित, पीड़ित और कर्जे में पिसते आत्महत्याओं की ओर अग्रसर वही वर्ग है (जो विराट में शामिल है) उपर्युक्त पंक्तियों में सियासती शुभ लाभ के दुष्परिणाम के चलते कविता का टोन बिल्कुल बदला हुआ है। 'कुर्सी पर' फूल पत्ती के स्थान पर 'बारूद बिछाने' तक का इरादा और कर्जे में मूलधन का असीम मिश्रधन वसूली के बदले अब 'जान तक वसूलने' का इरादा किसी मार्क्सवादी रचनाकार का ही इरादा हो सकता है। तब शान्ति सुमन चुप कैसे रहतीं ? भले अधिकांश कवियों ने या तो अपना टोन नरम कर लिया था या भूमिगत हो गये थे परंतु शान्ति सुमन ने व्यवस्था विरोध का वह रास्ता अपनाया जिससे स्वार्थी राजनेताओं और घुन लग रही व्यवस्था में या तो सुधार किया जा सके या उसे ध्वस्त किया जा सके। वस्तुतः कविता, गीत, नवगीत हथियार बनते हैं, जाग्रत करते हैं, संघर्ष के लिए प्रेरित करते हैं। उपर्युक्त पंक्तियों को 'अतिरेक से आक्रांत' माननें वाले भी शायद गीत के शब्दों से आक्रांत हो गए हैं, वे भूल रहे हैं कि नईम ने लिखा – ''दगाबाज भेड़िए, से बेहतर है शेर पाल लें।'' नक्सलवादी आन्दोलन क्यों खड़ा हुआ ? जिम्मेदार कौन है ? राहुल सांकृत्यायन को किसान आन्दोलन का नेतृत्व करते समय किसके कहने पर किसके हाथी के पिलवान ने राहुल का सिर फोड़ा था ? आज भी शान्ति सुमन की 'बारूद' सत्ता के गलियारे में सुविधा भोगनेवालों की कुर्सी पर रोज आक्रामक हो बरस रही है। आज के बचे–खुचे जमीन्दारों और सूदखोरों का और जुल्म करने वालों का किसी न किसी स्तर पर सबल, सशस्त्र, विरोध अखबारों के पन्नों को विशेष रूप से सुशोभित करता मिलता है। ऐसी कुर्सी के 'पांव पोलियोग्रस्त' हो जाते हैं फिर इसमें कैसा अतिरेक ? शान्ति सुमन ने संघर्ष के स्वर को अपनी हर पीढ़ी द्वारा बुलंद करने की तैयारी की बातें की हैं। 'मौसम हुआ कबीर' के एक गीत की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

''थाली उतनी की ही उतनी/छोटी हो गई रोटी/
कहती बूढ़ी दादी अपने गाँव की/सबसे बूढ़ी दादी अपने
गाँव की/.....कहती बड़की काकी अपने गाँव की/

सबसे सुन्दर काकी अपने गाँव की/अपना तो घर गिरा/
दरोगा के घर नए उठे/....सिर से पाँवों की दूरी अब/
दिन–दिन होती छोटी/कहती नवकी भौजी अपने
गाँव की/सबसे गोरी भौजी अपने गाँव की/करना
होगा खत्म कर्ज/यह सूद उगाही लहना/लापरवाह
व्यवस्था के/खूंटे में बंधकर रहना/नाम भूख का रोटी
पर/जीतेगी अपनी गोटी/कहती रानी बहिना अपने
गाँव की/सबसे छोटी बहिना अपने गाँव की।''

उपर्युक्त गीतों में बाल, युवा और वृद्ध सभी पीढ़ियों के आक्रोश का दिग्दर्शन हुआ है। यह व्यवस्था विरोध की स्वाभाविक धारणा है जिसका व्यावहारिक रूप किसी न किसी रूप में देखा जा रहा है। यह स्थिति केवल भारतवर्ष में नहीं बल्कि हमारे पड़ोसी देशों के साथ ही बड़े–बड़े राष्ट्रों में भी है। आर्थिक विकास दर और आम विकास दर जब कम होती है और जब जनसंख्या की दर में वृद्धि होती है तब उसका अर्थ होता है व्यवस्था में कहीं न कहीं खोट है। वह पूंजीवादी, स्वार्थपूर्ण राजनीति हो सकती है, विकसित राष्ट्रों के निहितार्थ उन्हीं के पंजे में जकड़ा जाना हो सकता है या शोषण के नए तरीकों में आम जनता को झुनझुने बांटने का षडयंत्र हो सकता है। 'थाली' तो ज्यों की त्यों रह गई परन्तु 'रोटी' छोटी हो गई। अर्थ स्पष्ट है। इसके परिणाम स्पष्ट है। कभी–कभी जमीनदाराना और गुण्डागर्दी में भी। पुलिस केस करने जाओ तो गालियाँ मिलती हैं या सरकारी कोई सहायता या अनुदान स्वीकृत हुआ तो पुलिस, दरोगा, प्रधान या मुखिया उसका पांचवां या छठा हिस्सा दिलवाता है और जबरन पूरे के लिए हस्ताक्षर या अंगूठा निशान ले लेते हैं। बाकी रकम उनके नए निर्माण में काम आती है। यह कटु सत्य है। 'शब्द मनुष्य के अन्तिम अस्त्र होते हैं।' शब्द और सूचना में सामंजस्य बनाना जरूरी होता है। इसके रचनात्मक रिश्ते पर ध्यान जाना भी जरूरी होता है क्योंकि सारी विषम परिस्थितियों में भी मात्र 'शब्द' ही ऐसी ताकतवर शक्ति हैं जो हर हालत में अपनी जगह तलाश कर लेते हैं। शान्ति सुमन ने इन्हीं शब्दों की ताकत को पहचाना है और इनकी रचनाओं में शब्दों के प्रयोग का आइना साफ है। निस्संदेह कहा जा सकता है कि उनके गीत–नवगीत 'अनुभूति की जटिलता में उलझे हुए और आरोपित नहीं है।' बल्कि अनुभव के स्तर पर इमानदारी से मुठभेड़

करते हुए उनमें व्यापकता और देश, काल, समय तथा कालबोध की संपूर्ण क्षमता है। समकालीन युगबोध यहाँ कूट–कूटकर भरा मिलता है। मानवीय मूल्यों की स्थापना और संरक्षण, मानव अस्मिता का सूक्ष्म निरीक्षण और संवेदनात्मक संरचना का निर्माण इनकी रचनाओं में सहज ही देखा जा सकता है।

■

निरंतर अमानवीय और अभद्र होते जा रहे जीवन यथार्थ से जूझती रचनाकर्त्री : शांति सुमन

❑ शंकर सक्सेना

बीती शती के उत्तरार्द्ध में, भ्रष्ट मंच और निरंतर छीजते जीवन–मूल्यों ने साहित्यिक अस्मिता पर भी करारे प्रहार किए हैं। इस टकराव में निरंतर अमानवीय और अभद्र जीवन यथार्थ से दो–दो हाथ करते गीत को नई ऊर्जा और उसका पसीना सुखाकर प्राण–वायु देने का काम जिन लोगों ने किया उनमें प्रथम पंक्ति की दावेदारी में जो नाम स्व–स्फूर्त स्वाभाविकता से उभर का आए उनमें से एक नाम शांति सुमन भी है।

'शांति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि' के आत्मकथ्य (2–3–'79 के गीत वक्तव्य) में उन्होंने स्वीकार किया है कि वे गीत को अपना अभिन्न मानती हैं। रचनाकार का व्यक्तिगत एकांत भी रचना प्रक्रिया में सामाजिक हो जाता है। पानी का कोई स्वरूप नहीं होता। पात्रानुसार ही रूप ग्रहण करता है। व्यष्टि से समष्टि होने की प्रक्रिया रचनाकार के सृजनात्मक क्षणों की अविकल अनुभूति होती है। यातना के रचनात्मक क्षणों की अविकल अनुभूति होती है। यातना के रचनात्मक मूल्यों की गहरी पकड़ के कारण ही उनके नवगीतों का जनवादी प्रभाव उन्हें उनकी पीढ़ी के रचनाकारों से अलग–थलग खड़ा करता है।

उन्होंने मानवीय संबंधों के निरंतर छीजते और टूटकर बिखरते मुहावरों को गीतात्मक अनुभूतियों की संजीवनी से जीवन देने के प्रयासों में नवगीत को जीवन्तता प्रदान की है। इसे वे गीतों का क्रमिक विकास भी मानती हैं। आमजन के हिस्से की धूप की ऊष्मा, उजास के मौसमों का उल्लास, खेत–खलिहानों, घर, पास–पड़ोस की राजीखुशी और जिन्दगी को सहेजने की आकांक्षा उनके गीत लेखन के मूल्य चिह्नित होने से उनके नवगीत जनगीतों की सीमाओं में भी घुसपैठ करते हैं।

कथ्य और शिल्प दोनों ही स्तरों पर शांति सुमन जी के गीत अपने समकालीन रचनाकारों से हटकर हैं। उनका जनवादी स्वरूप नागार्जुन के जनवाद से अधिक संवेदनशील है। तालाब के पानी में कथरी ओढ़े

ताल–मखाने चुनती *'मुड़े हुए नाखून/ईख सी गाँठदार अंगुली/ टूटी बेंट जंग से लथपथ/खुरपी सी पसली'* वाली शकुन्तला शांति सुमन की सृजनशीलता का परिणाम ही हो सकती है।

प्रस्तुत ग्रंथ में श्रीमती शांति सुमन की रचनाधर्मिता के प्रमुख पक्षों पर विभिन्न विद्वानों के छोटे–बड़े साठ आलेख हैं, जो उनके रचना संसार के विविध वर्णों को संजोए हैं। नवगीत के सौन्दर्य–शास्त्र और जनवादी दृष्टि पर शोधात्मक आलेख अपने समय की एक अन्यतम उपलब्धि है जिससे शांति सुमन की रचनात्मक प्रक्रिया को समझने में आसानी होगी।

नवगीत की प्रथम महिला रचनाधर्मिणी श्रीमती शांति सुमन अपने पहले ही नवगीत संग्रह से ही चर्चा में आ गयी थीं। 1970 से अद्यतन नवगीत के संदर्भ में उनकी प्रामाणिकता स्वयं–सिद्ध है। 'ओ प्रतीक्षित' के गीतों का छन्द–शैथिल्य शिल्प के स्थान पर वस्तुगत कथ्य को महत्व देने के परिणाम स्वरूप ही है जिसे स्वयं गीतकर्त्री ने स्वीकारा भी है। विशेष अनुभूतियों के मानवीकरण के अछूते, अनकहे को कहने की यह तड़प सजीव, सार्थक और जीवन्त विम्बों के माध्यम में यत्र–तत्र सर्वत्र अभिव्यक्त हुई है।

'पँखुरियों के मेघ/सित परिवा/का लुकता छिपता चाँद/मुरझती साँझ/परदे बीमार/सीखचों में कैद लाज/मरती धूप/रिसती सी रूप की सुगंध गमगमाती' को संपूर्ण सामर्थ्य के साथ उकेरने का जोखिम उठाना सहज नहीं होता ,जो इस कवयित्री ने सहज ही उठाया।

साठ और साठोत्तर दशकों में शांति सुमन जी के नवगीतों का परवान चढ़ना एक स्वस्फूर्त घटना है। जनता और साहित्य के बीच संवादीस्वर–विहीनता एक बोर्जुआ टिप्पणी के सिवा कुछ है नहीं। सत्तरके दशक के मध्य में रचनाकार/पाठक और श्रोता के बीच जो साझा वैचारिक सेतु बना उसका श्रेय नवगीत को भी जाता है। यह सच है कि मंच की गरिमा सस्ती लोकप्रियता के कारण कम हुई है। व्यंग के नाम पर बिक रहे फूहड़ हास्य और चुटकुलेबाजी से गंभीर लेखन को क्षति पहुंची है, फिर भी यह सत्य है कि इस बहाने से कविता की पहुँच आम जनता तक हुई। शांति सुमन का जनवादी स्वर उनके गीतों की इसी पहुँच के कारण रेखांकित किया जाएगा। अपने जनवादी तेवरों में वे किसी दल विशेष या

प्रतिबद्ध विचारधारा का शंखनाद नहीं करतीं, वरन् अपने परिवेश के सांस्कृतिक सूत्रों को अपने रचना लाघव से जन–जन तक भावना से जोड़ती हैं।

'जनम से ही पढ़ रहे हम/भूख के ककहरे/'
'याद आते नहीं मौसम/होलियाँ दशहरे/'
'हँसिया मचल रहा हाथों में/झूमे बाली कानों की/'
'पिछले दुख रह–रह गहराए/
कठिन लगे'

ऐसे अनेक उदाहरण शांति सुमन जी के नवगीतों की सांस्कृतिक अस्मिता को सिद्ध करने के लिए काफी हैं।

प्रेसमेन भोपाल 7 नवम्बर 2009 के अंक में दिवाकर वर्मा जी ने डॉ0 सुरेश गौतम के हवाले से अपने लेख में रेखांकित किया है कि 'नवगीत की परंपरा में जनवादी स्वर की सुगबुगाहट लेकर शांति सुमन का सौमनस्य व्यक्तित्व उभरकर सामने आया है। कवयित्री का रचना–संसार प्रदर्शन–प्रिय ओढ़ी हुई भावुकता के प्रति साग्रह नहीं है।'

डॉ0 सुरेश गौतम के इस कथन से सहमत हूँ मैं भी इस शर्त के साथ –

'कच्चे गीतों से अच्छा है/नारा एक लिखो
बँधे हुए द्वीपों से बेहतर धारा एक दिखो।'

गीतों के अतिरिक्त उनके गद्य–लेखन पर मनीष रंजन का आलेख भी उल्लेखनीय है। किन्तु इनका गद्यकार इतना समृद्ध नहीं है। तथापि एक उपन्यास, एक आलोचना ग्रंथ और कुछ कहानियों के साथ समीक्षाएं भी इनके प्रदेय हैं। कभी न प्रकाशित होने के लिए लिखी गई चार या पांच कहानियाँ उनके मानसिक अंतर्द्वन्द्व या स्वांतः सुखाय परितोष के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आई हों। उपन्यास 'जल झुका हिरन' की कथावस्तु महाविद्यालयीय छात्र–राजनीति का प्रतिफलन है।

शान्ति सुमन की कविता में एक सामान्य वैचारिक धरातल है। पाठक/श्रोता/मंच और कवि के बीच भावना का पर्यावरण जब संवेदना के स्पर्श से सहृदय को अपने संस्पर्श से रोमांचित करता है तो अंतस्थल में पूर्व स्थित रसात्मक अनुभूतियां परिपक्व होकर रसात्मक वैभोर्य को रागात्मक संवेदनाओं से जोड़ देती हैं। शांति सुमन जी के जनवादी

नवगीत लेखन के रागात्मक पर्यावरण में श्रोता/पाठक कभी सम्मोहित, कभी आश्चर्यचकित तो कभी आत्ममुग्ध होता हुआ रसलीन हो ब्रह्मानंद सहोदरा गीत–सलिला के पुण्य प्रवाह में अवगाहन करने लगता है। यही वह बिन्दु है जहाँ कवि और पाठक/श्रोता की स्थितियाँ लुप्त हो जाती है और रह जाता हैं वह सेतु जिसे कविता कहते हैं।

शांति सुमन की गीत रचनाएँ मध्यवर्गीय, सर्वहारा वर्ग–संघर्ष की ऐसी आत्मस्वीकृतियाँ हैं जो पारंपरिक, पारिवारिक देहरी से बाहर निकल कर सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और किसी हद तक आध्यात्मिक द्विदूपताओं से लोहा लेती बेहिचक अपनी बात कहने से नहीं चूकतीं –

कँपी–कँपी खुशबू/कबूतर के पंखों पर ठहरी भोर/गोली में भरी नींद बिकती सरेआम/चाय पिलाकर चीनी के दाम जोड़ते लोग/सुधि में समाई पीड़ा घरवाली/चोंच भर अनबन लेकर उड़ती चिड़िया/धुँआ पहन नागफनी बुनते चौके/लहरों के मुँह पोंछती धूप जैसे मुहावरेदारी शांति सुमनजी के गीतों में ही मिल सकती है।

जीवन के आसपास के डिफरेन्ट शेड्स की ये रचनाएँ नई कविता की निजी प्राटेस्ट की असहज, असहाय मुद्राओं से स्वयं को बचाते हुए बड़ी सावधानी से सपाटबयानी से बचती हुई सामाजिक सरोकारों से जुड़ जाती हैं। ग्रंथ अपनी सार्थकता और लेखकीय ईमानदारी की अभिव्यक्ति है, जो स्वागतेय है।

■

गीत में फँसे कबीर

❑ भारत भारद्वाज

इधर कबीर सिर्फ चर्चा में ही नहीं, बहस के केन्द्र में भी हैं। सुदूर जर्मनी में कबीर पर आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में यदि एक तरफ 'कबीर की खोज' की जा रही है, तो दूसरी तरफ डॉ0 नामवर सिंह 'कबीर का सच' (हंस, नवंबर 1999) ढूंढ रहे हैं। यही नहीं इधर हिन्दी कवियों ने भी खासतौर से कबीर को अपने–अपने ढंग से याद किया है। प्रतिष्ठित कवि केदारनाथ सिंह के आखिरी कविता संग्रह का शीर्षक ही है – 'उत्तर कबीर तथा अन्य कविताएँ', मध्य प्रदेश के कवि अजीत चौधरी के कविता संग्रह का नाम है – 'कबीर का पता' और अब शान्ति सुमन के गीतों के संग्रह का नाम है – 'मौसम हुआ कबीर'। ऐसी स्थिति में जनमानस की भीड़ में खोए असली कबीर का पता लगना न केवल एक बड़ी चुनौती है, बल्कि कवि से मुठभेड़ भी। गौर करने की बात यह भी है कि इन तमाम उहापोहों के बीच हमने अपने समय के जिस कबीर की खोज की है, वह कबीर डॉ0 धर्मवीर की पुस्तक 'कबीर के आलोचक' (वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली – 110002) से उभरता कबीर तो कतई नहीं है। कहना न नाम होगा, धर्मवीर ने अपनी पुस्तक में अब तक हिन्दी साहित्य में हुए कबीर के मूल्यांकन को, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से लेकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी तक, जिस तरह खारिज किया हैं, हैरतंगेज है। बेशक, कबीर का नया मूल्यांकन किया जाना चाहिए। लेकिन कबीर की कविता–साखी, सबद एवं रमैनी को केन्द्र में रखकर। बहुत संभव है, कबीर के इस नए विमर्श से हम अपने समय के लिए कबीर की कविता की प्रासंगिकता ही नहीं, इस क्रांतिकारी एवं धर्मनिरपेक्ष कवि की नई अर्थवत्ता भी ढूंढें। लेकिन धर्मवीर की तरह नहीं जिन्होंने ठीक से कबीर की कविता का टेक्स्ट भी नहीं पढ़ा है।

मानव–सभ्यता के विकास से ही गीत का वर्चस्व है। ऋग्वेद की ऋचाएँ वस्तुतः गीत ही हैं। विद्यापति की पदावली, सूरदास का 'भ्रमरगीत', तुलसीदास की 'विनयपत्रिका' ही नहीं, जयदेव का 'गीत गोविन्दम् भी'। यह परंपरा महाकवि निराला में आकर खत्म नहीं होती, आगे भी बढ़ती है। हिन्दी में गीतकारों की एक पूरी पीढ़ी है। यदि हिन्दी साहित्य में इसे गंभीरता से नहीं लिया गया तो यह हमारा दुर्भाग्य है। अभी डॉ0

नंदकिशोर नवल ने निराला : कृति के साक्षात्कार खंड 2 में निराला के गीतों पर टिप्पणी करते हुए लिखा है : 'निराला का गीत–काव्य विपुल है और उसके आधार पर वे हिन्दी के महान गीतकारों – विद्यापति, सूर और तुलसी से तुलनीय है। गीतों में अभिव्यक्त उनकी संवेदना कविता के समकक्ष है। साथ–साथ अतिशय गत्यात्मक, जिसमें उनके रूपाकार में भी परिवर्तन होता गया है। निराला की खूबी यह है कि उन्होंने प्रत्येक काल में किसी सर्जनात्मक चुनौती का सामना करते हुए अपने गीत रचे। उनके अंतिम काल के गीत अपनी ताजगी के कारण हिन्दी में छायावाद के बाद नए गीतों की रचना का द्वार खोलते है।

शान्ति सुमन 1970 से सिर्फ गीत ही लिखती रही हैं – नवगीत या बाद में जनवादी गीत। मेरे जानते रचना की प्राथमिकता अन्ततः जन के प्रति ही होती है। आप इसे चाहे किसी नाम से पुकारिए। शान्ति सुमन के 'ओ प्रतीक्षित' (1970), 'परछाईं टूटती' (1978), 'सुलगते पसीने' (1979) एवं 'पसीने के रिश्ते' (1980) के बाद अपने नए गीत संग्रह 'मौसम हुआ कबीर' तक जहाँ पहुंची हैं, न केवल लंबी गीत–यात्रा तय की हैं, बल्कि इस संग्रह तक आते–आते अपनी जमीन एवं लोक संस्कृति से पूर्णतः जुड़ गई हैं। लोक संस्कृति की गंध ने उनके गीतों को न केवल अपने समय की बेचैनियों से जोड़ दिया है, बल्कि शोषित, प्रताड़ित जन के उस संघर्ष से भी, जिसके लिए वे शुरू से ही प्रतिबद्ध रही हैं। यदि उनके गीतों में कहीं–कहीं आधुनिक गजल का लटका–झटका है तो वह उपेक्षणीय है।

इस पुस्तक के बल्ब में जो कुछ लिखा गया है, उस पर मैं ध्यान नहीं दे रहा। लेकिन अपनी भूमिका में शान्ति सुमन ने लिखा है – 'विचारों की अभिव्यक्ति जहाँ राजनीति तथा उसमें मिलते–जुलते अन्य रूपों के द्वारा प्रत्यक्षतः अनुशासित होती है, वहाँ जनवादी गीत बिम्बों और प्रतीकों का आश्रय लेता है। बिम्बों के अभाव में गीत–रचना का अस्तित्व ही संकट–ग्रस्त हो सकता है।' यह पूरा सत्य नहीं है यदि हम निराला के गीतों को देखें तो।

शान्ति सुमन के गीतों में समाज के प्रताड़ित एवं शोषित अनुभव ही नहीं, उत्ताप भी हैं। अपने गीतों में जन–गण–मन की दुखद स्थिति का संकेत करती वे हस्तक्षेप भी करती हैं। एक सार्थक हस्तक्षेप। लेकिन यहीं गीत चालू फैशन बन जाता है।

इस पुस्तक पर रेवती रमण की अभिशंसा 'लाल कवच पहने गीत' से सहसा मुझे 'पतलून पहिने बादल' ही नहीं, 'हरी घास पर लाल घोड़े' भी याद आए। यह मात्र संयोग है। उन्होंने जिस तरह से गीत को राग–विराग से अलगाते शान्ति सुमन के गीतों पर टिप्पणी की है – 'डॉ0 शान्ति सुमन राग और रूप ही लिखती रहीं, विराग और अरूप ने कभी उन्हें आकर्षित नहीं किया तो उसके पीछे उनकी प्रगतिशील यथार्थ की समझ और विकासशील वैज्ञानिक अर्न्तदृष्टि है।' यह पूरा सच नहीं है। राग और विराग हमारे जीवन की अन्तर्ध्वनि है। ठीक जीवन एवं मृत्यु की तरह। ऐसा हो ही नहीं सकता कि कोई सिर्फ राग एवं रूप की कविताएँ या सिर्फ गीत लिखें, विराग की नहीं। उन्होंने इस संकलन के पहले ही गीत पर, 'थमो सुरूज महाराज' पर ठीक से ध्यान नहीं दिया। इस गीत की आरंभिक पंक्तियाँ हैं –

थमो, सुरुज महाराज/नयन काजर भर लें
बोये पिया पसीना/फसल सगुन कर लें।

कहने की जरूरत नहीं, जहाँ से इस गीत को कवयित्री ने उठाया है, उसमें मिथक ही नहीं राग–विराग की भी एक क्षीण एवं पतली रेखा है। फिर भी लगता है, लोक मुहावरे से उठती आरंभिक पंक्तियाँ पूरे कथ्य के साथ अंतिम परिणति तक नहीं पहुंचती। गीत को सिर्फ गीत बनाने से ज्यादा जरूरी है उसे समय के यथार्थ की संवेदना से जोड़ना। लेकिन अंततः गीत की जो कोमल प्रकृति है, उसमें अपने समय के कठोर यथार्थ का संकेत तो हो सकता है लेकिन उससे दुर्धर्ष संघर्ष नहीं। निराला के गीत भी प्रायः अपने जीवन की निराशा, प्रकृति–प्रेम या स्तुति के रूप में ही लिखे गए हैं। निश्चित रूप से पाठकों की दिलचस्पी कविता संग्रह के शीर्ष–गीत 'मौसम हुआ कबीर' में भी होगी। इस गीत में हवा में साहस भरने के बावजूद मौसम उस तरह कबीर नहीं हो पाता जैसे सचमुच फक्कड़ कबीर थे। फिर भी यह संग्रेह हिन्दी गीत के पाठकों को आह्लादक एवं सुखद लगेगा क्योंकि शान्ति सुमन में गीत के भावों में प्रवेश करने की ही नहीं, अपने विकट समय के जटिल यथार्थ को समेटने की आकुलता भी है। मेरे लिये उनका यह गीत संग्रह हिन्दी गीत की दुनिया में खिंची गई एक सिंदूरी लकीर की तरह है।

■

शान्ति सुमन की गीत रचना और दृष्टिः एक समग्र मूल्यांकन

❑ दिवाकर वर्मा

सामान्यतः जिज्ञासु पाठक, अध्येता और शोधार्थी अपने रचना समय के महत्वपूर्ण कवि, लेखक, आलोचक आदि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की झलक पाना चाहते हैं। इस दृष्टि से उन्हें एक ऐसे संकलन की खोज रहती है, जिसमें वांछित रचनाकार के विषय में अपेक्षित जानकारी संजोयी गयी हो और वह जानकारी एक विहंगम–छवि के दर्शन कराने में सक्षम हो। ऐसी ही सृजनात्मक–उत्सुकता के शमन हेतु दिनेश्वर प्रसाद सिंह 'दिनेश' ने जो सम्पादकीय अनुष्ठान किया है, उनके ग्रन्थाकार रूप को 'शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि' संज्ञा से अभिहित किया गया है। लगभग चार सौ पृष्ठों के इस ग्रन्थ में डॉ0 शान्ति सुमन को समेकित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। उनके व्यक्तिगत–साहित्यिक जीवन, वैचारिक रुझान एवं सृजनात्मक अवदान का लेखा–जोखा उनचास (जिसमें एक आलेख स्वयं कवयित्री का भी है) विचारपरक लेखों/निबंधों के माध्यम से संकलित किया गया है। इस सारस्वत–यज्ञ में हव्यार्पण करने वाले रचनाकारों में अधिकांश निबन्ध एवं कतिपय विचारांशों के रूप में उपस्थित हैं। स्वयं संपादक 'दिनेश' के अतिरिक्त राजेन्द्र प्रसाद सिंह, डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद, डॉ0 सुरेश गौतम, कुमार रवीन्द्र, सत्यनारायण, नचिकेता, यश मालवीय, डॉ0 अशोक प्रियदर्शी, डॉ0 पूनम सिंह, मनीष रंजन, सुजाता सिन्हा, डॉ0 पुष्पा गुप्ता प्रभृति कुछ ऐसे नाम हैं, जिन्होंने इस विराट उपक्रम में अपना उल्लेखनीय योगदान दिया है।

परिचायत्मक ग्रन्थ 'शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि' पर समीक्षात्मक दृष्टि डालने से पहले उसमें वर्णित विषयों की विवरणात्मक जानकारी प्राप्त करने के लिए ग्रन्थ के सम्पादक के कुछ सम्पादकीय अंशों को यहाँ उद्धृत करना अत्यंत समीचीन होगा –

"हिन्दी के नवगीत में शान्ति सुमन का आगमन एक घटना की तरह हुआ। साठ और सत्तर के दशक में इनके नवगीत बहुचर्चित और सुप्रसिद्ध हुए। ...शान्ति सुमन की गीत–रचना इस बात के प्रमाण हैं कि

वे अपने समय की चुनौतियों से टकराती रही हैं, लगातार अमानवीय और अभद्र होते जा रहे जीवन–यथार्थ से जूझती भी रही हैं। नवगीत के उन्मेष के काल में जब कई रचनाकार नवगीत की प्रतिष्ठा के उन्नयन में जुड़े थे, ...मुजफ्फरपुर की एक युवा गीतकर्त्री शान्ति सुमन भी थीं और प्रमाण का दस्तावेज लेकर उनका नवगीत–संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' प्रकाशित हुआ था। ...वह शान्ति सुमन थीं जिन्होंने समय के अनुसार अपनी गीत–रचना की जमीन बदलकर जनवादी गीतों की रचना भी की और जनवादी गीत के बड़े हस्ताक्षरों में एक हुईं। जनवादी गीत की बदली हुई जमीन पर भी उनका होना एक घटना हुआ और यहाँ भी उन्होंने अपना होना प्रमाणित किया।''

डॉ0 शान्ति सुमन एक श्रेष्ठ गीतकर्त्री के साथ ही निष्णात गद्य–लेखिका भी हैं। गद्य के रूप में उनका एक उपन्यास 'जल झुका हिरन', एक आलोचना की पुस्तक 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य', कुछ समीक्षाएँ और कुछ कहानियाँ प्रकाश में आये हैं। समीक्ष्य ग्रन्थ में प्रकाशित उनका आलेख 'आत्मकथ्य' इस तथ्य का साक्षी है। ग्रन्थ की समीक्षा की दृष्टि से उसके कुछ अंशों पर दृष्टिक्षेप उचित होगा –

''...गीत को मैं अपने से अलग नहीं मानती। ये शब्द, भाव, विन्यास कैसे और कहाँ से आते हैं यह तो केवल वही बता सकते हैं जो विवश करते हैं कुछ लिखने के लिए और इसमें संदेह नहीं कि जब वे आते हैं तो उन्हें बैठने के लिए जगह, तोड़ने के लिए तिनके और करने के लिए कुछ बातें मिल ही जाती है। यह रचनाकार का अपना एकान्त है। उसका व्यक्तिपरक होकर भी सामाजिक।''

शान्ति सुमन गीत के प्रति विघ्नसंतोषियों के दुर्भाव की चर्चा करते हुए कहती हैं –

''आज से दस वर्षों से पूर्व से ही यह कुप्रचार चल रहा है कि जनता और साहित्य के बीच विशेषकर गीत–कविता के बीच संवाद की स्थिति नहीं है। इसको एक बुर्जुआ प्रचार मानना चाहिए। सच तो यह है कि गीतों और कविता का जनता के साथ संपर्क पहले से अधिक प्रगाढ़ हो रहा है।''

वह सार्वकालिक महत्व के गीतों की चर्चा करती हैं –

''हिन्दी में ऐसे गीत भी लिखे गये हैं या लिखे जा रहे हैं जो वस्तु और शिल्प दोनों में एकदम तात्कालिक हैं। उनका तात्कालिक प्रभाव भी हो, पर वे गीत उस घटना विशेष के साथ ही समाप्त हो जाने वाले हैं। कुछ ही घटनायें इतिहास में अपनी जगह बनाती है। शेष तो नदी की लहरों की तरह आती–जाती रहती हैं। ऐसे गीत कालजयी नहीं होते।''

उन्होंने नवगीत में जनधर्मिता के तत्त्वों की उपस्थिति की चर्चा करते हुए जनवाद के सम्भ्रम का भी उल्लेख किया –

''नवगीत का एक सकारात्मक पक्ष यह था कि तारसप्तक या अन्य सप्तकों ने जनभाषा का जो पक्ष लिया था, उसको नवगीत ने अन्यतम परिणति तक पहुंचाया। नवगीत की इस जनभाषी चेतना ने जनवादी गीतों में एक स्वस्थ भूमिका का निर्माण किया। ...आज इस अंतःपरीक्षण को भी साथ रखना है कि जनवादिता के नाम पर कोई मोहक भ्रम नहीं फैले। सामन्तों और इजारेदारों का विरोध करती हुई रचना सावधानी के अभाव में प्रतिक्रांतिकारी भी बन जा सकती है। राजनीति जब व्यवसाय बन जाये, सत्ताधारी और व्यवसायी में सीधी साँठ–गाँठ हो जाये तो युद्ध और शान्ति दोनों स्थितियों में ये शासन से जुड़ जाती हैं।''

डॉ0 शान्ति सुमन समकालीन कविता में गीत को सुप्रतिष्ठापित करने के अनथक प्रयास करते हुए सृजनरत हैं। इस प्रयास में उन्होंने नवगीत से जनगीत तक की यात्रा करते हुए अगणित कालजयी गीतों की रचना की हैं। किन्तु, उनके रचना–संसार पर दृष्टिक्षेप से एक तथ्य उभर कर आता है कि उनके कालजयी गीत वे हैं जो राजनीतिक न होकर, व्यापक मानवीय चिन्ता से सम्पृक्त हैं। वस्तुतः हमारे रचना–समय का गीत जीवन को समग्र और समाज को विराट रूप में देखता महसूसता और अभिव्यंजित करता है। वह समाज को ईश्वर मानता है और ईश्वर को खण्डों में विभाजित नहीं किया जा सकता। गीत सर्वसमावेशी एवं सर्वसमभावी है क्योंकि साहित्य का कार्य आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का शब्दचित्रण करना है। मानवीय चेतना से ओत–प्रोत ऐसी रचना ही साहित्य है और उससे इतर जो है, वह साहित्य न होकर राजनीतिक पोस्टर बनकर रह जाने वाली है जिसका सार्वकालिक महत्व नहीं हो सकता। वह कालजयी नहीं हो सकती, क्योंकि राजनीति अल्पजीवी होती है। हाँ, राजनीति को संचालित करने वाले राजनीतिबाज सहज,

सरल और निश्छल साहित्यकार का अपने पक्ष में उपयोग करने में अवश्य ही दक्ष होते हैं। इसी तथ्य को डॉ0 सुप्रिया मिश्रा ने अपने आलेख 'शान्ति सुमन का गीत सौन्दर्य' में इस प्रकार रेखांकित किया है –

...और इसी सच के उजास में इस संघर्षजीवी वर्ग से जुड़कर शान्ति सुमन प्रकृति से एकात्म हो जाती हैं और डॉ0 शिव कुमार मिश्र के शब्दों में "शान्ति सुमन के गीत मानवीय चिन्ता के एकात्म से उपजे गीत लगते हैं।"

यह 'मानवीय चिन्ता का एकात्म' किसी राजनीकि वाद–विचार अथवा दल के चिन्तन का विषय नहीं हो सकता, क्योंकि एकात्मभाव विराट की चिन्ता करता है, वर्ग की नहीं। विराट में सभी वर्ग समाहित हो जाते हैं।

ग्रन्थ में संकलित समस्त आलेखों के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि उनमें से अधिकांश एक विशिष्ट विचारधारा और रंग से आप्लावित हैं। इसमें कवयित्री के वक्तव्य भी यदा–कदा सम्भ्रम की स्थिति उत्पन्न करते रहे हैं – ***"कच्चे गीतों से अच्छा है/नारा एक लिखो/ बँधे हुए द्वीपों से बेहतर धारा एक दिखो...।"*** जबकि विदुषी कवयित्री भी भली– भांति जानती हैं कि नारा कितना भी मन से लिखा जाये, वह साहित्य नहीं हो सकता।

राजनीति प्रेरित ऐसा नारा काल की समधि में स्वयंमेव दफन हो जायेगा। शान्ति सुमन स्वयं को जनवादी सिद्ध करने को कुछ भी कहें, कतिपय गीतों को छोड़कर उनके अधिकांश गीत उदात्त मानवीय संचेतना से अभिषिक्त हैं। लेकिन पोस्टर बनी कुछ रचनाओं को सत्यनारायण अपने आलेख "टूटे न तार....।" में तर्जनी दिखलाते हैं –

"....सुमन के कई गीत विचारधारा के अतिरेक से आक्रान्त हैं। उनमें कविता नहीं कोरी विचारधारा है। ....विचारधारा का अतिरेक तो एक गीत में गाली तक उतर आया है। 'लाल पसीना' कुछ इस अन्दाज में चू रहा है।"

यदि इस ग्रन्थ के सम्पादन का उद्देश्य श्रेष्ठ गीतकर्त्री (जिन्हें देश की प्रथम नवगीतकर्त्री स्वीकारा गया है) डॉ0 शान्ति सुमन को जनवादी (मार्क्सवादी) स्थापित करने का प्रयास है तो सम्पादक किसी सीमा तक

सफल हुए हैं। किन्तु इस उपक्रम से न तो अप्रतिम कवयित्री के साथ और न ही मानवीय–एकात्मवादी साहित्य के साथ न्याय हुआ। वस्तुतः, डॉ0 शान्ति सुमन के गीत इन संकुचित सीमाओं का अतिक्रमण कर संपूर्ण जीवन और जगत को अपनी वृत्तीय–परिधि में समाहित कर चुके हैं। इस तथ्य को देश के सुप्रसिद्ध और इकलौते ललित–समालोचक (मैंने अपने एक आलेख में उन्हें गीत के सांस्कृतिक–आलोचक की संज्ञा से अभिहित किया है) डॉ0 सुरेश गौतम ने इन शब्दों में रेखांकित किया है –

"नवगीत की परम्परा में जनवादी स्वर की सुगबुगाहट लेकर शान्ति सुमन का सौमनस व्यक्तित्व उभर कर सामने आया है। नवगीत जिस अंगड़ाई की नजाकत लेकर आया था उस समय शान्ति सुमन ने सुमन जैसे सुरभित गीत लिखे। कवयित्री का रचना संसार प्रदर्शनप्रिय ओढ़ी हुई भावुकता के प्रति साग्रह नहीं है। इनकी रचनाशीलता में एक परिमार्जित और सुपठित प्रतिभा के दर्शन होते हैं। ...जनवादी गीत का नेतृत्व हथियाने की साहित्यिक उठा–पटक में कवयित्री स्वयं ही अपने नवगीतों को जनवादी गीतोंके समक्ष बौना बना देती हैं जबकि इनके नवगीत व्यक्ति और समाज के जीवन्त बिम्ब बनकर उभरे हैं। नवगीत की मानक कसौटी पर इनके अधिकांश गीत खरे हैं। जिस संघर्ष और सर्वहारा क्रांति की बात कवयित्री जनवाद का नारा देकर करती हैं वह नवगीत की भी रचनात्मक शक्ति है और कवयित्री ने इस शक्ति का सफलता से बखूबी प्रयोग किया है। इसलिए मार्क्सवादी सिद्धान्तों को दिमाग में रखकर पोटली को कुछ खास शब्दों के माध्यम से इधर–उधर करते रहने से गीत प्रभावशील नहीं हो जाते। उसे जनवादी गीत कहने का संतोष यदि कवयित्री को सुकून देता है तो और बात है।"

जबकि डॉ0 गौतम अपने इसी आलेख "नवगीतीय जनवादी स्वर : शान्ति सुमन" में गीत–कवयित्री की काव्य प्रतिभा को स्वीकारते हैं –

"नवगीत दशकों में सम्मिलित अनेक नवगीतकार तो कवियत्री का पासंग भी नहीं हैं। नवगीत की विकास चेतना में रचयित्री शान्ति सुमन की गीत–पदचापें अंकित होनी चाहिए। इनका नकार गुटपरस्त साहित्यिक राजनीति का हिस्सा तो हो सकता है, नवगीत के साथ निष्पक्ष व्यवहार–न्याय नहीं। अतः शान्ति सुमन का नाम लिए बिना नवगीत का इतिहास

अधूरा एवं अपंग होगा।'' समग्रतः – दिनेश्वर प्रसाद सिंह 'दिनेश' द्वारा सम्पादित परिचयात्मक ग्रन्थ 'शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि' डॉ0 शान्ति सुमन के व्यक्तित्व, कृतित्व और चिन्तन को प्रकाशित करने में पर्याप्त सफल रहा है। मुझे विश्वास है कि इससे प्रेरित होकर कवयित्री राजनीतिक प्रतिबद्धता से परे एकात्म भाव से सम्पृक्त विराट–प्रतिबद्ध होकर सार्थक साहित्यिक भूमिका का निर्वहन करेंगी।

■

लोकगीत के सांचे में ढले नवगीत : 'भीतर-भीतर आग'

❑ नचिकेता

'भीतर–भीतर आग' उमाकान्त मालवीय के शब्दों में हिन्दी नवगीत की एकमात्र कवयित्री डॉ0 शान्ति सुमन के पचहत्तर नवगीतों का नवीनतम संग्रह है। यह उनका छठवाँ गीत संग्रह है। अपनी प्रगतिशील सामाजिक और राजनीतिक सचेतनता की बदौलत नवगीत से जनवादी गीत (जनगीत) तक की सफल यात्रा सम्पन्न करने वाली गीतकार शान्ति सुमन ने वस्तुतः अपनी संघर्षोन्मुख जनपक्षधरता, परिवर्तनकामी चेतना और वस्तुपरक रचना दृष्टि की सकारात्मक पहलकदमी के जरिए जनगीत के बदलते सौन्दर्यशास्त्र के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनके गीतों की वैचारिक अंतर्वस्तु में अंतर्निहित क्रान्तिकारी सामाजिक चेतना, परिवर्तनकामी जनपक्षधरता, संघर्षोन्मुख लोक चेतना और लोकगीत के मुहावरों से समृद्ध शांति सुमन के गीत संघर्षशील मेहनतकश अवाम, मध्यवर्गीय जन–साधारण और क्रांतिकारी एवं प्रगतिशील बुद्धिजीवियों में समान रूप से लोकप्रिय हैं। शान्ति सुमन के गीतों की सबसे बड़ी खासियत लोकरंग में रंगे इंद्रिय संवेग चाक्षुष और बेला के फूल की तरह टटके बिम्ब–निर्माण, रूपक और सादृश्य विधान के गठन में उजागर होती है। प्रेम, प्रकृति और सौन्दर्य की चेतना, ग्राम्य संस्कृति की अंतरंगता हासिल कर, उनकी वैचारिक अंतर्दृष्टि और मूल्य चेतना में तब्दील हो गयी है। शान्ति सुमन के गीतों की भाषिक संरचना और वैचारिक अंतर्वस्तु में सन्निहित क्रान्तिकारी राजनीतिक चेतना, यथार्थवादी सामाजिक चेतना और संवेदनात्मक कला–दृष्टि के समन्वय और सामंजस्य में द्वन्द्वात्मक एकता को परखकर ही, कदाचित, मैनेजर पाण्डेय ने उन्हें 'नयी चेतना को लोकगीत के सांचे में ढलकर मानवीय करुणा, शोषित–पीड़ित जनता की एकता और सहानुभूति तथा यातना और पीड़ा' के गीत लिखने वाली समर्थ गीतकर्त्री माना है। हालांकि 'परछाईं टूटती' और 'भीतर–भीतर आग' के गीतों के बिम्ब–संयोजन में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। उनके बिम्ब जितने जीवित हैं, उतने अद्वितीय और अत्यंत ही प्रभविष्णु हैं। लोकचेतना की माधुरी से लबरेज 'एक गतिशील, अर्थवान और ऐंद्रिक बिम्ब–निर्माण के प्रति शान्ति सुमन जितना जागरूक और

सावधान दिखलाई देती हैं, भाषा के प्रति उतनी ही लापरवाह और असावधान दृष्टिगत होती हैं। अन्यथा वह एक ही गीत के एक ही अवतरण/बन्द में एक साथ तुम और तेरे सर्वनाम के इस्तेमाल से जरूर परहेज करतीं। शान्ति सुमन जैसी पढ़ी–लिखी और समझदार कवयित्री के द्वारा भाषा और व्याकरण की यह अवहेलना एक अक्षम्य अपराध ही मानी जायेगी। सामाजिक चेतना और राजनीतिक संदर्भ के द्वन्द्व, सामाजिक अंतर्विरोध और व्यापक जनता के जीवन–संघर्ष और मुक्ति–संघर्ष की सार्थक अभिव्यक्ति देने के प्रयास में संलग्न गीतों के बनिस्पत घरेलू–पारिवारिक–सामाजिक और मानवीय रिश्तों के आत्मसंघर्ष को व्यक्त करने वाले गीत अधिक प्रभावशाली बन पाए हैं। इन्हीं गीतों की रचना में शान्ति सुमन अपने पूरे रंग में दिखाई देती हैं –

"बाहर की तो बात पता है/तुम घर की लिखना/
जाते होंगे बूढ़े बाबा/सुबह रोज टहलने/
दादी अम्मा तुलसी चौरा/लगी साफ करने/
सूरज कैसे उगता है/यह भी जरूर लिखना/
रोशन आनाकानी करता/है हरदम उठने में/
माँ का समय चला जाता/उसका बस्ता करने में/
फिर वह कैसे रहता है/इतनी बातें लिखना।"

■

सुमन की सुवास और जनजीवन का संत्रास : 'धूप रंगे दिन'

❑ डॉ० अशोक प्रियदर्शी

शान्ति सुमन के गीतों को पढ़कर–सुनकर भारतीय, विशेषकर उत्तर भारतीय गाँव–गिरांव का घर–आंगन, लोग लुगाई, उनकी छोटी–छोटी खुशियाँ, उनके जीवन का संत्रास और जिंदगी की जद्दोजहद मूर्त आकार लेकर सामने आ जाती है। ऐसा शायद इसलिए है कि शांति सुमन गीत लिखती नहीं, गीत उनके हृदय से निकल कर होठों से फूट पड़ते हैं। गीतों को अपना साथी बनाकर उन्होंने अपने जीवन के रिक्त को भरने का उपक्रम किया है – *'गीत को ही वर लिया मैंने/रिक्त अपना भर लिया मैंने।'* इस संकलन का पहला ही गीत है – 'कोशी के कछेर की लड़की' – *'पहली बार ट्रेन में बैठी/पहली बार शहर आयी/कोशी के कछेर का अपना घर आंखों में भर लायी/खोज रही है खपरैलों पर, पसर गयी लौकी की लतरें/गिरने को दीवार मगर है, थाम रही छानों की सतरें/दूब–धान की जगह जानकी, आंचल में ही पियराई....।'* दूब–धान गांव–गिरांव के मांगलिक अवसर के प्रतीक जैसा है। इसीलिए इन गीतधर्मा कवयित्री के गीतों में ये बार–बार आते हैं – *'स्वागत की बेला है, झरने दो हरसिंगार/दूब–धान से संवार, लक्ष्मी घर आयी है।'* गांव से आकर शहर में मेहनत – मजदूरी करते लोगों की पीड़ा को नितांत आत्मीय स्वर देता यह गीत देखें – *'नहीं पास में बीड़ी थी, और नहीं घड़े में पानी/बैलों–सा खटकर जब आया, बड़े लाल घर में/चार घरों में बरतन मलती, उसकी बड़ी बहू/सूख रहा पैसे की खातिर, उसका लाल लहू/बाताबाती में रह जाता, बड़े लाल घर में/खींच न पाता रिक्शा जब, सांसों पर ढोता ठेला/जब तक जिनगी है तब–तक, ऐसा ही होगा मेला/गोइंठा–करसी सुलगाता है, बड़े लाल घर में/एक बिछाता, एक ओढ़ता दो टुकड़े धोती के/ओमा की दूकान तक जाता, हाथ पकड़ पोती के/दुख को ही दुख सौंप रहा है, बड़े लाल घर में.../सोते में जग–जग जाता है, बड़े लाल घर में।'* 'लाल' संज्ञा इस गीत को और मर्मस्पर्शी बनाती है। अपने बच्चे को

अत्यंत लाड़–दुलार में हम 'लाल' कहते हैं। इस संकलन में कई–कई, बल्कि अधिकांश ऐसे गीत हैं जिन्हें पढ़ते हुए पूरा का पूरा आप को सुनाने की इच्छा होती है। धरती माता के संदर्भ का यह गीत देखें – *'दुख से मँजी हुई यह धरती, सोना–सोना है/माँ जैसी माँ की आंखें, फूलों का दोना है'।* ('माँ जैसी माँ।') भिखारी ठाकुर के बिदेशिया की अनुगूंज से हम उबरे नहीं हैं, शान्ति सुमन के बिदेशिया की प्रतीक्षा में बैठी घरवाली की पीड़ा को महसूस करने के लिए ('उदास चमेली') *'आंख लगी चौबारे, मन में बात सहेली की/जाने का लेती नाम नहीं, दोपहर हवेली की/कई महीने बाद कुशल, आया है लुधियाने से/शायद गिरह अंगोछे की, खुल गयी बहाने से/अब दिखी है सूरत साफ, उदास चमेली की/जाड़े में आ नहीं सका तो शाल भेज देगा/कैसा भोला है रामकसम, दुख को सहेज लेगा/थोड़ी दिखती मछली मेहंदी रची हथेली की'* (खुद के विकल्प के रूप में 'शाल' का व्यंग्य देखने–समझने जैसा है)। वर्षा के अभाव में किसान और उसकी धरती की पीड़ा को पहचानती हैं शान्ति जी – *'बरसे नहीं आशीष सावन के, फसल की देह दुबली है'*/और बरसात ठीक–ठाक हुई हो, फसल पकने को हो तब का उल्लास – *'धूप में तपने के दिन हैं, बालियां पकने के दिन हैं/किलक भरी है टहनियों में, अभी तो हंसने के दिन हैं।'* मुट्ठी भर भात के लिए लगे मुकदमे और गलत गवाही की व्यथा बारहा झेलते हैं ग्रामीण – *'गलत गवाही दी उसने/बड़ी तबाही की उसने/खूं उबालती है वह बात/अरे भाई, मुट्ठी भर भात'*/ मजदूर माँ की लोरी तो एक तरह से साक्षरता–आंदोलन का गीत है, बल्कि कहीं अधिक ईमानदार – *'लिख मेरे बेटे एक, दो, तीन/लिख–पढ़ के पहचानेगा जमीन।'* और निम्न वर्ग का गीत यों बनता है – *'आंगन आकर ताना मारे, ये सामंती दिन/एक तुम्हारे बिन।'* इस वर्ग का बड़ा होता बेटा अपनी माँ–बहन की लाचारी देखता और बड़े लोगों की ठगी देखता है तो विवश होने के अतिरिक्त और क्या कर सकता है – *'जब से देखा है माँ को आटे–सी पिसती हुई/बहन कभी तितली सी थी, अब चुभोती हुई सुई/गांव–वनों–शहरों में फाँके, अपना भाई धूल'*/*'सफर बड़ा यह लंबा है..., है बंजर मिली जमीन।'* गोया, इस संकलन के गीत जीते

हुए जीवन की बोलती तस्वीर हैं। *'फटी हुई गुदरी सीते हैं/जिया हुआ जीवन जीते हैं।'* मेधा पाटकर के लिए कवयित्री की शुभाशंसा देखिए – *तुम तपों की साधना की फलमयी गरिमा/नयी ऊर्जा की शिखा–सी वैदिकी महिमा/सामधेनी समर की शांतिमय सुर–तान।* नहीं, इस संकलन को शुक न्याय से पढ़कर जी नहीं भरेगा। इसके हर गीत को पीना होगा, हर गीत के साथ जीना होगा।

■

शान्ति सुमन के गीतों के बारे में

❑ अमित कुमार

शान्ति सुमन महादेवी वर्मा के बाद हिन्दी गीत–साहित्य में एक निदर्शन हैं। उन्होंने गीत की साधना की है। उसको पूरे मन से साध लिया है। इसलिये उनके गीतों पर कुछ कहने के लिए केवल उनके गीत ही नहीं, उनके पूर्वापर गीतों का अध्ययन भी जरूरी है। शान्ति सुमन ने गीत के धरातल पर तब प्रवेश किया जब नवगीत बनते हुए गीतको उनके जैसे रचनाकार की जरूरत थी। तब मुजफ्फरपुर एक छोटा शहर था जब अध्ययन और आजीविका के लिये उनको वह शहर मिला जहाँ अनगिनत असुविधाजनक स्थितियाँ थीं। फिर भी जीवन जीने की जिद उनकी कम रचनात्मक नहीं थी। कदाचित् कम उम्र में ही सयाने अनुभवों ने समय–साल के प्रति उनको चौकन्ना बना दिया था। इस चौकन्नापन के कारण उनकी आन्तरिक कोमलता ने वस्तुजगत का यथार्थ ओढ़ना शुरु कर दिया था। इसलिये जिन दिनों उनके समानधर्मा रचनाकार प्रेम–गीत लिख रहे थे, शान्ति सुमन ने सामाजिक, आर्थिक विसंगतियों को देखना, समझना शुरू कर दिया था। ऐसी निरायास रचनाधर्मिता की धनी शान्ति सुमन ने अपने अनेक गीत–संग्रहों के द्वारा अपनी प्रामाणिकता सिद्ध की है।

मैं एक सजग पाठक हूँ। बहुत नहीं पढ़ पाता। मेरी आजीविका इसमें अवरोध बनती है। कम पढ़ पाने के कारण ही कदाचित् मुझको पढ़ी हुई, सुनी हुई बातें याद रहती हैं। शान्ति सुमन को तब से जानता हूँ जब उनका गीत–संग्रह 'मौसम हुआ कबीर' प्रकाशित हुआ था। उस गीत–संग्रह की एक प्रति मुझको राहुल रंजन के सौजन्य से प्राप्त हुई थी। परंतु भेंट उनसे बहुत बाद में हुई। उन दिनों मंच पर वे जिन गीतों को स्वयं या जनता के आग्रह पर सुनाती थीं, उनकी कुछ पंक्तियाँ मुझको अभी भी याद हैं। वे गीत हैं –

'थाली उतनी की उतनी ही छोटी हो गई रोटी
कहती बूढ़ी दादी मेरे गाँव की।'
'चम्पा के पेड़ नहीं बाबा/महुवा के पेड़ लगाना'
'रानी के पास हैं बहुत धन/हाथी–घोड़े
कौन है जो रानी के रथ को पीछे मोड़े'

और एक गीत है –

'नहीं चाहिये आधी रोटी और न जूठा भात
यह खोटी तकदीर एक दिन खायेगी ही मात
हम गरीब मजदूर भले/हम किसान मजबूर भले
पर अपनी लाचारी का अब गीत न गायेंगे
ताकत नयी बटोर क्रांति के बीज उगायेंगे।'

इसी गीत में आगे चलकर उन्होंने कच्चे गीतों की बजाय एक नारा लिखने की बात की थी। गीत के लिए उनकी यह दृष्टि और आग्रह सचमुच उत्साहवर्द्धक है। मैं बहुत आहत हुआ जब अपने पसंद के इस गीत की इन पंक्तियों को नचिकेता के एक गीत–संग्रह में छपा हुआ देखा। मैं तय नहीं कर पाया कि गीत की ये पंक्तियाँ शान्ति सुमन की हैं या नचिकेता की। और जहाँ तक याद है शान्ति सुमन का इसपर कोई प्रतिरोध भी नहीं आया। इस बात को तो जानता हूँ कि वे बहुत सहनशील और कोमल स्वभाव की हैं। प्रतिक्रियायें उनको होती भी हैं तो उनको वे किसी अप्रिय मोड़ तक जाने नहीं देतीं। यही हुआ होगा कि उन्होंने और बार की तरह इसको भी झेल लिया होगा या मन से हटा दिया होगा। बहुत बाद में जब एक कवि–सम्मेलन में गीत पढ़कर वे मंच से उतर रही थीं तब अपनी बहन के सहयोग से मैं उनसे मिला। संयोग था कि उन्होंने इस गीत का भी सस्वर पाठ किया था। बड़े संकोच से मैंने पूछ ही लिया कि **'हम गरीब मजदूर भले/हम किसान मजबूर भले/पर अपनी लाचारी का अब गीत न गायेंगे/ताकत नयी बटोर क्रांति के बीज उगायेंगे'** – ये पंक्तियाँ तो आपकी हैं। आपने पचासों काव्य–मंचों से इस गीत का पाठ किया है, पर मैंने तो इन पंक्तियों को नचिकेता के एक गीत में देखा है – बिल्कुल मूल पंक्तियों में। उस समय तो नहीं, पर बाद में जो कुछ मैंने सुना, वह चकित कर देनेवाला था। नचिकेता ने ऐसा कई बार किया है कि दूसरे गीतकारों की पंक्ति लेकर फुटनोट में उनके प्रति साभार लिखकर काम चलाया है। रमेश रंजक आदि कई गीतकारों की पंक्तियों को अपने गीतों में इस्तेमाल कर फुटनोट में साभार का सहारा लिया है। सच्चाई यह है कि रमेश रंजक आदि के प्रति तो 'साभार' डायरी से निकलकर प्रकाशित पुस्तक तक आया। परन्तु शान्ति सुमन के गीत की इन पंक्तियों का अपने एक गीत में इस्तेमाल कर नचिकेता ने अपनी डायरी में तो फुटनोट

में 'शान्ति सुमन से साभार' लिखा, पर जब गीत–संग्रह छपकर आया तो उसमें कोई फुटनोट नहीं था। नहीं था तो शान्ति सुमन के प्रति साभार भी नहीं था। वह डायरी की चीज बनकर लोगों की दृष्टि से बचा रह गया।

नचिकेता को शान्ति सुमन '72 से राखी बाँधती हैं। उन्होंने अपने सगे भाई जैसा स्नेह उनको दिया है। नचिकेता पर छपी पुस्तक 'श्रम–सौन्दर्य का साधक' पुस्तक को पढ़कर जाना कि शान्ति सुमन की कई काव्य– यात्राओं में वे साथ थे। इस प्रकार इनके अनेक गीत–पाठ की अद्‌भुत सफलता से फलित यश के साक्षी भी नचिकेता बने थे, परन्तु वह क्या था जिससे नचिकेता एक रचनाकार के रूप में शान्ति सुमन के प्रति पारदर्शी ईमानदारी नहीं रख सके। मुँह पर काफी प्रशंसा करनेवाले नचिकेता ने जब–तब अपने लेखन में शान्ति सुमन का विरोध किया – वह विरोध छोटा भी हुआ और बड़ा भी। इसकी एक मनोवैज्ञानिक स्थिति हो सकती है। नचिकेता अपने गीतों का सस्वर पाठ नहीं कर सकते। यही सस्वरता–सुरीलापन शान्ति सुमन को अपार नाम–यश देता है। केवल गीत लिखना ही सबकुछ नहीं होता। गीत को स्वर–लय में ढालकर जनता तक पहुंचाना भी एक महत्वपूर्ण काम है जो सब नहीं कर सकते। देश के अनेकान्त आकाशवाणी और दूरदर्शन केन्द्रों से शान्ति सुमन के गीतों का लयात्मक प्रसारण होता रहा है। पटना, दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता, इलाहाबाद, लखनऊ, बनारस, भोपाल, जम्मू, कश्मीर, उदयपुर, गोरखपुर आदि कई–कई आकाशवाणी–दूरदर्शन केन्द्रों में शान्ति सुमन के नवगीत और जनवादी गीतों की गूँज उपस्थित है। जिन दिनों नचिकेता 'मार हथौड़ा ठन–ठन–ठन' लिख रहे थे, शान्ति सुमन

'पकने लगी हैं फसलें/दीखते हैं दूर के पहाड़/
रे साथी, चमकी है हँसिये की धार', 'सोने थाल
गंगाजल पानी, ये दिन अनदेखे हैं
फूटे अलमुनियम के तसले वाले दिन देखे हैं....'

आदि–आदि गीत लिख रही थीं। जिन दिनों नचिकेता अपने गीत में यह घोषणा किया करते थे – 'सपनों का मधुमास खून से लिखेंगे', उन दिनों शान्ति सुमन के कतिपय गीत पाठकों और श्रोताओं से अजस्र नाम–यश अर्जित कर रहे थे –

'थमो सुरुज महाराज/नयन काजर भर लें
बोये पिया पसीना/फसल सगुन कर लें'
या – 'खाली नहीं हाथ अपने हैं/इनमें चाबी रोशनियों की'
या – 'सड़कों पर बनते जुलूस देखूँ जब मेरे बेटे
लगता एक गलत आजादी तेरे हाथ लगी'
या – 'यह मौसम बोले न बोले/फूल बोलेगा'

और इस तरह के कई–कई गीत जनता से सीधे जुड़कर उनसे संवाद कायम कर रहे थे। कई आलोचकों ने विशेषकर डॉ0 मैनेजर पांडेय ने नचिकेता के उन गीतों पर उंगली भी उठाई थी। उनके गीतों को तात्कालिक गीत कहा था। होता यह है कि उन घटना–विशेष के अस्त होते ही गीत निष्प्रभ हो जाते हैं। परन्तु उन्हीं आलोचकों ने शान्ति सुमन के गीतों की भरपूर प्रशंसा की थी। उन्होंने साफ कहा कि 'शान्ति सुमन समाज की वास्तविकताओं और जीवन के अनुभवों के बारे में बयान या ब्याख्यान नहीं देतीं। वे चित्रों और संकेतों में अपनी बात कहती हैं।' आलोचकों ने माना कि 'शान्ति सुमन के गीतों का महत्व उनके विशिष्ट रचाव में है।' यही सब कुछ कारण हो सकते हैं जो नचिकेता को शान्ति सुमन के प्रति विरोध की भाषा बोलने–लिखने पर बाध्य करते हैं। वैसे व्यावहारिक रूप से इन दोनों के बीच काफी अपनापन और भाईचारा दिखता है। शान्ति सुमन के घर कोई उत्सव हुआ तो नचिकेता उसमें उपस्थित रहे। कई बार तो भाई होने का दायित्व भी निभाया।

यह भी सच है कि नचिकेता स्वयं न भी करें तो उनकी देखरेख में शान्ति सुमन के प्रति दुर्भावना भरी बातें छपती हैं। नचिकेता पर आलोचकों–विद्वानों के आलेखों का संग्रह 'श्रम–सौन्दर्य का साधक' में सतीश राज पुष्करणा का एक आलेख छपा है। आलेख के उत्तर भाग में जो बातें छपी हैं, उनको नचिकेता ने देखा–पढ़ा होगा और संपादक यशोधरा राठौर ने भी। शान्ति सुमन यशोधरा राठौर की प्राध्यापिका रही हैं। उनके लिए यशोधरा अजस्र विनम्र आदर भी दिखाती रही हैं, पर आत्ममुग्धतावश उन्होंने सतीश राज पुष्करणा के बकवास को छपने से नहीं रोका। मैं वस्तु सत्य को लिख रहा हूँ जिसको सतीशराज पुष्करणा जैसे बनतू साहित्यकार ने कितना गलत रूप दे दिया है। सत्य घटना यह है कि वर्ष 2004 में नचिकेता ने शान्ति सुमन की पष्टिपूर्ति के अवसर पर उनके एक सौ एक गीतों का संचयन 'पंख–पंख आसमान' नाम से

किया था जो अभिधा प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। नचिकेता ने उस क्रम में शान्ति सुमन के एक सौ एक गीतों की पाण्डुलिपि बनाई थी और उसको प्रकाशनार्थ दिया था। सतीश राज पुष्करणा जैसे सीमित दृष्टि के लोगों से नचिकेता घिरे रहते हैं। उनका आना–आना उन दिनों नचिकेता के घर में हुआ और उन्होंने शान्ति सुमन के गीतों की पांडुलिपि नचिकेता को बनाते देखा। महज इस छोटी घटना को देखकर सतीशराज पुष्करणा ने अपने उस आलेख में लिखा है कि नचिकेता शान्ति सुमन के गीतों को लिख–लिखकर पत्रिकाओं के सम्पादक के पास भेजते थे। सतीश राज पुष्करणा जैसे साहित्यकार को यह गलतफहमी हो सकती है जिसने साहित्य को भी अपने लोभ–लाभ का औजार बनाया है। नचिकेता उन लोगों की पीठ ठोंकते हैं और अपने पक्ष में ऐसे नासमझ लोगों की फौज बनाते हैं। अन्यथा सतीशराज पुष्करणा की उस गलतबयानी को प्रसिद्ध आलोचकों द्वारा लिखे गये आलेखों की समृद्ध पुस्तक में कैसे छापा गया ? यह दुखद है कि नचिकेता जैसे जिम्मेदार गीतकार ने ऐसा कैसे किया।

उपर्युक्त घटना में सतीशराज पुष्करणा माध्यम बने। दुखद है कि यह सब नचिकेता की जानकारी में हुआ और उस झूठ को उन्होंने सहन किया जबकि अपने विद्रोही तेवर के लिए नचिकेता जाने जाते हैं। उनके समृद्ध आत्म–सम्मान से भी सभी परिचित हैं।

दूसरी घटना तो इससे भी आगे है। नचिकेता ने 'पुनः' पत्रिका के अंक 19 दिसम्बर 2010 में गीत–रचना के दो आयाम शीर्षक से दो गीत–संग्रहों की समीक्षा की है। उसमें दूसरा गीत–संग्रह यशोधरा राठौर का है – 'उस गली के मोड़ पर।' कितना अंतर्विरोध है कि उस एक समीक्षा में ही नचिकेता ने 'उस गली के मोड़ पर' के ब्लर्ब पर लिखी अरूण कमल की टिप्पणी की निन्दा की है और दूसरी ओर स्वयं यशोधरा के गीतों की प्रशंसा में बिछते चले गये हैं। उनकी भाषा कभी–कभी बहुत अश्लील होती है जिसको यशोधरा राठौर जैसी भावुक गीतकार या तो समझती नहीं या फिर समझने से अस्वीकार करती हैं। नचिकेता की समीक्षा के एक लम्बे उद्धरण द्वारा इसको समझा जा सकता है – 'हिन्दी साहित्य में जो कुछ लिखा जा रहा है, वे सिर्फ संबंधों की गर्माहट को बनाये रखने का एक जरिया है। यानी तुम मुझ पर लिखो, मैं तुम पर। इस लिखने–लिखाने में आपसी संबंध गर्म होते

रहते हैं' – ये शब्द हैं अंशुमाली रस्तोगी के। पर नचिकेता अपने फायदे के लिए इन शब्दों को उद्धृत करने से बाज नहीं आते। नचिकेता ने जो कुछ लिखा है उसका एक वाक्य ही इस प्रसंग को सत्यापित करता है – 'आपसी संबंधों में ढेर सारी गर्मी पैदा करने की एक कोशिश युवा कवयित्री यशोधरा राठौर के पहले गीत–संग्रह 'उस गली के मोड़ पर' के ब्लर्ब पर छपी अरूण कमल की टिप्पणी में प्रख्यात कवयित्री, बहुआयामी, अद्वितीय, विलक्षण जैसे विशेषणों के प्रयोग में परिलक्षित होता है।' सीधी बात है कि यशोधरा राठौर के लिए उन विशेषणों के प्रयोग का एकाधिकार उनको ही प्राप्त है तो अरुण कमल की टिप्पणी उनको दुख देगी ही और यहीं से उनकी निन्दा का अध्याय शुरू होता है। आपने कहा तो ठीक, दूसरों ने कहा तो गलत। यशोधरा राठौर के दूसरे गीत–संग्रह में कायाकल्प इसलिए नचिकेता को दिखता है कि उनके शब्दों के पीछे वे स्वयं हैं। यशोधरा के गीतों को आकार देने में वे भूल गये कि वे अपने ही भावों–विचारों और छन्द–लय की प्रतिलिपि बना रहे हैं। वस्तुतः वे यशोधरा राठौर को शान्ति सुमन के आमने–सामने खड़ाकर उनको उनसे विशिष्ट सिद्ध करने का बीड़ा उठा चुके हैं। उनको पता होना चाहिये कि बनाने से न कोई महादेवी वर्मा बनती है, न शान्ति सुमन। नचिकेता ने उस समीक्षा में कितनी सांघातिक बात लिखी है कि यशोधरा जैसी नयी कवयित्री इतना अच्छा लिखती है और शान्ति सुमन जैसी श्रेष्ठ गीतकर्त्री को चुस्त छंद लिखने नहीं आता। अब किसलिये वे यह सब करने पर उतारू हो रहे हैं।

शान्ति सुमन के गीतों की जब बात होती है तो कुछ समानधर्मा प्रासंगिक गीतकारों के कहे हुए उन शब्दों का स्मरण होता है जो उन्होंने इनके गीतों को पढ़कर, इनके विचारों, अनुभवों और अनुभूतियों से सरोकार रखते हुए कहे हैं। अनिरूद्ध नीरव ने लिखा था कि 'सधी हुई कलम और गहरी संवेदनात्मक सोच आपके नवगीतों को अलग बानगी तो देती ही हैं, काव्य के उस स्वाद की भी याद दिलाती हैं जो भूली–भूली जैसी कुछ हो रही है। अच्छा लगा। ग्रामीण परिवेश के गीतों में आपकी गहन दृष्टि दिखती है। अपनी दृष्टि को काजलित किये रहिये..... नजर लग जायगी।'

सुप्रसिद्ध गीतकार भारतभूषण ने शान्ति सुमन को अपने बारे में कम, परन्तु उनके बारे में बहुत अधिक लिखा है। यह उन्होंने तब लिखा था

जब शान्ति सुमन पर सम्पादित पुस्तक – 'शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि' उन्होंने पूरी पढ़ ली थी। उन्होंने प्रसन्न होकर लिखा था – 'तुम्हारा संपूर्ण काव्य–व्यक्तित्व अब मुझे स्पष्ट है। मेरी बधाई और शुभकामना स्वीकारें। इस पुस्तक में इतने विद्वानों के लेख पढ़कर मैं कुछ और लिखने में असमर्थ हो रहा हूँ। वैसे भी मुझे अच्छा गद्य लिखने में असफलता ही रहती है। गद्य लिखना नहीं आता। मेरा यश, प्रसिद्धि सब 'यश अपयश विधि हाथ' से मिले। मैं स्वयं को बड़ा कवि भी नहीं मानता। सब कुछ जाने कैसे होता रहा है। एक बात अवश्य है कि मैं सशरीर भावुक और प्रेममय हूँ। कुछ छपे हुए पृष्ठ और एक संग्रह 'ये असंगति' भेज रहा हूँ। मुझे पूरा–पूरा समझने–जानने को यही पर्याप्त है। आपसे भेंट भी दो–तीन बार ही हुई है। काश! कुछ पहले हुई होती। कुछ तो मुझ पर आपकी शैली का प्रभाव पड़ता ही। आपके, जनवादी गीतों में खेत और किसानी के इतने रूप, कष्ट और संदर्भ शायद ही कुछ कवि में होंगे। मैंने कभी गांव को अनुभव ही नहीं किया, गया भी नहीं किसी गांव में। सारा जन्म मेरठ में ही कट गया। निर्धनता शरीर से सही है, मन से नहीं। 'जो जस करहिं सो तस फल पावा' ही सोचता रहा। ...आपकी इस पुस्तक के अंत में दिये सभी गीत पूरे मन से पढ़े हैं। तुम्हारी भाषा–सम्पदा और शब्दों का सार्थक प्रयोग अद्‌भुत है। पृष्ठ 317 अभिव्यक्ति का एकदम नयापन है। हर पंक्ति नयापन लिये है। पृष्ठ 318 'पत्थरों का शहर', 'क्रोशिया काढ़े दिन बीते', 'अब तेरे नाम नहीं ....कर्ज', 'एक तिनका धूप', 'धूप–छंद चट्टानें.....चूसती', 'हो गया है इन्तजार विदेह....लौट आ'। पृष्ठ 327 – 'माँ की परछाईं... धाम', 'कहीं.... गुमनाम', 'कोई बच्ची', पृष्ठ 329 – 'अपना तो घर गिरा... गांव की', 'रानी का गीत', लाल कवच पहने', पृष्ठ 335 – 'बाँटो तुम चिनगी', 'हल सी जिन्दगी'। पृष्ठ 338–339 – 'दिन आये', गमला करोटन का', 'खुशबू के आखर', पृष्ठ 345 – 'कभी–कभी बजते घर में.... कुछ थोड़ा', 'तुमको चाहा कितना', 'धीरे पाँव धरो', 'एक प्यार', 'एक सूर्य रोटी पर', 'पेड़', 'फिर पलाश वन दहके', 'गेरू की लाली', 'बूंद पसीने की', 'खेत के नाम', 'अकाल में बच्चे', 'कोशी के कछेर की लड़की', 'उदास आँखें', 'शिशु की पहली साँस', 'नई बात नहीं' – मेरी अनुभूतियों में जैसे भूचाल आ गया ये सब पढ़कर। तुम बहुत समर्थ हो, इतने बिम्ब – सब नये ढंग में ढले। आश्चर्यचकित हूँ मैं। प्रभु तुम्हें और–और बड़ा स्थान दे।

दूर–दूर के कई कवि आपके बहुत प्रशंसक हैं, प्रसन्न हैं आपके कौशल से। आपके लिये क्या कैसे लिखूँ, पुराना वाक्य – 'थोड़े लिखे तो बहुत समझना।' सस्नेह – भारतभूषण।

वैसे तो शान्ति सुमन और उनकी रचनाकार पुत्री चेतना वर्मा की रचनायें कई पत्रिकाओं में एक साथ छपी हैं, पर 'अनन्तिम' में एक बार दोनों की कविताओं को पढ़कर अजय शर्मा नाम के व्यक्ति ने जिसने स्वयं को पाठक अधिक कहा साहित्यकार कम, लिखा कि 'आप दो रचनाकार एक ही घर में हैं तो खुशी हुई कि परिवार में साहित्यिक वातावरण को पूरा स्थान मिल रहा होगा। डॉ0 चेतना जी की कविता भावस्पर्शी लगी। परन्तु 'तुम्हें देखा तो लगा जैसे खड़ा हूँ कचहरी में' – यह खटकता है। कचहरी में सिवाय वकीलों के किसे अच्छा लगता होगा। वहाँ क्या आनन्द महसूस हो सकता है ? और वह भी 'तुम्हें' अर्थात् प्रिय को देखकर ?' गीत की वह पंक्ति शान्ति सुमन की है जिस पर उस व्यक्ति ने विस्मित होकर पत्र लिखा था। वैसे पत्रान्त में उसने क्षमा याचना की मुद्रा में यह भी लिखा 'खैर मुझे जैसा लगा मैंने निवेदन कर दिया है। वैसे तो 'भाव एवं प्रेम ही आधार है सारे सुखों का। बाकी तो साधन मात्र हैं। आपकी रचना की भावभूमि सुन्दर है। अन्यथा न लें।'

भाषा की सुकोमल सम्प्रेषणीय कौशल के कारण ही शान्ति सुमन के गीत सशस्त्र सीमा बल के अधिकारियों और जवानों में भी अतिलोकप्रिय हैं। किसी एक की चर्चा करना ही बेहतर होगा। 'आजकल' में 'अनहद सुख' और 'सुनो शालीना' शीर्षक गीतों को पढ़कर एक अधिकारी नागेद्रपति त्रिपाठी ने लिखा – 'दोनों ही कवितायें अपनी सम्प्रेषणीयता में बेजोड़ हैं। 'सुनो शालीना' के माध्यम से आपने एक विस्तृत फलक का स्पर्श किया है। जीवन और प्रकृति की उपेक्षा कर हम मानवीय मूल्यों एवं भावनाओं का उपहास कर रहे हैं। पेड़, धान, मछलियाँ और पोखर जो आपके गीतों की बुनावट में हैं, हमारे जीवन में रचे–बसे हैं। इनके बिना हमारे जीवन के सूनेपन को कौन भरेगा ? आपका सवाल आज के समय का सत्य है। सुघड़ और प्रेरणा से भरी आपकी कवितायें हिन्दी की सम्पदा हैं।'

'शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि' जब प्रकाशित हुई तब अनेकानेक गीतकारों, समीक्षकों, पाठकों और यहाँ तक कि गांव की सामान्य जनता के विचार भी शान्ति सुमन तक आये। सभी ने इस कृति

को उत्कृष्ट और महत्वपूर्ण माना। ऋषिवंश का कहना था – 'तमाम बड़े और प्रतिष्ठित कवियों, लेखकों की कलम ने इसमें संग्रहित सामग्री को पठनीय और संग्रहणीय बनाया है। आपके गीतों का तो कहना ही क्या! पुस्तक एक संदर्भ ग्रन्थ का रूप ले चुकी है। निस्संदेह आपकी साहित्यिक यात्रा विस्मित और गौरवान्वित करती है। हर दृष्टि से साहित्य का अवगाहन करनेवालों के लिए यह पुस्तक अमूल्य धरोहर सी साबित होगी। ईश्वर अभी आपसे और भी महत्वपूर्ण लेखन करवायेंगे।' आचार्य भगवत दूबे ने लिखा – 'हिन्दी जगत में आपका कद सुमेरू के समान है। आपके गीत सदैव मेरा ध्यान आकर्षित करते रहे हैं। प्रारंभ से लेकर आजतक गीत में आये परिवर्तन को आपने आत्मसात् किया है। लोकजीवन की जनवादी आंचलिक गंध आपके गीतों में रची–बसी है। इसी लोकधर्मिता ने आपके नवगीतों को जीवन्तता दी है। वर्तमान के यथार्थ को आपने अपने नवगीतों में बड़ी शिद्दत के साथ रेखांकित किया। आपका प्रचुर प्रभावी सारस्वत अवदान हिन्दी जगत में ससम्मान याद किया जाएगा। यह एक शोधपरक वृहद् ग्रन्थ है।'

गीत के समर्पित रचनाकार जय चक्रवर्ती शान्ति सुमन के गीत–संग्रहों (मौसम हुआ कबीर, भीतर–भीतर आग) तथा 'नवान्तर–5' में प्रकाशित उनके नवगीतों को पढ़कर अपनी कलम बांधकर नहीं रख सके। उन्होंने लिखा – 'आपके विचारों की ताजगी, शिल्प की सुघड़ता और मन को गहरे तक उद्वेलित करने की शक्ति को प्रणाम करता हूँ। आज की निरन्तर कठिन होती जा रही जिन्दगी को 'दुख रही है अब नदी की देह/बादल लौट आ' तथा 'यह सदी रोने न देगी/सच कहा तुमने' जैसे गीतों में जिस मार्मिकता और ऊर्जा के साथ आपने रेखांकित किया है, वह समकालीन गीत विधा को एक पहचान देती है। अपने हिस्से के समय को अपने गीतों में आपने पूरी ईमानदारी के साथ जिया है, यह आज की उस जमात के लिए गर्व की बात है जो गीत–आंदोलन से जुड़ी है।'

'अभिनव प्रयास' के सम्पादक अशोक अंजुम ने उस पुस्तक को पढ़कर लिखा – 'विद्वान रचनाकारों ने खूब–खूब लिखा है और बहुत खूब लिखा है आपकी गीतात्मकता पर। निश्चित ही यह पुस्तक शोधार्थियों के लिए अमूल्य उपहार है। पुस्तक में आपके चुने हुए गीत हैं – यह अच्छा रहा। मैं तो आपके गीतकार रूप से अर्से से परिचित और प्रभावित हूँ।

श्रेष्ठ समीक्षक कवि–आलोचक रामनिहाल गुंजन ने जो शान्ति सुमन के गीतों के प्रशंसक तो हैं ही, उनकी कविताओं की पुस्तक 'सूखती नहीं वह नदी' पढ़कर लिखा – 'आपके गीतों की गंध से तो परिचित था, आपकी कविताओं से शायद कभी सामना नहीं पड़ा था, इसलिये इस संग्रह को देखकर सुखद आश्चर्य हुआ। इन कविताओं से गुजरने के बाद आपको शीघ्र लिखूँगा।'

खगड़िया का एक व्यक्ति – गीतों के समझदार पाठक और श्रोता–कवि बोढन मेहता जो वहाँ राष्ट्रीय साहित्य परिषद्, प्रगति मंच के अध्यक्ष हैं ने शान्ति सुमन के 'समय सुरभि अनन्त' में प्रकाशित आलेख और 'शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि' की समीक्षा पढ़कर स्वयं को यह लिखने से मना नहीं किया कि '....पढ़ते ही मैं अपनी स्मृति को कुरेदने लगा कि आप वही तो नहीं है जिनके स्वागत और जिनके गीत सुनने का अवसर 1975 में मुझे मिला था।' गांव की निश्छल जनता की तरह उन्होंने पुनः लिखा कि 'अगर यह मेरा स्मृति–दोष हो तो क्षमा करेंगी।' फिर गीतों की अपनी समझ को आगे करते हुए उन्होंने लिखा – 'हिन्दी की आत्मा ग्राम्य गीतों और ग्रामीण संस्कृतियों में बसती है जो पूर्ववैदिक काल से लेकर आज तक जीवित है, लेकिन विदेशी शिक्षा–पद्धति का आकर्षण और आधुनिक दिखने की प्रवृत्ति ने संस्कृति, अलिखित साहित्य एवं धर्म–कर्म की संरक्षिका भारतीय नारी को उनकी जड़ों से उखाड़ने का माहौल तो बना ही दिया है। उम्मीद करता हूँ कि आपकी परंपरा के गीतकार इस ओर सतर्क और सचेष्ट होंगे। इस प्रकार देखा जा सकता है कि विद्वान आलोचकों से लेकर सामान्य जनता में शान्ति सुमन के गीतों की लोकप्रियता है।

एक सशक्त गीतकार, समीक्षक और विचारक डॉ0 देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' ने शान्ति सुमन के गीतों के प्रति अपने विलक्षण विचार व्यक्त किये हैं। सबसे पहले तो उन्होंने लिखा – ('आपका जीवन–वृत्त पढ़कर मुझे रसात्मक–तादात्म्य की अनुभूति हुई। आपको तो मेरी सहोदरा होना चाहिये था।') ये वाक्य ब्रायकेट में थे। फिर उनके विचार शब्दांकित हुए – 'आपके द्वारा प्रेषित 'शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि' पुस्तक मिली। जब पैकिट खोलकर आपके ग्रन्थ पर मुद्रित आपको चित्रांकित देखा तो सर्वप्रथम उस चित्र को मैंने प्रणाम किया। तत्पश्चात् उसके कतिपय अंशों का अवलोकन किया। हर्षानुभूति से पुलकित हूँ वह सब

पढ़कर। आपकी दीर्घकालिक गीत–साधना का प्रत्यायक है यह ग्रन्थ। कृतज्ञ–स्वीकृति ग्रहण करें। आपकी रसवंती लेखनी से गीतों की अजस्र निर्झरिणियाँ यों ही सतत्, उच्छवसित, उच्छलित और प्रवाहित होती रहें। आप नवगीत की महादेवी हैं, अतः प्रणम्य भी।'

हिन्दी के वरिष्ठ और समर्थ गीतकार भारतभूषण शान्ति सुमन के गीतों की विशिष्ट रचना पर इतने मुग्ध हैं कि वे कहते–कहते इतना कह जाते हैं कि 'अभी–अभी 'प्रेसमेन' में आपको पढ़ा है। पढ़ता ही हूँ कहीं भी। बहुत अच्छा लगा। आप बहुत प्रिय लिखती हैं। मैं ऐसा नहीं हो सका।'

शान्ति सुमन के गीतों और कविताओं की बात तो तब प्रकर्ष पर पहुंच जाती है जब हिन्दी के सुप्रसिद्ध, अप्रतिम विद्वान जनवादी आलोचक डॉ0 शिवकुमार मिश्र कहते हैं – आप गीत लिखें – वह गीत लिखें – आपकी कलम में बहुत ताकत है – मन को बाँध लेनेवाली – इस नाते कि आपकी यह कविताई शौक नहीं – वह स्व–भाव है आपका। आपने जो कुछ लिखा उसे जिया भी है।' डॉ0 मिश्र का स्वास्थ्य इन दिनों नार्मल नहीं था। फिर भी उन्होंने लिखा कि 'सारी कवितायें पढ़ूँगा और विस्तार से मन बनाकर लिखूँगा। आप इसी तरह सक्रिय रहें। मेरी शुभकामनायें। आपका – शिवकुमार मिश्र।'

अब यह तय है कि शान्ति सुमन के गीतों के प्रति प्रशंसा के जहाँ अंबार लगे हैं, वहाँ एक छोटे द्वेष से परिचालित होना भी हमें कितना नीचे उतार देता है। विद्वान आलोचकों से लेकर सामान्य जन के मन में भी इनके गीतों के प्रति आत्मीय अपेक्षायें हैं और अनुभवों का अपनत्व भी। स्वातंत्र्योतर हिन्दी गीत–साहित्य में महादेवी वर्मा के बाद यों तो कई स्त्री गीतकार हुई हैं, पर महादेवी के बाद शान्ति सुमन के गीतों ने ही इतिहास रचा है। भारतभूषण के शब्दों में 'सच ही गीत–प्राण हैं शान्ति सुमन।' नवगीत की तो वे पहली – अकेली गीतकर्त्री हैं और जनवादी गीत में जो त्रयी बनती है उसमें भी शान्ति सुमन का नाम अपरिहार्य है।' रमेश रंजक, शान्ति सुमन और नचिकेता जनवादी गीत की यही त्रयी है।

■

सामाजिकता और मूल्य संस्कृति का संवेदनात्मक स्वर : 'मेघ इन्द्रनील'

❑ पंकज कर्ण

डॉ0 शान्ति सुमन गीत–चेतना की महत्वपूर्ण कवयित्री के रूप में कई दशकों से चर्चित हैं। 'ओ प्रतिक्षित', 'परछाईं टूटती', 'सुलगते पसीने', 'पसीने के रिश्ते', 'मौसम हुआ कबीर', 'तप रहे कचनार', 'भीतर–भीतर आग' और 'पंख–पंख आसमान' जैसी गीत कृतियों के समर्थ रचनाकार शान्ति सुमन के गीतों में गाँव, सम्बन्ध, लोकास्था तथा पीढ़ियों के साथ जुड़ाव के साथ ही साथ सामाजिक विषमता के शिकार हुए आम जन के दुःख और संकट के प्रखर स्वर हैं। शान्ति सुमन की गीत–विकास यात्रा के कई प्रस्थान बिन्दुओं को रेखांकित किया जा सकता है। लोकचेतना की यह कवयित्री 'नवगीत आन्दोलन' और फिर 'जनवादी आन्दोलन' से जुड़कर सशक्त भाव–प्रवण और प्रभावशाली गीतों का निरंतर सृजन करती रही हैं।

हिन्दी और अपनी मातृभाषा मैथिली में गीत लिखने वाली यह गीत–कवयित्री अपने समय को, समाज को तथा समय के दबाव को बड़ी ही गंभीरता से देखती हैं, महसूसती हैं और रचनात्मक आकार देने में आज भी पूरी तत्परता के साथ हैं। नवगीत की पहली कवयित्री की हैसियत से हिन्दी नवगीत आन्दोलन में सम्मानजनक स्थान की अधिकारिणी डॉ0 शान्ति सुमन अपने गीतों में भाषा, शिल्प और कहन के अन्दाज में आज भी प्रयोगरत हैं। संवेदना से लवरेज हृदय की अनवरत अभिव्यक्ति शान्ति सुमन के माध्यम से हो रही है।

सद्यः प्रकाशित मैथिली गीत संग्रह 'मेघ इन्द्रनील' मिथिलांचल की प्रकृति, संस्कृति तथा उसकी आत्मीयता को गीतात्मक विस्तार देने वाला एक समर्थ संग्रह है। आज के समाज की विसंगतियों को, विद्रूपताओं को, उसकी पीड़ा और कसमसाहट को शान्ति सुमन राग भरे स्वरों में मगर आग भरकर प्रस्तुत करती हैं। कवयित्री ने अपने गीत–सृजन के लिए भावों को जबरन आयातित नहीं किया है, बल्कि अपने आस–पास, पास–पड़ोस और अपने समबन्धों के दायरों को भी गौर से जानते–समझते हुए उसके संघर्ष और जीवन–चर्या को लयात्मक स्वरूप दिया है। 91 (इक्यानवे) गीतों का यह संग्रह बहुविध भावों का एक खुबसूरत चित्र

अलबम है जिसमें हम आज के मिथिलांचल के गांव, समाज और समय को साफ–साफ देख सकते हैं। मैथिली गीतों की शृंगार–प्रधान परम्परा रही है, मगर शान्ति सुमन ने उस परम्परा से अलग अपने गीतों की जमीन खेत–खलिहान तथा गांव की संघर्षधर्मी चेतना पर तैयार की है –

'बाम–दहिन परती पसरल छऽ
पहिर फसल केर आस
फूटत आंकुर खुरपी चमकत
रोटी देत उजास।'

– पृ0 25

संग्रह के अनेक गीत टूटते, त्रस्त और क्षुब्ध जीवन की जीजिविषा से भर देने की क्षमता से भरे हुए हैं। भूख से पीड़ित जीवन जीने के संघर्ष के बीच भी जीवन के प्रति आस्था और जीवन जीने की जिद पैदा करती अनेक पंक्तियाँ प्रेरक और उद्‌बोधक की भूमिका में समग्रता के साथ खड़ी है –

'टूटल मड़ैयाक झोल भरल भनसा
मारैय ये भूख जेना बरछी आ फरसा
आध टूक रोटी पर नून लगय चन्द्रमा।'

– पृ0 22

आज परिवार टूट रहा है, सम्बन्ध टूट रहा है, समाज टूट रहा है, व्यक्ति टूट रहा है। हर तरफ विघटन की प्रक्रिया तेज है और विघटनकारी तत्त्व भी अनेक रूपों में सक्रिय है। विघटन के विरूद्ध सृजन की अकूत क्षमता का परिचय ही नहीं देती, बल्कि उसका निर्वाह करती हुई डॉ0 शान्ति सुमन जीवन के प्रति आस्था, राग और विश्वास से भरी कवयित्री हैं। संग्रह में सामाजिक और वैचारिक द्वन्द्व से भरे अनेक गीत हैं। राग–विराग, आशा–निराशा, विवशता–विश्वास, सुख–दुख, हंसी–क्रन्दन के साथ ही साथ मानसिक स्तर पर अनेक वैचारिक द्वन्द्व बनते–बिगड़ते हुए गीतों में अंकित होते हैं। सबके बावजूद संग्रह के गीत सम्बद्ध संस्कृति, स्नेह और सम्वेदना से लबालब भरे हुए हैं। राजनैतिक कुचक्रों का पर्दाफाश करती कवयित्री की आवाज मूलतः और अन्ततः आम जन के पक्ष में है जिसके भीतर क्रांति और समरसता की

लहर भरी हुई है।

दुःस्वप्नों के बीच सुन्दर स्वप्नों का निर्माण करती कवयित्री आशा, विश्वास और संकल्प से भरी हुई हैं। बदलते हुए समाज के स्वरूप को और सुगठित, सुनियोजित सुखद भविष्य के साथ देखती हुई यह कवयित्री टूटते सम्बन्धों के कारण अनेक स्थलों पर चिंता और दुःख से घिर जाती हैं। अंधकार के बीच प्रकाश का मार्ग बनाने के लिए तत्पर संग्रह की अनेक रचनाओं में सृजनधर्मिता का संकल्प भरा हुआ है। दलित और नारी–विमर्श के प्रखर और प्रभावकारी स्वर संग्रह में भरे हुए हैं। संग्रह का पहला गीत 'बेटी' के लिए है, जिनकी प्रारभिक पंक्तियों में ही प्राकृतिक बिम्बों के साथ विश्वास का स्वर है –

'बेटी तोर सपना में एक इन्द्रधनुष
पैरे–पैर उतरय गोरे–गोर उतरय
तोहर नीन में चिरैयक पांखि उड़य
एक गीत के किरिन भोरे–भोर उचरय।'

– पृ0 15

भाषा और बोली हर तीन कोस पर बदलती है तथा एक दूसरे से प्रभावित होती है। इसका प्रमाण इस मैथिली गीत संग्रह में भी उपलब्ध है। शान्ति सुमन बज्जिकांचल में प्रवास करती हैं, इसकी स्पष्ट छाप उनकी संस्कृति, उनके चिंतन और उनकी अभिव्यक्ति में है। मानसिक और चिंतन की प्रक्रिया में हिन्दी की जमीन पर उकेरे गये संग्रह के गीत खांटी मैथिली से अलग अनेक शब्द वज्जिका एवं भोजपुरी से भी मिलते हैं। कवयित्री ने सहजता के साथ अनायास ही गीत के अनुकूल आते हुए शब्दों को संयोजित किया है। रचनात्मकता के लिए यह सराहनीय मगर भाषा के लिए वर्जित है।

शान्ति सुमन सहज–स्वभाविक लयात्मक बोध की गंभीर गीतधर्मी रचनाकार हैं। इसलिए उनके सामने अभिव्यक्ति में भाषा का द्वन्द्व खड़ा नहीं होता है। संग्रह में गांव–घर के मुहावरे, लोकोक्तियाँ और संस्कार जनित अनेक संदर्भ और प्रयोग भरे हुए हैं। 'मेघ इन्द्रनील' प्राकृतिक बिम्बों से भरा हुआ सामाजिकता का मानवीय मूल्य भरा महत्वपूर्ण गीत–संग्रह है।

■

भीतर की आग की खुशबू

❑ अंजना वर्मा

'भीतर–भीतर आग' शान्ति सुमन के गीतों का संकलन है जो उनके जनवादी गीतों के संग्रह 'मौसम हुआ कबीर' तथा अन्य कई साझा संग्रहों के बाद प्रकाशित हुआ है। अपनी जनपक्षधरता के कारण एक पहचान बनाने वाली तथा 'बेटा मेरा रोये माँगे एक पूरा चन्द्रमा' या 'थाली उतनी की उतनी ही छोटी हो गयी रोटी' जैसे मार्मिक गीत लिखने वाली शान्ति सुमन का यह संकलन उनके अपने आप से रू–ब–रू होते हुए क्षणों की तस्वीर सहेजे हुए है। यह भी कुछ ऐसा ही कि भीड़ में चलते हुए अनायास ध्यान अपने पर चला जाय। वहाँ आत्मरति नहीं है – एक बहुत स्वाभाविक सोच है जो जीवन के इस पड़ाव पर पहुंचकर जन्म ले लेती है जिसमें खट्टे–मीठे अनुभव और उनसे जुड़ी यादें समायी रहती हैं। मेहनतकश इंसान के पक्ष में शोषण, अत्याचार और उत्पीड़न के विरूद्ध संघर्षशीलता की आवाज बुलंद करने के बावजूद अपने जीवन के भोगे हुए यथार्थ को साकार करना गीतकार की रचनाधर्मिता की ईमानदरी का सबूत है। इसमें न कुछ ओढ़ा हुआ है और न आयातित ही है।

शान्ति सुमन के जीवनानुभव लोकजीवन से गहरे जुड़े हुए हैं। मैथिल संस्कृति ने उनकी रचनाधर्मिता को रचा है। लोक–संस्कृति से जुड़ाव जहाँ उनके गीतों को सरस बनाता है, वहीं उन्हें एक विशिष्ट काव्य–व्यक्तित्व भी प्रदान करता है। आज के संदर्भ में महानगरीय इंद्रियबोध से उपजी कविताओं में जीवन का राग टूट–सा रहा है और उस परिवेश में कवि–कर्म भी कठिन होता जा रहा है। ऐसे बिखरते हुए समय में जिन कवियों में लोकजीवन के संस्कार हैं वे सृजनशीलता को ऊर्जा प्रदान कर रहे हैं। यही तत्त्व शान्ति सुमन के गीतों को भी प्राणवान और सजल बनाये हुए है। उनके गीतकार का यह इन्द्रियबोध अप्रस्तुतों, प्रतीकों और बिम्बों के रूपों में उनके रचना–संसार में दिखायी देता है जिसमें प्राकृतिक उपादान एक विशेष भूमिका अदा करते हैं।

इस संकलन से गुजरते हुए गाँव की धरती और उससे जुड़ी तमाम चीजें साकार होती चली जाती हैं। इनका गीतों के साथ एक गहन

ताना–बाना बुना हुआ है। न केवल गाँव की मिट्टी की खुशबू है, बल्कि घर–आँगन, धूप–छाँव, उल्लास और उदासी के स्वर भी हैं।

यह संग्रह चार खंडों में बँटा हुआ है – 'आइने दूर तक', 'पूरी पृथ्वी माँ', 'भीतर–भीतर आग' और 'नदियाँ इंगुर की'। इनमें कुल पचहत्तर गीत हैं। प्रथम खंड में मन के आइने में उतरे कई अक्स हैं – अनुराग, विश्वास की दरार, आह्लाद, प्रेम का आमंत्रण, नैराश्य, सुख–दुख, रिश्तों का दर्द आदि। 'मन रुई का' अवसाद और निराशा को अभिव्यक्त करता है –

'दस्तकें देती हवा ठहरी हुई चौगान पर
मन हमारा भी ढहा है कुछ इसी अरमान पर
देख भाई, काँच का सपना
कहाँ से टूटता है ...धुने जाने के लिए ही
मन रुई का फूटता है।'

इस संकलन की कई कविताओं में सुख और सपनों का एहसास एक निराशा के तहत टूटता–सा दिखाई देता है। जीवन के ऊबड़–खाबड़ पथ पर जब ठोकर लगती है तो उसे स्वीकार कर उससे उदास होकर उदासीन होने की समझ भी आ जाती है। सुख पाकर भी उसको पूरी तरह स्वीकार न कर पाने का भाव चोट खाये मन के संशय को व्यक्त करता है। इसी खंड की 'कच्ची हँसी' में सपनों से डरा हुआ मन दिखायी देता है –

'शब्द जोड़ते रहे
गये ढहते ही सबके माने
एक आग जलती ही रहती
सिरहाने–पैताने
भींग रही वर्षा में कच्ची हँसी
बहुत बेघर है।'

वर्षा में कच्ची हँसी के भींगने का अर्थ देहात में वर्षा होने पर मिट्टी की कच्ची दीवारों का भींगकर ढह जाना है और हँसी के बेघर होने का अर्थ पायी हुई खुशी को मन से निकाल देना है। पंक्तियों के अर्थ दूर तक जाते हैं।

'आइने दूर तक' दरके हुए विश्वास से उपजे दुख का गीत है।

विश्वास में आयी हुई एक पतली दरार भी किस तरह सबकुछ हिलाकर रख देती है –

'हौसले हिलते घरौंदे प्यार के
हँसी अपनी किसी की बाँदी न थी।'

दूसरा खंड 'पूरी पृथ्वी माँ' में भी छद्मवेशी परिस्थितियाँ पीछा नहीं छोड़तीं और मन खुशियों के प्रति पूरी तरह सकारात्मक न होते हुए एक संदेह की मुद्रा अपना लेता है। इसीलिए एक लंबे अर्से बाद जब खुशी मिलती है तो दो ही प्रतिक्रियाएँ होती हैं – या तो मन उसे पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पाता या स्वीकार करता है तो उसे पूरी तरह जी लेना चाहता है। ये दोनों ही प्रतिक्रियाएँ व्यंजित हुई है। 'उजली धार में' हँसी सूखते कपड़ों की तरह है और पूरी तहरीर पर लाल स्याही गिर जाती है। भींगे कपड़े छतों पर सूखने के लिए ही डाले जाते हैं। लाल स्याही की एक लकीर किसी लिखावट को गलत करार दे देती है। फिर लाल स्याही का ढ़रकना तो पूरी खुशियों की अस्मिता को नकार देना है –

'हँसी जैसे सूखते कपड़े छतों पर
लाल स्याही ढ़रकती पूरे खतों पर।'

प्रतिक्रिया का दूसरा रूप भी दिखायी देता है। 'खुशबू के आखर' में एक अंतराल बाद मिली खुशी को स्वीकार कर उससे भी जन्मों की तृप्ति पा लेने की उत्कंठा दिखायी देती है। इसमें खुशी के आगमन को बेटी के आगमन के सदृश बताया गया है। विवाहित बेटी का आगमन भले ही अपरिमित सुख दे, किन्तु भारतीय समाज में बेटियों का ससुराल में बसना ही सही माना जाता है। बेटियाँ पिता के घर आती भी हैं तो मेहमान बनकर। इन पंक्तियों में खुशी को सौ जन्मों–सा लम्बा बना देने की कामना तो है, लेकिन विश्वास काँप रहा है –

'बहुत दिनों पर बेटी जैसी
घर आई हो खुशी भली–सी
इस दिन को सौ जनम बनाना
सुख को साँसों में रख जाना।'

'जरूर लिखना' में दूसरे किसी शहर में बसते हुए परिजनों का हाल–चाल और उनकी दिनचर्या जानने की उत्कंठा दिखायी देती है। गीत जैसे किसी खत का मजमून हो। शब्द–शब्द में अपनापन भरा हुआ

है जो आज की महानगरीय संस्कृति में दुर्लभ है। कुछ पंक्तियाँ –

'जाते होंगे बूढ़े बाबा
सुबह रोज टहलने
दादी अम्मा तुलसी चौरा
लगी साफ करने।'

रचनाकार के जीवन के अक्स उसकी रचनाओं में दिखायी पड़ ही जाते हैं। खासकर जब रचनाकार एक औरत हो तो उसके रचनाकर्म में उसकी घर–गृहस्थी, रिश्ते–नातों, रीति–रिवाजों, आस्थाओं एवं मान्यताओं का झांक जाना स्वाभाविक है। इस तरह की तस्वीरों से नारी–जीवन उद्घाटित होता है। शान्ति सुमन ने माना है कि उनके रचना–संसार के फलने–फूलने का एक श्रेय उनके परिवार को जाता है तो दूसरा उनकी सतत प्रवहमान रचनाशीलता को। 'पूरी पृथ्वी माँ' के कई गीत ऐसे हैं जो रिश्तों की गरमाहट लिये हुए हैं – 'बड़ी हुई धूप', 'गमकी ऋतुगंधा', 'फूलवाली आँख' आदि। इस खंड के गीत 'पूरी पृथ्वी माँ' माँ को समर्पित हैं। माँ के त्याग को अभिव्यक्त करती हैं ये पंक्तियाँ –

'बिन शब्दों के अर्थ तुम्हारे
कितनी दूर तलक जाते थे
अपनों से मिलने की खातिर
अपनों से ही हट जाते थे
घर के पौधे की खातिर तुम बनी स्वयं ही खाद
आँगन की परछाई कहती तेरे बारे में।'

'भीतर–भीतर आग' खंड में 'अनगाये गीत', 'फूलवाली आँख', 'कितना प्यार', 'कोंपल के तन', 'पीली लहठियों वाले हाथ', 'कोई रक्तपलाश', 'अपना प्यार' आदि गीत हैं। इनमें से अधिकांश प्रेम और अनुराग की ऊष्मा से भरे हुए हैं। इन गीतों को देखकर यह विश्वास जगता है कि इस संकट के समय शोषण और अत्याचार के विरूद्ध जेहाद छेड़नेवाले मन भी, घर–परिवार, खेत–गाँव, लोक–मान्यताओं और परंपराओं के प्रति प्रेम, संवेदना और विश्वास सहेजे हुए हैं। यह बात बहुत सुखद है। यह अन्तःसलिला की तरह ऊपर से रेगिस्तान दिखते हुए जीवन को भीतर से सींच रही है – इसका संकेत है। इस खंड में जो प्रेम भरे गीत हैं वे जीवन की मिठास और भी बढ़ा देते है। यहाँ प्रेम

विविध मुद्राएँ रचे हुए है – कहीं स्मरण, कहीं खोज, कहीं आह्लाद, कहीं आमंत्रण, कहीं बबेसी आदि। 'आँखों की खुशियाँ' में प्रेम का रंग दिखायी देता है –

'जब से तुमको देखा है
बस फूल–फूल है आँखों में
...मन्दिर के कलशों पर धीरे –
धीरे उतर रही हैं किरनें
जीवन बदल रहा है जैसे
धूप लगी कविता लिखने।'

'बरखा से हम–तुम' में कथन की सहजता में ही गीत का सौन्दर्य दिखायी पड़ता है। एक सीधा–सादा आमंत्रण गीत के आंतरिक अर्थ को भी अभिव्यक्ति देता है –

'मन का मधु किंशुक
जले नहीं मीत आ
बरखा से झहर जाएँ हम–तुम'

और

'कसे हुए मृदंग से
बजे नहीं मीत आ
पुलकों से सँवर जाएँ हम–तुम।'

यहाँ मृदंग–सा कसाव तो है लेकिन बजना नहीं है। बहुत चुपचाप प्रेम–रस में भींग जाने की कामना है। गार्हस्थ जीवन की मान्यताओं को शिरोधार्य कर अपना चुकी सौभाग्यशालिनी स्त्री का सीधा–सादा रूप लोक–संस्कृति की सुगंध लिये हुए 'पीली लहठियों वाले हाथ' में दिखायी देता है। हाथों में हल्दी के दाग हैं। रसोई में काम करते हुए आभूषणों की रुनझुन है तो आँगन में बिछिया का स्वर गूँज रहा है। ये पंक्तियाँ एक बहुत जाना–पहचाना चित्र उपस्थित करती हैं –

'चौके की रुनझुन बहुत भली
आंचल में छपी लाल मछली
गेहुँआ हँसियों की झीलों में
कलियाँ जुही की बहुत खिली।'

'भीतर–भीतर आग' में शान्ति सुमन का गीतकार रंग–राग में ही

उलझकर नहीं रह जाता है, उसके जेहन में अपने समय की विभीषिका जीवन के सभी घटना–चक्रों के साथ समांतर चलती रहती है। इसलिए जब फागुन और होली की बात होती है तो गरीब तपेसर याद आ जाता है जिसकी हर खुशी के साथ पीड़ा भी चिपकी हुई चली आती है। 'कोई रक्तपलाश' में यह बेबसी दिखायी पड़ती है –

'चिन्ता तो होती है, पर किससे वह करे गिले
ईंच–ईंच बिक गया तपेसर
होली कहाँ जले ?'

एक ईमानदार शब्दकर्मी के लिए शोषितों के दुःख–दर्द को भूल पाना मुश्किल है। इसलिए कई गीत सर्वहारा के दुख भरे जीवन के दस्तावेज बन गये हैं। 'फूले हैं बबूल' में पूरी मार्मिकता के साथ यह अंकित है –

'जीने की शर्त और साँस के लिए
जीवन में मरन सौ फिजूल।'

'भीतर–भीतर आग' में शोषक वर्ग की दोरंगी चाल का खुलासा है। इनके अन्याय–अत्याचार के विरूद्ध भीतर–ही–भीतर आग सुलग रही है –

'घर तक पहुँचाने वाले वे/धमकाते है राहों में
जाने कब सींघा बज जाये
तीर चुभेंगे बाहों में
कहने को है तेज रोशनी
कालिख को ही बाँटा है।'

'नदियाँ इंगुर की' के गीत रंग–राग, आशा–स्मरण, उत्सव–आह्लाद की लालिमा से नहाये हुए हैं। इन गीतों में एक औरत की दुनिया है जो प्रेम से भरी हुई है। यह प्रेम अनेक आयामों में है। जहाँ भी यह है अपनी पूरी अस्मिता, पहचान और ऊष्मा के साथ है। कई गीत बचपन की यादें लिये हुए हैं और कई आशा और उल्लास से भरे हुए हैं। सभी में गाँव, घर, गृहस्थी की घरेलू महक भरी हुई है। माँ को समर्पित गीत 'गाँव नहीं छोड़ा' में माँ के त्याग को याद कर गीतकार का मन श्रद्धा से भर जाता है। किफायत से जीने की और अपना मन मारकर हँसने की कला में निपुण माँ अपनी धरती से किस तरह जुड़ी हुई थी –

'दरवाजे का आम–आँवला/घर का तुलसी चौरा
इसीलिए अम्मा ने अपना/गाँव नहीं छोड़ा।'

शान्ति सुमन के लोक जीवन का साहचर्य संकलन में कई रूपों में अभिव्यक्त हुआ है। उससे जल में घुली मिश्री–सा रिश्ता है। इसीलिए गाँव का जीवन जहाँ उन्हें अपनी ओर खींचता है वहाँ एक बहुत स्वाभाविकता है –

'घाट–बाट हमको बुलाती है
फसलों की गंध–गुंथी छाँव
चलो सुनयना, हमदोनों चलें
हरे–भरे खेतों के गाँव।'

शहर में रहते हुए गाँव की याद आना स्वाभाविक है। गाँव के हरे–भरे खेतों और वन तथा उससे जुड़ी बचपन की यादें जीवन–भर साथ रहती हैं। बचपन की बेफिक्री व्यस्त और तनावग्रस्त जीवन में एक सुंदर प्रसंग बनकर साथ रहती है। इन संवेदनाओं को उकेरती है 'ठहरा हुआ बचपन' की ये पंक्तियाँ –

'घुँघराले केश में दमकते/कसकर बँधे हुए रिबन
याद आया लड़की का/ताल में उझकना/
फिर देखना दर्पण।'

'पाखी लौटेंगे' में अच्छे दिन आने की उम्मीद पलती दिखायी देती है। बीते हुए दुख से उबरने की कोशिश में आँखें वसंत के आने के सपने पालने लगती हैं। गीत की मनोभूमि से पता चलता है कि निराशा गीतकार की जिजीविषा को तोड़ नहीं पायी है – उसमें सपने देखने की ताकत अभी बची हुई हैं –

'बीते दिन बहुरेंगे
पाखी लौटेंगे
इच्छाओं से भरी तांबई होगी कोंपल
धूप–तितलियों के मेले फिर होंगे पल–पल।'

बचपन जिस मिट्टी पर गुजरता है उस मिट्टी के संस्कार शिराओं में दौड़ने लगते हैं और उसकी छाप व्यक्तित्व में घड़े पर उकेरी आकृतियों–सी स्थाई हो जाती है। इस संकलनके गीत शुरू से आखिर तक इस बात को रेखांकित करते चलते हैं। 'सूर्य को प्रणाम' में सूर्य,

धरा, नदी, फूल, सबको नमन किया गया है। उनके साथ अपने–परायों के चेहरे जोड़कर उन्हें भी शक्ति–स्रोतों के रूप में स्थापित कर दिया गया है।

वात्सल्य से छलछलाते हुए कई गीत हैं जो आशीर्वचनों से भरे हुए हैं – 'फूटते धान–सा', 'सूर्य का उदय' आदि। अपनी संततियों के लिए आशीष से बड़ा रिक्थ और क्या हो सकता है ? लोक–परंपराओं की गंध और मंगलकामनाएँ लिए ये पंक्तियाँ गहन विश्वास को सूचित करती हैं।

आत्मीय जनों का प्यार औरत को प्रेरणा देता है। शान्ति सुमन ने अपने परिवार के प्रेम को अपनी रचनाधर्मिता की ऊर्जा माना है। इस संकलन की रचना–भूमि नारी–संसार है जो कई आयामों एवं स्तरों पर पसरी हुई दिखायी देती है। गाँव से लेकर शहर तक की पारिवारिक परिधि में गहन अनुराग की निश्छल अभिव्यक्ति हुई है। स्नेह का बंधन पिछली सीढ़ी से लेकर अगली पीढ़ी तक बँधा हुआ है। श्रद्धा और वात्सल्य दोनों पूरी गहराई एवं सच्चाई के साथ चित्रित हैं। माता–पिता के प्रति नतमस्तक मन है तो अपनी कोंपलों के प्रति चिन्तातुर मन। कहीं–कहीं नारी–मन की निराशा झाँकती है जो किसी एक समुदाय, समाज या देश की बात नहीं है। नारी का यह अनुभव सार्वभौम है। इसको अपनाने की मुद्रा निजी स्तर पर अलग–अलग हो सकती है। किन्तु व्यापक रूप में यह नारी के जीवन का ही एक हिस्सा है। आत्मीयों की परिधि में उपजे दुख–सुख दोनों ही अपनी गहरी छाप छोड़ देते हैं। लेकिन इसका प्रभाव सृजनात्मक ही होता है। इसलिए इस संकलन के गीत जीवन से जोड़ते हैं। 'भीतर–भीतर आग' उस ऊष्मा की ओर संकेत करती है जो इस पूरे संकलन में देखी जा सकती है। यह उस आग की गर्मी है जो कहीं रचनात्मक है तो कहीं विध्वंसात्मक। भीतर की आग अपने दोनों ही रूपों में चल रही है – कहीं जीवन दे रही हैं तो कहीं जीवन को तोड़ने वाले तत्त्वों के खिलाफ धधक रही है। यद्यपि पूरा संकलन सजल वैयक्तिक एवं पारिवारिक संवेदनाओं को समेटे हुए है तो भी सामाजिक प्रतिबद्धता नहीं छूटी है। जीवन की रागात्मक ऊष्मा की व्यापकता के साथ–साथ शोषितों एवं पीड़ितों के हृदय में सुलगती आग की ओर भी संकेत है।

■

'समय चेतावनी नहीं देता' में संकलित शान्ति सुमन की कविताएँ

❑ देवेन्द्र कौर

शान्ति सुमन जीवन–संघर्ष को रचनात्मक आयाम देनेवाली कवयित्री हैं। यह कहना उचित ही है कि संघर्ष ही व्यक्तित्व को निखार देता है। अज्ञेयने भी कहा है –

'बिना पीड़ा के मिली अग्नि माँजती नहीं है।' शान्ति सुमन ने अपने जीवन में संघर्षों को अपनी रचनात्मक शक्ति माना है और उसे आत्मसात् कर अपनी लेखनी द्वारा ऐसा वातावरण सिरजा है कि हर वह व्यक्ति जो उनकी कविताओं से होकर गुजरता है उसे वह अपनी जीवनानुभूति–सी प्रतीत होती हैं।

उनकी यह अनवरत् संघर्षयात्रा कविता संकलन 'समय चेतावनी नहीं देता' में भी जारी रहती है, किन्तु इसमें कुछ कविताएँ संतोष देती हैं, जो इस बात का द्योतक है कि जीवन में केवल दुःखों का व्यापार ही नहीं है, सुख की अनुभूति भी है। इसी भाव को दर्शाती है उनकी कविता 'धरती का हरापन', जिसमें भूख और गरीबी की परिभाषा का पता मनुष्य की पसलियाँ गिनकर लगाया जा सकता है, पर साथ ही संतोष का एक बिन्दु भी है, जो धरती की हरियाली में छुपा हुआ है।

यों तो कवयित्री ने अपनी यात्रा एक आशामय जीवन देती 'फसल की किताब' शीर्षक कविता से प्रारंभ की है, किन्तु वह आशा जब छीजती है, तो दुःखों के छंद का ताना–बाना बुनने लगती है। कवयित्री के शब्दों में –

'अभावों के दिन
डरी हुई रातें
सुविधाओं के नाम पर स्वीकृत घातें,
इन विसंगतियों को जीना और खोजना
अहं के खोये अर्थ
लगता है अपना ही मन भीड़ बन जाता है
खोजने लगता है अपना ही चेहरा।'

– छोटे–छोटे दुःख, पृ0 11

समय और व्यवस्था से कोई भी संवेदनशील व्यक्ति कभी मुक्त नहीं होता। 'उजला भिनसार' इसका सुंदर उदाहरण है। इस कविता में कवयित्री ने अपने समय की उन सामाजिक स्थितियों का चित्रण किया है, जिसमें औरत माँ–बेटी के रूप में प्रिय तो है, पर वैचारिक धरातल पर उसे पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त नहीं है। वह घर के चूल्हे के धुएँ में अपना भविष्य देखने की विवशता ढो रही है। किन्तु इसी में कहीं उसकी एकान्तिक संवेदनशीलता भी है, जो अपनी इन विवशताओं की परख भी रखना चाहती है और उसे चाहे–अनचाहे अपने समय और व्यवस्था से टकराना भी पड़ता है।

कवयित्री को अपने समय की राजनीतिक परिस्थितियाँ भी तोड़ती हैं और वह बेचैन हो उठती है। उनकी बेचैनी को 'तुम्हारी मिट्टी' और 'बंजर के बीज' शीर्षक कविता में देखा जा सकता है।

कवयित्री के जीवन में यातनाओं का सिलसिला कभी टूटता नहीं –

'बच्चों को कहाँ मालूम कि कम तनख्वाह में
जीवन का तापक्रम ऊपर नहीं चढ़ पाता

– 'भोली लड़की', पृ0 13

वह नमी के साथ आता जरूर है, पर बहुत दूर तक वेध जाता है और मन बेजार होकर कहता है –

'तमाम तरह की दहशतों
अपने रक्त चुआते जिस्म को
दूर ले जाना चाहते हैं, हम तुम्हारी बाँहों से
वहाँ जहाँ तुम्हारी उंगलियाँ नहीं पहुँचें।'

– मद्धिम वसंत, पृ0 14

क्योंकि भीतर का वसंत कभी मरता नहीं, वह मौत–सी बदहाली में मौन जरूर हो जाता है।

'ऋतु–कथा' भी इसी तरह की एक बेचैन कविता है, जिसमें कवयित्री पतझड़ में वसंत का स्वप्न बुनकर गंध से भर जरूर जाती है, पर उसकी विवशता उसका पीछा नहीं छोड़ती –

'धुँआकर रह गयी जलने से/कोई भींगी लकड़ी।'

– पृ0 15

और जब पूरी–की–पूरी शाम उस पर से खामोश रहकर गुजर जाती है तो अपनी बेचैनी का हद पार कर वह कहती है –

'चेहरों के उदास शिवाले
रख गई है साँझ
भारी–भारी साँसें लेता जंगल
किसी थके खोमचेवाले की तरह।'

– 'साँझ', पृ0 16

मध्यम–वर्ग की मानसिकता को जीती और भोगती कवयित्री लगता है, जब शिथिल हो जाती है तो कुछ रोमानी कविताएँ लिखकर स्वयं के जख्मों पर फाहा रखने की कोशिश करती है –

'तुम्हारी गंध से भरे
अपने कमरे में
जब–जब होती हूँ
एक सपना–सा होता है मेरी आँखों में।'

– 'आँचल के रंग', पृ0 27

क्योंकि कविता अनुभूति से अभिव्यक्ति तक की यात्रा है, कवयित्री ने कविता के इस महत्व को खूब पहचाना है, इसलिए वह कहती है –

'दुःख सहने की शक्ति
तुमने ही दी मुझको
क्योंकि तुमने लिखी कविता'

– 'कोई भी कविता', पृ0 28

कवयित्री के पास 'अपना अंधकार' है, जिसे रोशनी कम नहीं करती बल्कि उसकी ओर उंगली दिखाती लगती है। फिर भी कवयित्री निराश नहीं होती, तभी तो कहती है –

'याद आता है अंधेरे के दरवाजे पर
सूरज का दस्तक देना।'

– 'शायद', पृ0 30

'तुम्हें धन्यवाद ओ हँसते बच्चों
कि तुमने मेरे अन्तरतम को गीतों से भर दिया।'

– 'धन्यवाद', पृ0 32

इन तमाम कविताओं से होकर गुजरते हुए अब ऐसा लगता है कि कवयित्री को मन ही ऐसा मिला है कि अवसाद का एक घना कुहासा उनके इर्द–गिर्द बना ही रहता है, फिर भी वे जीवंतता तलाशने की अपनी कोशिश जारी रखती हैं।

■

भीतर भीतर आग : आग का राग

❑ डॉ० अरुण कुमार

'गद्यात्मक हो रहे युग बोध' (शान्ति सुमन के शब्द) के बीच गीतों का जीवंत बने रहना वर्तमान की शर्त्त है, और चुनौती भी, सही है कि गीत ने हर समाज में अपनी प्रासंगिकता बनाये रखा है। कविता के भविष्य के प्रति लोग आशंकित है। आलोचक विजय कुमार (आलोचना, जनवरी–मार्च 03) की चिन्ता है, सूचना, तथ्यों और बिम्बों के इस घटाटोप में कविता का रास्ता क्या हो सकता है ? और फिर निष्कर्ष मिलता है, कि विरोधाभासों को सहज व्यक्त करना ही कविता है। गीतों की मृत्यु की आशंका किसी को नहीं है जबकि अब पुराने फिल्मी गीतों के नये अंदाज (रीमिक्सिंग) आ रहे हैं। तब भी गीत अपने नये–पुराने अंदाज के सहारे भी आज अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं। इसका एक कारण है गीतों का अपना कला पक्ष। गीत पुराने बिम्बों से भी नये अर्थ ढूँढ लेता है। शान्ति सुमन के गीतों में भी कुछ ऐसा ही है – 'हरापन ओढ़ती है' में बिल्कुल प्रचलित बिम्ब है, नयी कविता के पक्षधर इसे घिसा–पिटा भी कहें लेकिन इनके साथ अभिव्यक्ति में नये अर्थ को पाने की ललक है –

फिर हरापन ओढ़ती है,
ताल में झरती कमल की पंखुरी।

यह पूरा गीत प्रचलित बिम्ब विधान का बढ़िया उदाहरण है। अंत में गीत जहाँ पहुँचता है, पूरे जमाने का दर्द लिए वह प्रचलित बिम्बों में 'प्रचलित' विशेषण को बिल्कुल नकार देनेवाला है –

गाँव की पगडंडियों में
राजपथ होंगे कई।
छाप नंगे पाँव की
अब शहर में लगती बड़ी।।

नयी कविता के दौर में प्रचलित बिम्बों को लेकर काफी सहमति–असहमति के गीत गाये गये थे। उस समय भी गीतों की सादगी अपनी जगह थी। किसी 'गीतकार' को मेघ, आसमान, पीपल, बरगद से शिकायत नहीं थी। छायावाद के बाद कविता से चाँद, सितारे, श्रीश,

पक्षीवृन्द मानों गायब–से हो गये थे। शान्ति जी का एक गीत है –

बहुत दिनों पर चाँद खिला है,
कोई बड़ा सुकून मिला है।
जरा सितारों मुझे बताओ,
आखिर किसका तुम्हें गिला है।।

'सुकून मिला' से गीतकार अपनी उलझन को साफ बचा लेती हैं। आपाधापी और सामाजिक तंत्र की पेचीदगी हमारी–आपकी है। चाँद–सितारों से संवाद न हों तो इसमें सितारे कहाँ दोषी हैं ? लेकिन गीत के अंत में गीतकार खुद को कहीं विवश पाती हैं। शुरू में चाँद–सितारों से गिला–शिकवा त्वरित उत्तेजनावश है।

एक गीत दिनचर्या को लेकर है, और यह पूरा गीत मोबाईल के इस समय को चुनौती दे रहा है –

बाहर की तो बात पता है
तुम घर की लिखना...
सूरज कैसे उगता है
यह भी जरूर लिखना।

पुराने पत्रों में बारिश के होने, सुखाड़ पड़ने, पत्तों के झरने की चर्चा होती थी। अब उन सबको मोबाईल लील गया है। फोन पर 'प्रणाम' सम्बोधन भी एक रुपया बीस पैसे में बिकता है। इसलिए मोबाईल पर सीधी बात दो टूक जैसे किसी आगंतुक से मेजबान सीधे पूछे 'मेरे लायक कोई सेवा!' सूरज के उगने और रोशन के आनाकानी करने तक का लम्बा सफर मोबाईल से तय हो रहा है। गीतकार की चिन्ता बहुत स्वाभाविक है। गाँव–गाँव की दूरी नाप रहे मोबाईल के इस युग में भी एक चिन्ता व्याप्त है –

मुश्किल से ही होता है
फिर गुजर–बसर लिखना।

'भीतर–भीतर आग' के गीतों का संसार बहुत व्यापक है। इन गीतों के अंतर में एक कथा बह रही है। ग्रामीण संस्कार ही नहीं उसमें एक पूरी दुनिया है। शहर की ओर लौटते ही वह दुनिया अचानक विलुप्त होने लगती है। बहुत से इस व्यथा में ही अंत पा लेते हैं लेकिन शान्ति सुमन इतने से मानतीं नहीं और आशा की नयी किरण लेकर गीतों में

अवतरित होने लगती हैं। एक गीत है 'अपनापन' – चिड़िया और खेतों का परिदृश्य। बड़ी मेहनत से चिड़िया दाना चुगती है। उसके श्रम में ही उसके जीवन की कथा है –

कटे धान के खेतों में
फिर–फिर आई चिड़िया...
चिड़िया की आँखों में घर है
कहीं पठार कहीं सागर है...

इस गीत में चिड़िया, खेत और आकाश जीवन के अंतिम सत्य के रूप में मुखिरित हुए है। इनकी उमंगों से बिछड़ चुका शहर अपनी ही उलझनों में कसमसा रहा है। चिड़िया की जीवन–दृष्टि शहर से कहीं अधिक व्यापक है। इसी गीत की कड़ी में दूसरा गीत है 'अपनापन'। इस गीत में चिड़िया, धान इत्यादि का बिम्ब–विधान मनुष्य की भावनाओं, उसकी आशा–निराशा में मुखरित हुआ है। इसलिए संकलन के गीतों में एक सिलसिला है, एक भाव है, जीवन के प्रति गहरी आस्था का।

शान्ति सुमन गीतों को नयी तराश देने की कोशिश नहीं करती हैं। ये गीत भावावेश से अंकुरित भी नहीं हैं। गहरी जीवन–दृष्टि है गीतों में। कहीं–कहीं परसर्गों का प्रयोग खटकता है। इससे गीतों की लय टूटती महसूस होती है –

'रोपे तो शीशम के पेड़ गये
फूले हैं यहाँ पर बबूल।'

यहाँ यह 'पर' अनावश्यक है। 'घिरेंगे धुओं के बादल' वाले गीत में भी कुछ ऐसा ही है।

■

'सुबह हुई आंगन में गमकी धूप किसी पकवान-सी'

❑ शरदेन्दु कुमार

'मौसम हुआ कबीर' बिहार की प्रतिष्ठित एवं सुपरिचित गीतकार शान्ति सुमन के अस्सी जनवादी गीतों का नवीन संकलन हैं, जिसमें शोषित–पीड़ित जनता के दुःख–दर्द से जुड़ने की ललक का स्पष्ट इजहार है। यद्यपि इस आशय का एक लंबा अनावश्यक वक्तव्य संकलन की जिल्द पर छपा है, जबकि उनकी जनपक्षधरता के सर्वाधिक मुखर प्रमाण उनके गीत ही प्रस्तुत करते हैं। वस्तुतः भूख और रोटी से शुरू होकर बारूद और मुठभेड़ की जोखिम भरी राह पर चलकर ही उनके गीत काव्य–यात्रा के जनवादी मुकाम तक पहुंचते हैं। यह सच है कि आज देश की बहुसंख्यक आबादी की बुनियादी समस्या भूख और जरूरत रोटी है। भूख के त्रासद अनुभव और रोटी की जरूरत को नजरअंदाज करनेवाली राजनीति का न तो कोई मानवीय संदर्भ होता है और न ही कोई औचित्य, ठीक वैसे ही इनको हाशिए पर रखकर संपन्न होने वाला तमाम रचनात्मक कर्म निरा आडंबर माना जाएगा। भूख और रोटी को शब्दों में बदलकर गीतों में परोसने का कार्य अत्यधिक जोखिम भरा है। संकलन के अधिकांश गीत इस जोखिम के रू–ब–रू होने के सबूत पेश करते हैं। संकलन के पहले, दूसरे, तीसरे और अंतिम गीत की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

'सूखी रोटी के दुःख/हमने बरस जिए' – 'थाली उतनी की उतनी ही/रोटी हो गयी छोटी' – 'बाप सरीखा उसको आता/नहीं भूख को टालना' – 'यह मोड़ वही तो है हम जिस जगह खड़े हैं/साथियों जनम से ही समय से हम लड़े हैं/उस समय से जिसने/छीन ली हमारी रोटियाँ....'

वस्तुनिष्ठता का अत्यधिक आग्रह और जनवादिता पर जरूरत से ज्यादा बल, भूख और रोटी को कभी–कभी अश्लील प्रतीकों में बदल देता है। बार–बार दुहराया जाकर कोई भी भाव, विचार या तथ्य ऊब ही पैदा करता है। यूँ तो संकलन के गीतों की संख्या अस्सी है, किन्तु अलग–अलग सुरों में गाया जानेवाला गीत वस्तुतः एक ही है। अंतर्वस्तु

से लेकर भाषा एवं शिल्प के तमाम उपकरणों में व्याप्त एकरसता मात्र कवयित्री का ही दोष नहीं, बल्कि, यह उस संपूर्ण साहित्य की सीमा है, जो जनवादिता को कवच की तरह ओढ़ने में विश्वास करता है। जनवाद के नाम पर विकसित होने वाली यह फार्मूलाबद्धता तमाम विधाओं में एक–सी दिखती है। दरअसल, इस आरोपित जनवाद ने साहित्य को एक ऐसी अंधी गली में ले जाकर छोड़ दिया है, जहाँ से आगे कोई रास्ता नहीं, यही कारण है कि संकलन के गीत बार–बार स्वयं को दुहराते प्रतीत होते हैं।

कवयित्री ने भूमिका में एक जगह लिखा है – 'सामाजिक संघर्ष के एक विशेष ऐतिहासिक कालखंड में रचनाकर्म से सरोकार रखने वाले समान धर्म और समान विश्व दृष्टिकोण से लैस रचनाकारों में तथ्यात्मक एकरूपता हो जाती है – अर्थात् एक रचनाकार की सभी रचनाएँ यदि एक–सी लगती हैं, तो इसमें चौंकने की कोई बात नहीं, बल्कि सच तो यह है कि अन्य समानधर्मा रचनाकार की रचनाएँ भी कमोबेश वैसी ही दिखनी चाहिए। चूंकि, यह समानता परिवेशगत यथार्थ के दबाव का प्रतिफल है, अतः यह दबाव तमाम जनवादी रचनाकार को एक ही तरह से न केवल सोचने के लिए, बल्कि एक जैसी शब्दावलीमें एक ही बात दुहराने के लिए विवश करता है। मतलब यह कि सभी जनवादी गीतकार एक जेसे बैरोमीटर हैं; जिनका पारा समरूप ढंग से चढ़ता–उतरता है।'

भूमिका में कवयित्री ने गीतिकाव्य की रचना प्रक्रिया, अंतर्वस्तु, भाषा एवं शिल्प के साथ–साथ उसकी सोद्देश्यता पर भी भरपूर विचार किया है। उनकी इस स्थापना से ही साहित्य सोद्देश्य होता है और सामाजिक एवं मानवीय संदर्भ में उसकी एक निश्चित भूमिका होती है, सहमत होने में किसी को एतराज नहीं होगा। सृजनकर्म को सामाजिक दायित्व मानने वाली उनकी रचना–दृष्टि निस्संदेह वैज्ञानिक एवं प्रासंगिक है। इस अर्थ में ये उन अधिकांश महिला रचनाकारों की जमात से अलग पहचान बनाती दीख पड़ती हैं, जिन्हें अपने नितांत निजी भाव जगत से बाहर निकलना बिल्कुल रास नहीं आता। गीतिकाव्य में परिवेशगत यथार्थ की वस्तुनिष्ठता के साथ आंतरिकता का संतुलन होना चाहिए। दोनों में से किसी एक के आधिक्य से प्रभाव खंडित होगा और एक इकहरापन गीत के संपूर्ण कलेवर में झांकने लगेगा। संकलन के कम ही गीत ऐसे हैं जहाँ यह संतुलन पूरी तरह कायम रह पाया होगा। लगता

है जैसे आंतरिकता की जानबूझ कर उपेक्षा की गयी है।

निस्संदेह, साहित्य और जनसाधारण के बीच सीधा संवाद कायम करने की दिशा में नाटक और गीत सर्वाधिक कारगर साहित्यिक माध्यम हैं। जनता में राजनीतिक चेतना विकसित करने और अन्याय, उत्पीड़न के विरूद्ध उगते हुए उनके संघर्षों को हवा देने के लिहाज से ये विधाएँ महत्वपूर्ण हैं। लेकिन कवयित्री का यह कहना कि – विभिन्न इलाकों में चल रहे जन–संघर्षों को गतिशीलता प्रदान करने की खातिर उनका मुकम्मल नारे के रूप में व्यवहार किया जाना चाहिए – कुछ ऐसे सवाल छोड़ देता है, जिनकी छानबीन जरूरी है। गीत का नारे की तरह इस्तेमाल होना और नारे में तब्दील होना दो अलग तरह की घटनाएँ हैं और इनमें फर्क किया जाना चाहिए। यह बिल्कुल संभव है कि कोई गीत जनता की जुबान पर चढ़ जाए, उसके स्वप्नों, संघर्षों से तदाकार हो नारे में मुखरित हो जाए, यह उसकी सार्थकता होगी लेकिन यह सोचकर कि जनता उसका नारे की तरह व्यवहार करे, अतः गीत न होकर वह नारा हो जाए तो यह हादसा होगा। संकलन के अधिकांश गीतों के साथ यही हादसा घटित हुआ है, वे नारे की तरह चीखते हैं, अनावश्यक शोर पैदा करते हैं –

'हम मेहनतकश हमें पता/है आंधी बंजर का/जंग छुड़ाएंगे अपने/सपनों के खंजर का/चलो, बढ़ो, जल उठो, लाल शिखरों को छू लो रे' – *'हल के फार हाथ में हो तो/फिर कोई हथियार नहीं/सुनो शोषकों! भूखे रहने/को हम हैं तैयार नहीं'/–'होशियार हम अंधकार में/आग लगायेंगे/नारे लिखते दीवारों पर/भात उगायेंगे।'*

■

संघर्ष और संवेदना का सशक्त हस्ताक्षर

❑ वंशीधर सिंह

शान्ति सुमन हिन्दी गीति–परम्परा की महत्वपूर्ण कवयित्री हैं। इन्होंने अपने गीतों में जनता के संघर्षों, शोषित–पीड़ित मानवता के दुख–दर्दों को चित्रित किया है। अपनी संवेदना के अक्षय कोष को जनमुक्ति की दिशा में लुटाया है। वह न केवल सामाजिक अंतःसंबंधों को जानती हैं बल्कि वर्ग–व्यवस्था की निष्ठुर चक्की में पीस रही जनता और उससे छुटकारा पाने की दिशा में उसके चल रहे संघर्षों को भी पहचानती हैं और अपनी तमाम असंगतियों के बावजूद उसकी मुक्ति–चेतना में विश्वास करती हैं। उनके लिए सामाजिक विषमता प्रकृति प्रदत्त नहीं, मनुष्यकृत दुश्चक्री अधोगति है। उनके गीतों में अधोगति से उबरने, इस धरती पर बसाए गए नर्क से निजात पाने और अभावजन्य गर्त से निकलने की संगठित छटपटाहट की आहट भी सुनाई पड़ती है। कहीं–कहीं उनके गीत दहकते हुए अंगारे लगते हैं। उन अंगारों पर नंगे पांव चलने की संकल्प–चेतना के साथ–साथ जोखिम भरा साहस भी है। लेकिन वह साहस दुस्साहस की हदें नहीं लांघता। यहीं पर शान्ति सुमन का गीतकार विश्लेषण की सरणि से गुजरते हुए यथार्थ की जमीन पाता है। वह परिवेशगत युग–यथार्थ और ईमानदार अनुभव को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखती–समझती हैं तथा सामाजिक अन्तर्विरोधों को पहचानने की कोशिश भी करती हैं।

'सुलगते पसीने' और 'पसीने के रिश्ते' नचिकेता के साथ सह प्रकाशित गीत–संग्रह में शान्ति सुमन के गीतों की भाषा बेलाग, सहज और सघन होती हुई तल्ख होने के क्रम में वस्तुगत संसार की यथार्थपरक मीमांसा करती हुई प्रतीत होती है। उनके गीतों में व्यक्ति संश्लिष्ट भाव संपृक्त विचारों के माध्यम से परिप्रेक्ष्य की तात्कालिकता और जरूरी सरोकारों से जुड़कर ऊर्जस्वित भी होते हैं।

'मौसम हुआ कबीर' में प्रायः इनके प्रतिनिधि गीत संग्रहित हैं। इन गीतों में जहाँ एक ओर वर्ग–दुश्मन को मात देने की ईमानदार कोशिश है वहीं रोटी और जमीन के जलते हुए सवाल को छेड़कर मुठभेड़ की

भी बात कही गई है। बदलाव का गीत गाते हुए शान्ति सुमन प्रतिकूल सामाजिक परिवेश और अन्तर्विरोधों के बावजूद अंधेरे के बीच अपने मुट्ठी भर इरादे को लेकर गलियों और चौराहे पर निकल पड़ती हैं।

वैचारिक अन्तर्विरोधों की स्थितियाँ भी शान्ति सुमन के गीतों में मिलती हैं, जिनके चलते शोषण के औजार और दस्तावेज तार–तार होने से रह जाते हैं। 'राजकुंअर के गीत' में वर्गीय दुश्मन को 'राजा बाबू' जैसा प्यारा और आदरणीय सम्बोधन है। यही नहीं, वैचारिक विसंगतियाँ तो हैं ही, समझ में अन्तर्विरोध इस हद तक है कि क्रान्ति का प्रतीक 'सूरज' भी इन्हें नन्हा बौना लगने लगता है –

मिहनत करें कमाये हम
फिर भी हम औने–पौने
राजा बाबू तुम जादूगर
तेरे चांदी–सोने
ऊँचे–ऊँचे गुम्बद तेरे
ऊँची हैं मीनारें
तेरे कल–कारखाने बुनते
ये ऊँची दीवारें
तेरे आगे तो लगते है
ये सूरज भी बौने।

■

'टुकड़ों मैं बंटा आकाश का परचम'

❑ माधवकांत मिश्र

'परछाईं टूटती' शान्ति सुमन के नवगीतों का संकलन है। उनके गीतों के विषय में समकालीन रचनाकारों की यह राय महत्वपूर्ण है कि मेहनतकशों के संघर्ष से एकरूप होने का प्रयत्न उनके गीतों में मिलता है। मानवीय संवेदना की मजबूत पकड़ के अतिरिक्त मध्यवर्गीय समाज की खुशियों और पीड़ाओं का इजहार भी इनके गीतों में हुआ है। 'नागकेसर हवा' में इन पंक्तियों को पढ़कर **'गेहुँओं की पत्तियों पर/छपा सारा हाल/फुनगियों पर दूब की/मौसम चढ़ा इस साल/रंग हरे हो गये पीले/बात में मितवा/एक चिड़िया चोंच भर/लेकर उड़ी अनबन/भाभियों के खनकते/हाथों हिले कंगन/स्वागतम् गुंथी हथेली/धो गयी शिकवा'** – शमशेर बहादुर सिंह की ये पंक्तियाँ याद आईं 'इन गहरी नीवों के नक्शे पर जो फसीलें उठ रही है, जो इमारत उतरती आ रही है, उसी पर दुनिया की आंखें लगी हुई हैं। ईंट और गारे के रंग में चमकते हुए मजदूरों के जिस्म पूंजी की बेरहम चिलचिलाती धूप में चिंउटों की फौज की तरह जुटे हुए। यह भविष्य का घर इन्हीं मेहनतियों का होगा। इन्हीं लाल–गोरे–काले–पीले सुखी आजाद इंसानों का होगा, जिनकी दुनिया भर में एक बिरादरी है, जिनकी एकता से 'मानवतावाद' का झूठा भटई राग अलापने वाले दिन में घबराते है।' अपने वक्तव्यों में शमशेर बहादुर सिंह ने अफसोस जाहिर किया है कि वह मेहनतकशों के कवि वस्तुतः बन नहीं सके। इसका कारण उन्होंने अपना वर्ग का संस्कार दोष बताया है। इस संबंध में मेरी राय उनसे भिन्न है। मुझे वह मेहनतकशों के बड़े कवि लगते हैं। जैसी ऊबड़–खाबड़ जमीन और चक्करदार अंधेरों से गुजरकर उन्होंने अपनी काव्य यात्रा तय की है, उसकी अनुभूति हिन्दी कविता की एक विशिष्ट उपलब्धि है। शमशेर बहादुर सिंह की चर्चा यहाँ प्रसंगवश की गई है। मेरा अभिप्राय है कि उनके बहाने उस वर्ग संस्कार के दोष की चर्चा भी हो जो कविता के आड़े आते हैं और जिनसे शान्ति सुमन को भी जरा संभलकर चलना है। इसमें शक नहीं कि शान्ति सुमन के गीत सामाजिक संघर्ष के स्वर को मुखरित करने में सफल हैं और ये गीत उस दौर की ऐतिहासिक कोशिश के रूप में भी स्मरण किये जायेंगे

जिसमें लोकगीत, लोककला और आम बोल–चाल के शब्द, लहजे और संघर्ष प्रमुख हैं। बावजूद इसके इससे इंकार करना संभव नहीं है कि मध्यवर्ग के रोमांटिक संस्कारों का दोष भी उनके गीतों में मिलता है। 'परछाईं टूटती' की इनकी इन पंक्तियों को देख सकते हैं –

'परछाईं टूटती
हल्दी के अंगों से उबटन सी छूटती
हवा–हवा एक हुई
गीतों की टेक हुई
दूर अंधेरे में कोई कोंपल फूटती।'

रोमांटिक दृष्टि की सबसे बड़ी सीमा यह है कि वह संघर्ष विमुख और पलायनवादी बनाती है। काव्य–संवेदना को गैर रोमांटिक बनाने के लिए भाषा, बिम्बों और प्रतीकों से भी रचनाकार को रूमानीपन को हटाना होता है। रचना के प्रक्रियात्मक स्तर पर इसे काव्य–प्रयत्न ही कहा जा सकता है। शैल्पिक स्तर पर गैर रोमांटिक बनना पहले थोड़ा अटपटा लगता है, लेकिन कविता को ज्यादा ठोस बनाने के लिए यह आवश्यक होता है। शान्ति सुमन के 'शब्द–शोर' से उद्धृत इन पंक्यिों को पढ़िये तो गाँव और कस्बों की जिन्दगी और इसके आंतरिक यथार्थ का अनुभव करेंगे –

'किसी खौफ–सा लदा पड़ा
है कस्बा मरा हुआ
नियति बदलने की खुशफहमी
में ही डरा हुआ
मरन नहीं उतना पेचीदा बना हुआ है दिन।'

शान्ति सुमन के गीतों में एक अजीब अछूती लय और छंद एक सधी हुई ताल के साथ आत्मीय स्तर पर बातचीत के लिए पाठकों को विवश करते हैं। पाठक को बातचीत से रस इसलिए मिलता है कि जीवन के मौजूदा संघर्षों से वह बातचीत पाठक को कहीं गहरे जोड़ती है और उसमें हिस्सा लेना कलाकार और कलाविद् दोनों की सामाजिक जिंदगी की भलाई के लिए जरूरी है। 'धूल की परतें' की इन पंक्तियों को पढ़िये –

'बंटे हुए नारों में बांटकर तमीज अपनी
कहाँ कितना सियें फटी कमीज अपनी
सीमाएँ फैलीं, नींदों के पंख गये झरते'

इन पंक्तियों में सूत्र शैली में राजनीतिक स्थितियों को स्पष्ट किया गया है। बोधकता न केवल गीत के कथ्य में है, बल्कि उस युगीन प्रासंगगिता में भी, जिसके कारण रचनाकार को यह दृष्टि मिलती है कि गीत भी उपयोगिता की कसौटी पर खरा उतरकर अपने महत्त्व की असंदिग्धता को सिद्ध करता है। 'बरफ की उंगली' में शान्ति सुमन लिखती हैं –

'एक अदद रेखा/स्लेट पर खिंची हुई/बरफ की उंगली/
चुभती हुई सुई/फालसाई हुए उड़ते रेत के बगूले/झुके माथे
उजले किरन कलश धरे/चाय नींबू की/भरी कांच के प्याले/
ओस पहने पांव/कच्ची कोंपलों वाले/कत्थई अंधेरों के
गली–गांव फूले/खानाबदोश मौसम फिर होते हरे।'

फिलिप सिडनी का यह कहना था कि काव्य में कल्पना की भूमिका अहम होती है किन्तु रचनाकार की ऐसी कल्पना को प्रश्रय नहीं देना चाहिए जिससे आदमी अपने जीवन में कुंठित हो जाए। शान्ति सुमन की आस्था शब्दों से अधिक जीवन के प्रति है। इसी के बल पर वह कांच की प्याली में भरी नींबू की चाय का बिम्ब देती हैं और अंधेरे का कत्थईपन देखती हैं। अंधेरे का कत्थईपन जिंदगी के गाढ़ेपन को बिंबित करना है। इस गाढ़ेपन का दाग छूटता नहीं है। कत्थईपन मिट्टी के रंग की याद भी दिलाता है। गीत की संवेदना इस रूप में रंग, प्रकाश और शक्ति को भी आंदोलित करने की क्षमता रखती है। शान्ति सुमन ने अपने गीतों को जिस प्रगतिशील या जनवादी काव्य–आंदोलन में जोड़कर रखा है, वह आंदोलन केवल काव्य–चर्चा तक बंधा नहीं है। हाँ, कविता या गीत का उपयोग भी उस आंदोलन में हुआ है। प्रश्न केवल मानसिक ही नहीं, सामाजिक भी है। संस्कृति के विघटन के दृश्य को देखकर गीतकार के लिए चुपचाप बैठना संभव नहीं है। शान्ति सुमन उस अंश को बचाना चाहती हैं, जो रक्षणीय है। यह काम कविता या गीत में बालू पर लकीर खींचकर या आतिशबाजी करके नहीं किया जा सकता। यह काव्य जीवन के साथ चलकर ही रचनाकर कर सकता है।

'दुपहरों की सनसनी' में शान्ति सुमन लिखती हैं – **'पाँव को छू धूप/अब धीरे कमर तक हो गयी/टहनियों पर भली लगती/गरम आहट गुनगुनी/पसरकर सोयीं वहांपर/दुपहरों की सनसनी/कंधों पर झुकी हुई आंखें/लहर सी बो गईं।'** शान्ति सुमन का कथन है – 'हमारे अनुभव के पीछे सामाजिकता मूलभूत है। नवगीत ने पहली बार अनुभव को यथारूप व्यक्त किया। अपना लक्षण खुद जाहिर करने लगा। ....नवगीत को खारिज करने की कोशिश भी हुई। ... अंतर्वाह्य साक्ष्यों द्वारा इस बात की जांच नहीं हुई कि नवगीत की जहाँ तक स्वीकृति है – वह उसकी क्षमताओं का सहज प्रभाव ही है।' इसी कारण से सुशिक्षित–अशिक्षित श्रोता–पाठक पर उसका प्रभाव समान रूप से पड़ा है। इन पंक्तियों को देख सकते हैं – **'फूल, पत्ते, जड़, तने/पेड़ छप्पर डाल के/चलते बने/शहद के छत्ते बया के घोंसले/फिर न लौटे आंधियों में जो गये।'**

इन पंक्तियों को पढ़कर यह दावा सही लगता है कि शान्ति सुमन के गीत केवल नवीनता की तलाश में रचे नहीं गये हैं।

■

डॉ० शान्ति सुमन : आग और राग की कवयित्री

❑ जय चक्रवर्ती

सौन्दर्य, माधुर्य और कोमलता गीत की शाश्वत् प्रकृति है। आदिकाल से ही कवियों ने अपने गीतों के माध्यम से जीवन और जगत के समूचे सौन्दर्य और सौष्ठव को विविध रूप में प्रस्तुत किया है। किंतु गीत के इस गुण को जब कुछ स्वनामधन्य आलोचकों ने लिजलिजी भावुकता कहकर इसे अपनी आलोचना का लक्ष्य बनाया और 'नई कविता' के बरक्स गीत को खारिज करने का प्रयास किया तो हमारे इन्हीं कवियों ने शोषण और दमन के खिलाफ जनसंघर्षों को वाणी प्रदान करने और किसानों–मजदूरों के खून–पसीने की तासीर को अपने गीतों की आत्मा बनाकर आलोचकों का मुँह बन्द कर दिया। गीत की 'राग से आग' तक की इस यात्रा में डॉ0 शान्ति सुमन का नाम प्रथम पंक्ति में है। उन्होंने गीत के राग और गीत की आग को न सिर्फ अपनी लेखनी, अपितु अपनी साँस–साँस पर सजाया है। उनके लगभग एक दर्जन प्रकाशित गीत संग्रहों से गुजतरे हुए कोई भी संवेदनशील सहृदय व्यक्ति मेरी इस बातकी तसदीक कर सकता है। इन गीतों में कवयित्री को गीत के जन्म से लेकर, गीत के प्रति उसकी अटूट आस्था और इस आस्था के विविध आयामों के विस्तीर्ण फलक पर अपने समय को पूरी ऊर्जा, ईमानदारी और सिद्धता के साथ उकेरते हुए देखा–महसूसा जा सकता है। डॉ0 शान्ति सुमन के समग्र रचना–संसार के बारे में यदि एक वाक्य में मुझे अपनी राय देनी हो, तो बिना एक पल गँवाये मैं कह सकता हूँ कि उन्होंने अपने हिस्से के एक–एक क्षण को अपने रचनाकर्म में पूरी सजगता के साथ पिरोने का 'बड़ा' और 'ईमानदार' कार्य किया है।' अपनी सृजन–यात्रा के आरंभ से अंत तक यत्र–तत्र–सर्वत्र वे संपूर्ण जनवादी सौन्दर्यबोध के साथ उपस्थित दिखाई देती हैं।

डॉ0 शान्ति सुमन हमारे समय की उन विशिष्ट रचनाकर्मियों में हैं जो कविता को महज कला के लिये ही नहीं, जीवन के लिए भी जरूरी मानते हैं। कविता वे सिर्फ लिखती भर नहीं, उसे जीती हैं, भोगती हैं। गांव–देहात की औरतों की पीड़ा, उनकी बेवशी, लाचारी, गरीबी तथा देश की अधिसंख्य जनता के जन्म से मृत्यु तक के साथी बन चुके

अभावों–दुखों के संदर्भ शान्ति सुमन ने यूँ ही या फैशन के तौर पर इस्तेमाल नहीं किये हैं, अपितु पूरी ताकत के साथ इन्हें वाणी देने का भी प्रयास किया है। कवयित्री की यह संघर्षशील चेतना आमजन को आखिरी साँस तक सिर उठा कर जीने की ताकत प्रदान करती है।

वस्तुतः एक सचेत दृष्टिवाले रचनाकार की यही पहचान है कि आम आदमी की पीड़ाओं को उसकी रचनाओं में न सिर्फ अभिव्यक्ति मिले, अपितु इनसे मुक्ति का पथ भी प्रशस्त होता दिखाई दे। शान्ति सुमन का रचनाकर्म इस कसौटी पर पूरी तरह खरा उतरता दिखाई देता है। उनके गीतों में अदम्य जिजीविषा और संघर्ष की जिद यत्र–तत्र–सर्वत्र देखी जा सकती है। उनके गीत का एक अंश दृष्टव्य है –

"पहले तेरी कुर्सी पर हम फूल चढ़ाते थे,
अब तेरी कुर्सी पर हम बारूद बिछा देंगे।
पहले शोषण की अंधी घाटी में बहकाते थे,
अब शोषण के मंसूबों को खाक बना देंगे।"

डॉ0 शान्ति सुमन सोद्देश्य सृजन में विश्वास करती हैं। वे लोगों की कोरी वाहवाही के लिए गीत नहीं लिखतीं, बल्कि अपने समय और समाज की नब्ज पर हाथ रखकर कदम–दर–कदम एक सजग–सचेत प्रहरी की भूमिका में आम आदमी के साथ चलती दिखाई देती हैं। उनकी यह यात्रा एक महान लक्ष्य के लिए है। वह लक्ष्य है – 'एक नये समाज के निर्माण का लक्ष्य।' संभवतः यही कारण है कि वे मार्क्सवादी जनवादी विचारधारा की प्रबल पक्षधर रही हैं। यह सच है कि शान्ति सुमन की गीतयात्रा नवगीत–कवयित्री के रूप में नवगीत आंदोलन से प्रारंभ हुई, जिसमें बाद में जनवादी तत्त्व जुड़ते गए। ऐसा उनकी सामाजिक–रूढ़ियों और विषमताओं के खिलाफ संघर्ष करने की प्रगतिशील सोच के चलते हुआ। इसके बावजूद वे समकालीन नवगीत की प्रतिनिधि हस्ताक्षर हैं। नवगीत को वे समकालीन गीत की सशक्त परिणति मानती हुई कहती हैं – "नवगीत में यदि तनाव, कुण्ठा, पीड़ा, पराजय और रंगीन सपने अधिक हैं, तो इसके लिए तत्कालीन आर्थिक–सामाजिक व्यवस्था ही जिम्मेदार है। तत्कालीन सामाजिक–आर्थिक और साहित्यिक परिस्थितियों के दबाव ने जिस गीत–चेतना को जन्म दिया, उसको ही नवगीत की संज्ञा से अभिहित किया गया। किसी ने उसको आन्दोलन की संज्ञा दी, किसी ने उसको स्वतःस्फूर्त विधा के रूप में जाना। मैंने नवगीत को गीत

की विकास यात्रा की अनिवार्य परिणति के रूप में स्वीकार किया।''

(प्रेस मेन, भोपाल, 11 जुलाई, 2009)

जीवन की सच्चाई के कठोर धरातल पर बैठकर शान्ति सुमन ने छायावादोत्तर गीतकारों की लिजलिजी–भावुकता वाली संवेदना को सर्वथा नवीन भाषाई तेवर प्रदान किए हैं। हिन्दी के अत्यंत आदरणीय और वरेण्य गीतकार नचिकेता कहते हैं –

''मध्यवर्गीय जनजीवन की त्रासदी, विसंगतियाँ, विडम्बनाएँ, यथास्थितिवाद, स्वार्थपरता और ढुलमुलपन शान्ति सुमन के इस दौर के गीतों (नवगीतों) की केन्द्रीय विषय वस्तु रही है। अपनी विशेष ग्रहणशीलता के कारण शान्ति सुमन अपने गीतों में नई ताजगी, सादगी और कलात्मक वस्तुपरकता के सृजन में संघर्षरत दिखाई पड़ती हैं।''

(शान्ति सुमन की गीत रचना और दृष्टि, पृष्ठ – 158)

स्वयं शान्ति सुमन के शब्दों में – ''इनमें मध्यवर्गीय अवचेतनाओं का उतार–चढ़ाव आपको यत्र–तत्र–सर्वत्र मिलेगा और धरती की बातों से धरती की गंध मिलते ही आप यह महसूस करेंगे कि इन गीतों में कुछ है, जो आपको बार–बार छू जाता है। इस छुवन के पीछे इन नवगीतों में न केवल मध्यवर्गीय ऊब, कुंठा, घुटन, विवशता, शैथिल्य है, अपितु हृदय और बुद्धि का असामंजस्य, व्यवहार एवं आदर्श का वैषम्य एवं टुकड़े–टुकड़े होकर बँटे व्यक्ति के बाहरी दबाव भी हैं।''

(शान्ति सुमन की गीत रचना और दृष्टि, पृष्ठ – 162)

डॉ0 शान्ति सुमन की सृजनधर्मिता पर बात करते समय एक तथ्य का ध्यान और रखा जाना जरूरी है। उन्होंने जो रचा है, उसे, जिसके लिए रचा गया, उस तक पहुंचाने का महत्वपूर्ण कार्य भी उन्होंने बखूबी किया है। देश के अनगिनत काव्य–मंचों के माध्यम से वे लंबे अरसे से अपने गीतों को सुमधुर आवाज देकर हजारों–हजार श्रोताओं को गहरे तक प्रभावित करती रही हैं। गीतकारों के संदर्भ में यह तथ्य भले ही आम हो, किन्तु एक नवगीतकार के लिए उसका यह वैशिष्ट्य सचमुच उसे भीड़ में रहकर भीड़ से अलग रखने को बाध्य करता है। उम्र के पैंसठ से अधिक पड़ाव पार कर चुकने के बावजूद आज भी मंच से जब – **''दरवाजे का आम आँवला/घर का तुलसी चौरा/इसीलिए अम्मा ने अपना गाँव नहीं छोड़ा''** और **''बोये हुए बीज खेत में/रचते हैं रंगोली/अँकुरायेंगे तब सखियों की/होगी हँसी–ठिठोली''** जैसे गीतों को अपना स्वर देती हैं, तो सामने बैठे असंख्य श्रोता साँस रोककर उन्हें सुनते और वाह–वाह करते हैं। गीत के इस सर्वथा नवीन अवतार को, जिसे हम नवगीत के नाम से पुकारते हैं, उसमें सरल शब्दों में गूढ़ से गूढ़ भावानुभूतियों को अत्यंत सहज काव्यभाषा में ढालकर आमजन तक पहुंचाना शान्ति सुमन को अलग से रेखांकित किए जाने योग्य बनाता है। उनके गीतों में जैसे उपमान और प्राकृतिक उपादान यत्र–तत्र–सर्वत्र उपस्थित हैं, वह उनकी मौलिकता की गवाही तो देते ही हैं, उनके गीतों को कालजयी भी बनाते हैं। लेखन की यह विशेषता उनके परिपक्व जीवनानुभवों से संपृक्त सृजनकर्म की निरंतरता का परिणाम है। 'ओ प्रतीक्षित', 'परछाई टूटती', 'सुलगते पसीने', पसीने के रिश्ते', 'मौसम हुआ कबीर', 'तप रहे कचनार', 'पंख–पंख आसमान', 'भतीर–भीतर आग', 'धूप रंगे दिन', 'एक सूर्य रोटी पर' और 'मेघ इन्द्रनील' (मैथिली गीतों का संग्रह) के गीत कवयित्री को नवगीत के धरातल पर पूरे अधिकार और सम्मान के साथ प्रतिष्ठित करते हैं। सृजन–भावबोध, संवेदना और संप्रेषणीयता, ये तीनों तत्त्व शान्ति सुमन के गीतों में अपने सर्जक के व्यक्तित्व की परछाईं बनकर पाठक के समक्ष उपस्थित होते हैं।

उनके अनेक गीत (नवगीत) प्रेम, प्रकृति और मानवीय संवेदनाओं के सुगन्धित पुष्पगुच्छ हैं, जिनका सौष्ठव, जिनकी खुशबू, जिनकी रागात्मकता यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि 'सुलगते पसीने' और 'भीतर–भीतर आग' के ताप को निरंतर सहते हुए अपनी यात्रा जारी रखने के क्रम में कवयित्री के अंतस् का प्रेम का स्रोत सूखा नहीं है, न सूखेगा। उनके एक गीत की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं –

''तन धीरे हुआ कासवन/मन सूरजमुखी बन गया
छवि खिंची दरपनी वक्ष पर/एक तूफान थमने लगा
गंध महकी जुही जंगलों सी/एक पिघलाव जमने लगा।''

प्रणय के पलों को ऐसी रोमांचकारी अभिव्यक्ति प्रदान कर पाना शान्ति सुमन के ही वश की बात है।

इस प्रकार कह सकते हैं कि शान्ति सुमन ने अपनी काव्ययात्रा में आग और राग दोनों को ही पूरी शिद्धत के साथ महसूसा और जिया है। उनकी यह यात्रा इसी प्रकार अबाध–निर्बाध चलती रहे, यही शुभकामनायें हैं।

■

जनगीत की लोक-संवेदना और सौंदर्य

❑ नंद भारद्वाज

हिन्दी में गीत–काव्य की अपनी एक समृद्ध परंपरा रही है। नई कविता के दौर के पहले के सभी हिन्दी कविताओं ने अपने समय के जीवन–यथार्थ और जीवन–अनुभवों को प्रायः गीतों के माध्यम से ही व्यक्त करने का सार्थक प्रयास किया और उस दौर के बहुत से गीत आज भी हिन्दी कविता की अमूल्य धरोहर माने जाते हैं। स्वाधीनता आंदोलन के दौर में ऐसे बहुत से गीत जन–जागरण और लोक–अभिव्यक्ति का मुख्य आधार भी रहे। हिन्दी की प्रगतिशील काव्य–परंपरा में तो गीतों की मुख्य भूमिका रही ही, नई कविता या छंदमुक्त कविता के दौर में भी गीत का महत्व कभी कम नहीं हुआ। नई कविता के समानांतर वर्षों तक नवगीत रचे जाते रहे और हिन्दी की रंगीन पत्र–पत्रिकाओं में उन्हें पूरे उत्साह से छापा जाता रहा। इन्हीं नवगीतों के दौर में ऐसे जन–गीत भी रचे गए जो आगे चलकर मेहनतकश तबकों और आम जनता की लोक–अभिव्यक्ति का आधार बन गए।

इस ऐतिहासिक प्रक्रिया में एक अजीब बात यह भी देखने में आई कि यही जनगीत जनता के जीवन–संघर्ष में अपनी रचनात्मक भागीदारी के चलते सत्ता–व्यवस्था और साहित्यकारों के एक खास वर्ग में निरंतर आँख की किरकिरी बने रहे। वे लगातार इस बात का प्रयत्न करते रहे हैं कि कविता और साहित्य उन जैसे साहित्यवादियों के बीच का ही शगल बन कर रहे, उसे आम जनता के दुख–तकलीफ और संघर्ष से जोड़ना न उनके अपने अस्तित्व के लिए अच्छा है और न साहित्य के लिए। चूँकि सत्ता प्रतिष्ठानों और प्रकाशन के बड़े ठिकानों पर इन्हीं साहित्यवादियों का असर और कब्जा रहा है, इसलिए लोक–संवेदनाओं और जन–संघर्षों से जुड़ी कविता के प्रकाशन और प्रचार–प्रसार के अवसर सीमित ही उपलब्ध रहे। यह स्थिति न केवल लोक से जुड़ी कविता और जन–गीत के साथ रही, बल्कि जन–सहित्य की सभी विधाओं के साथ कमोबेश यही स्थिति रही। जनवादी कविता और जन–गीत ऐसे दौर में मेहनतकश तबकों और आम पाठक–श्रोताओं के बीच एक अलग तरह का माहौल बनाते रहे हैं – वे ऐसे सामयिक मसलों और ज्वलंत सवालों को उठाते रहे हैं, जो लोगों की रोजमर्रा की जिन्दगी

से गहरा ताल्लुक रखते हैं। ऐसे ही माहौल में जन–आकांक्षा के अनुरूप कविता में वह स्वर उभर कर सामने आता है, जो उस व्यवस्था को चुनौती देता–सा प्रतीत होता है –

'बोकर अपनी उमर खेत में/हम क्यों जुल्म सहें
रोटी देने वाले क्यों/खुद को कमजोर कहें,
ऐसा कहने वाला होगा, कोई नया दलाल,
बहिना रोटी हुई सवाल।'

अपने गीतों में ऐसे ही तल्ख सवाल उठाने वाली कवयित्री शान्ति सुमन समकालीन हिन्दी कविता के इस उलझे हुए दौर में अपनी अलग पहचान लेकर सामने आती हैं। वे पिछले चार दशकों से काव्य–लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हैं और अब तक उनके दस कविता–संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। सद्य–प्रकाशित संग्रह 'पंख पंख आसमान' उनके एक सौ एक गीतों का ऐसा संचयन है, जिसमें उनकी काव्य–यात्रा का समग्र विकास संकलित हुआ है और इस प्रतिनिधि चयन का संपादन किया है हिन्दी के वरिष्ठ कवि नचिकेता ने, जिन्होंने उनके अब तक प्रकाशित सभी गीत संग्रहों में से चुनिंदा गीतों का चयन कर एक अनूठा संकलन तैयार किया है।

संचयन के प्रारंभ में शान्ति सुमन की गीत–यात्रा पर अपना सारगर्भित विवेचन प्रस्तुत करते हुए उनके गीतों की अंतर्वस्तु, अनुभव–संसार और रचना कौशल की खूबियों को उजागर करते हुए वे लिखते हैं : 'शान्ति सुमन के गीतों में मैथिली संस्कृति और लोकभाषा की मिठास और माधुरी है तो कमला, बागमती और कोसी की वेगवती धारा और उत्ताल तरंगों की क्षिप्रता और आवेग भी है... उनके अनुभवों का पाट बहुत चौड़ा है और जमीन उर्वर। इसके अनेक रंग और खुशबू हैं। इसमें रंग–बिरंगे पेड़–पौधे, लता–वनस्पतियाँ, फल–फूल, पशु–पक्षी, जीव–जंतु, फसलें, मनुष्यों की जीवन स्थितियाँ, जीवन संघर्ष और मुक्ति संघर्ष की अत्यंत ही रंगीन दुनिया है। शान्ति सुमन ने अपने गीतों में लोकभाषा के शब्दों, लोकोक्तियों, छंदों और धुनों को अंतर्दृष्टि के साथ कलात्मक ढंग से पिरोया है, जिससे उनके गीतों की कलात्मकता निखर गई है।'

नचिकेता ने अपने इस विवेचन में हिन्दी के वरिष्ठ कवि कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, आलोचक डॉ0 मैनेजर पांडेय और डॉ0 कमला प्रसाद के

विवेचन के हवाले से यह रेखांकित किया है कि शान्ति सुमन अपनी अनूठी लोक–संवेदना और कलात्मक अभिव्यक्ति के कारण हिन्दी कविता में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। यही नहीं शान्ति सुमन के इन गीतों के बारे में डॉ0 रेवतीरमण का तो यहाँ तक मानना है कि उनके गीतों में जयदेव भी हैं, विद्यापति भी हैं और शुरूआती दौड़ के नागार्जुन भी। ....उनके गीतों में मिथिला को गंभीर रचनात्मक प्रतिनिधित्व मिला है। मैथिल संस्कृति के वे सारे उपकरण जो नागार्जुन की कविता को अमरता देने वाले हैं, बड़े शालीन तरीकों से शान्ति सुमन के गीतों में सक्रिय हैं।

चार दशकों की इस काव्य–यात्रा में अकविता, नई कविता, नवगीत और जनवादी कविता के उथल–पुथल से भरे दौर में जन–गीतों के माध्यम से अपनी जगह बनाना कोई आसान काम नहीं था। यद्यपि हिन्दी में नई कविता के समानांतर नवगीत और जनगीत लिखने की एक समृद्ध परंपरा रही है, जहाँ सुभद्रा कुमारी चौहान से लेकर भवानी प्रसाद मिश्र, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रमेश रंजक, हरीश भादानी, अश्वघोष आदि कवियों की एक लंबी शृंखला रही है, जिन्होंने नई कविता के समानांतर बेहतरीन जनवादी कविता और जन–गीत लिखे और उन्हें मेहनतकश तबकों में व्यापक लोकप्रियता भी हासिल हुई। शान्ति सुमन उसी काव्य–परंपरा की एक सशक्त कड़ी हैं, जिनके गीतों में नवगीतों के दौर की ऊब, घुटन, टूटन, आत्म–निर्वासन, तनाव और अमानवीय जीवन स्थितियों के दमघोंटू वातावरण से निजात पाने की न केवल तीव्र छटपटाहट व्यक्त हुई है, बल्कि अमानवीय शोषण, असमानता, अन्याय और अव्यवस्था के प्रति गहरा आक्रोश भी प्रकट हुआ है –

अब जब खुली जुबान/सहेंगे नहीं दुखों को
हुई लड़ाई तेज चले/दस्ते लड़ने को
किसकी हुई मजाल, हमें रोके बढ़ना/
हों गरीब खुशहाल, यही अपना सपना

– 'गवाही मत देना', पृ0 96

शान्ति सुमन के गीतों में सम–सामयिक जीवन यथार्थ की सशक्त अभिव्यक्ति के साथ पारिवारिक संबंधों, मानवीय भावनाओं और प्रकृति के साथ मनुष्य के रिश्तों की अनूठी छवियाँ देखते ही बनती हैं। उनके

प्रेमगीतों की खूबी यह है कि यहाँ प्रेमी या प्रेमिका के अंतरंग प्रणय निवेदन के स्थान पर जीवन–संघर्ष के बीच ही श्रमिक–दंपतियों के प्रणय–भाव और श्रम का सौंदर्य अपनी पूरी रागात्मकता के साथ प्रकट हुआ है –

'हाथ के गट्ठे कभी जो/चैन पाकर लगे दुखने
प्यार वे पाकर तुम्हारे/करीने से लगे कमने

– 'फूलवाली आँख', पृ0 42

'अबके काट रहा जब मैं खुद/अपने हाथों फसलें
परस तुम्हारे हाथों का भी/कहता मिलकर हँस लें'

– 'रुकता नहीं प्यार', पृ0 48

और यही प्यार जब सद्यः सुहागिन बेटी के प्रति माँ की आँखों में उमड़ता है तो उसकी अभिव्यक्ति और भी बेजोड़ हो उठती है –

'तुम अम्मा के घर की देहरी, बाबूजी की शान
तू भाभी के जूड़े का पिन/भैया की मुस्कान।'

दरअसल शान्ति सुमन के प्रेमगीतों में कहीं–कहीं रागात्मक बोध का रंग इतना गहरा और चटख है कि वह एकबारगी जिन्दगी की सारी कड़वी सच्चाईयों को ओझल कर देता है। कुछ ऐसे ही चटख रंग को दर्शाता हुआ उनका एक गीत है 'तुम्हारा नाम' –

'केसर रंग रंगा मन मेरा/सुआ–पंखिया शाम है
बड़े प्यार से सात रंग में/लिखा तुम्हारा नाम है।'

– 'तुम्हारा नाम', पृ0 31

अपनी गीत यात्रा के पहले दौर में शान्ति सुमन ने ऐसे अनेक गीत लिखे हैं, जिनमें स्त्री–पुरुष के अंतरंग रिश्ते और नारी–संघर्ष के विभिन्न पहलू खुलकर सामने आते हैं। कुछ ऐसे गीत इस संचयन में भी शामिल किए गए हैं और इन गीतों के माध्यम से न केवल स्त्री के प्रणय–भाव की झलक मिलती है बल्कि इन गीतों के माध्यम से नारी के जीवन संघर्ष और स्त्री–विमर्श के अन्य वृहत्तर सरोकारों की भी प्रभावशाली अभिव्यक्ति यहाँ देखने को मिलती है। यह उन्हीं के उदात्त सोच का प्रमाण है कि वे स्त्री को पूरी पृथ्वी माँ के सादृश्य में देखती हैं –

'तुम पूरी पृथ्वी हो माँ/सपनों में रोज सुलगती
ऊपर–ऊपर ठोस मगर/भीतर से बहुत धधकती।'

– 'पूरी पृथ्वी माँ', पृ0 41

इन गीतों में माँ, दादी, काकी, नवकी भौजी, रानी बहना जैसे आत्मीय संबोधनों के माध्यम से स्त्री के पारिवारिक रिश्तों, उसके राग–रंग, सुख–दुख, मान–सम्मान, संघर्ष और जीवन में उसकी सकारात्मक भूमिका को रेखांकित करने का जो अनायास उद्यम यहाँ हुआ है, वह वाकई बेजोड़ है। *इन जन–गीतों में घर–परिवार, अंचल और देश–दुनिया में अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए संघर्ष करने वाले आम लोगों की घरेलू जिंदगी के जो आत्मीय चित्र अंकित हुए हैं, उन्हीं से झाँकती लोक–संवेदना का सौन्दर्य इन गीतों को हिन्दी के आम गीतों से अलग, विलक्षण और अद्वितीय बनाता है।*

■

संवेदनशीलता की गीतकर्त्री : डॉ० शान्ति सुमन

❑ डॉ० इन्दु सिन्हा

गीत–साहित्य कविता की सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सूक्ष्म विधा है। वेदना और करुणा की भावभूमि पर ही गीत की सृष्टि होती है। लोक–सामान्य भावभूमि पर हृदय–हृदय का रागात्मक सम्बन्ध–स्थापना ही कविता का लक्ष्य है। कविता वेदनागम्य होकर भी दुःख के आगे पराजित नहीं होती है। वह दुःख का परिमार्जन करके आनंद की रसधारा प्रवाहित करती है, मन–प्राण में आशा और विश्वास जगाती है, जीवन में सहजता लाती है। जीवन की जटिलताओं को ऋजुपथ की ओर गतिशील रखती है। हृदय की सुकुमारता तथा सौन्दर्यबोध की भावना गीत का अन्तश्चेतना है। कल्पनाओं एवं भावनाओं की सूक्ष्मता, अनुभूति की पारदर्शिता, संगीतात्मकता गीत साहित्य के प्राण–तत्त्व हैं। यहाँ भावनाओं का कोमल, स्निग्ध एवं उदात्त स्पर्श होता है। लब्धप्रतिष्ठ आलोचक क्रिस्टोफर कॉडवेल ने कविता के सत्य को भावात्मक प्रभाव (Emotional effect) बताया है। गीत हमारी रागात्मक संवेदनाओं की लयात्मकता से जुड़ा होता है।

डॉ0 शान्ति सुमन, गीत की आगे बढ़ी हुई चेतना नवगीत की प्रथम एवं सर्वश्रेष्ठ कवयित्री हैं। हिन्दी गीति–काव्य परम्परा की विशिष्ट कड़ी के रूप में ये प्रतिष्ठित हैं। शान्ति सुमन हिन्दी गीति जगत की एक सुविख्यात सशक्त हस्ताक्षर हैं जिनका स्पर्श किए बिना हिन्दी गीत–साहित्य के इतिहास का प्रवाह आगे बढ़ ही नहीं सकता है।

जब परम्परागत गीतों की धारा सूखने लगी थी, उसे दोयम दर्जे का साहित्य कहा जाने लगा था तब डॉ0 शान्ति सुमन ने लोकचेतना, लोक संस्कृति से इसे संस्कारित किया, उसका पोषण किया और गीत के विकास में अपना महती योगदान किया। लोक जीवन की सहजगन्ध से सुवासित इनकी रचनाएँ भारतीय जीवन के अधिक निकट हैं। इनकी सौन्दर्य–चेतना समय–सापेक्ष है। इनके गीतों में विलक्षणता एवं असाधारणता के बदले लोक सम्बन्ध–सहजता है फलतः लोकप्रियता के निकष पर इनके गीत खरे उतरते हैं। नए चाक्षुष बिम्बों तथा लोकोक्तियों

से मण्डित इनके कई गीत विलक्षण छटा प्रस्तुत करते हैं।

डॉ0 सुमन के प्रांरभिक गीतों में जीवन का राग उच्छ्वास बनकर फूटा था। 'ओ प्रतीक्षित' में इनकी बानगी देखने को मिलती है। गीत रचना की अनिवार्यता के रूप में नवगीत का सृजनकर कवयित्री ने एक नए तेवर का परिचय दिया है। छठे दशक के पूर्व से ही नगरीय द्वन्द्वों को उकेरते हुए ग्राम्य चेतना को गीतों में स्वीकृति मिली थी। कवयित्री ने उसे सहज भाव से सँवारा है, स्वीकारा है – *'फूल पत्ती जड़ तना है/साँस पर कुहरा घना है/बेंत–वन की घाटियों में/बैठना उठना मना है/जंगलों में सुख कहाँ/अहसान दुखता है।'*

नवगीत में आंचलिकता का स्वर भर कर इन्होंने अपने गीतों की बाँसुरी को सांगीतिकता प्रदान की है। इनके मधुर कण्ठ का सहारा पाकर गीत विधा पुनःप्रतिष्ठित हो उठी है। जब उच्छ्वास से भरी भावनाएँ जीवन की चढ़ती दुपहरी का ताप झेलती हैं तब काव्य–संवेदना मानव–जीवन की विविध अनुभूतियों से जुड़ती जाती है। 'वह लड़की' शीर्षक कविता की लड़की 'आँखों में संपनों की दुनिया' लेकर 'बया के पंख पकड़ती है किन्तु जीवन का दुःख–दैन्य उसे खुशियों का बीज छींटने नहीं देता है क्योंकि उसके आगे परती है, उपजाऊ धरती नहीं। यह पीड़ा–बोध कवयित्री की संवेदना को तिलमिला देता है और वह अनुभूतियों की डोर पकड़कर जनवादी गीतों के सृजन का संकल्प लेकर 'आँखों में आग' जैसे गीत लिखती हैं – *'तुमने धरती पर हल से/अपना अधिकार लिखा/ओ रे फौलादी तुमने/अपना घर–बार लिखा।'*

और फिर उनके सामने – *'चिड़िया के डैनों से/खुलते आये दिन उजले/फिर कोई जल गीत लगे/नभ से उतरे हौले।'* वे क्रांति की मशाल जला कर 'भीतर–भीतर आग' की ज्वाला में सुलगकर जन चेतना को जाग्रत करती हैं। वे स्वयं स्वीकार करती हैं – 'नवगीत के कोख से जनबोधी गीत आये और फिर जनगीतों का उदय हुआ। अपने मूल रूप में नवगीत मध्यवर्गीय भावानुभूतियों का प्रस्तोता रहा। परन्तु सत्तर तक आते–आते वह विभिन्न रचनात्मक द्वन्द्वों से घिर गया। अपने समय की परिस्थितियों के दबाव के कारण वह विभिन्न मुद्राएँ धारण करता रहा, पर उसका गीत तत्त्व बाधित नहीं हुआ। गीत,

नवगीत, जनगीत की विभिन्न धाराओं में बहता हुआ पुनर्गीत होता चला आ रहा है।

कई गीतों में कवयित्री का जुझारू एवं आक्रामक रूप भी प्रकट हुआ है – *"बजी फावड़े की धुन/ऊसर घाटी में/.../आगों से सुलझा मौसम को/दबा मुट्ठियों में हर गम को/पाँव बंधेगे नहीं कभी/अब परिपाटी में।"* कवयित्री श्रम का मूल्य जानती है। उसी से जीवन में खुशी आती है तभी तो 'हंसिया मचल रहा' में वह कहती हैं – *"कब से पेड़–पखेरु करते/हैं मुठभेड़ हवा से/सीख रहे हैं बच्चे हँसना/अब तो राम दया से/उजियारे आँखों में छाये/मेल सगे।"*

सामाजिक विषमताओं, समसामयिक विडम्बनाओं एवं जनशोषण को कवयित्री ने वाणी दी है – *"नदी सूखी प्यास के पहले/बाज के हाथों पड़े मसले/नहीं असमय मरेंगे ये शब्द/सृजन को सुर में गढ़ेंगे शब्द।"* शान्ति सुमन के गीत परिवार के प्रति अपने स्नेह को प्रकट करने के सुन्दर साधन हैं। उनके गीतों में परिवारजन्य अनेक चित्र आए हैं। परिवार राष्ट्र और समाज की एक इकाई है। इनके परिपार्श्व में जब परिवार रहता है तो इनके गीतों में वह मार्मिकता एवं प्रभविष्णुता भर देता है। मैथिलीशरण गुप्त की तरह तब इनके गीतों में आश्रमवासिनी पवित्रता आ जाती है। प्रेम और सौहार्द का परिवेश उपस्थित हो जाता है – *"धीरे पाँव धरो/आज पिता गृह धन्य हुआ है/मंत्र सदृश उचरो।"* परिवेश से प्राप्त यह भावचेतना कवयित्री की कोमल संवेदना की महत्तम प्रस्तुति है।

कवयित्री सुमन की रचनाओं में मानवतावाद की खोज है। यह मानवतावादी चिन्तनधारा उन्हें आर्थिक शोषण के विरूद्ध आवाज उठाने का बल देती है। दिनानुदिन बढ़ती विपन्नता एवं समस्याएँ इन्हें समूह के दर्द से बाँधती है और तब इनकी रचनाएँ अमानुषिक व्यवस्था के प्रतिरोध का दस्तावेज बन जाती हैं। इनकी रचनाओं में सामाजिक जीवन की व्याप्ति मुखरित है। अति यांत्रिकता के कारण छिन्न–भिन्न होती हुई संवेदनाएँ शान्ति सुमन के गीतों के प्राणविन्दु हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है – *"दरवाजे का आम आँवला/घर का तुलसी–चौरा/इसीलिए अम्मा ने अपना गाँव नहीं छोड़ा।"*

आंचलिक प्रतीकों और बिम्बों ने इनके गीतों में सहजता एवं स्वाभाविकता भर दी है। आर्थिक तनावों से परिचालित जीवन–मूल्यों की सहज अभिव्यक्ति इनके गीतों को सम्प्रेष्य बना देती है।

विषय–व्यंजना की दृष्टि से यह सीधी पहुँच (डाइरेक्ट एक्सपोज) इन गीतों में अतिरिक्त सौन्दर्य लाती है। क्यूबिज्म का यह कथन – 'A straight line is stronger than a curved line' इनके गीतों पर सही उतरता है, उसकी सार्थकता सिद्ध करता है। श्रम–सीकर से सिक्त कृषक, श्रमिक वर्ग की अन्तर्निहित शक्ति को समझने–समझाने का श्लाध्य प्रयास इनके गीतों में स्पष्ट है। वह चाहे 'सुलगते पसीने', 'पसीने के रिश्ते', 'मौसम हुआ कबीर', 'तपं रहे कचनार' शीर्षक गीत–संग्रह हो या 'भीतर भीतर आग', 'पंख पंख आसमान', 'समय चेतावनी नहीं देता' (कवितायें), 'एक सूर्य रोटी पर' के गीत हों, सभी जगह कवयित्री ने जीवन के दर्द को उकेरा है और आम आदमी के भीतर की शक्ति को जाग्रत करने की चेष्टा की है।

नवगीत की कलात्मकता को सुमन ने बड़े ही सुकुमार तरीके से बरकरार रखा है। आंचलिक संवेदना की चाशनी पाकर इनके गीत बड़े ही मधुर हो गए हैं। यह माधुर्य इनके जनवादी गीतों में भी दर्शित होता है – *"आगे झुकती डालों वाली कली नगीने की...../साँझों में भीगेंगी आँखें/टपके महुवे कच्चे, बाँहों पर ताबीज लपेटे/हँसी दबाए बच्चे।"*

गीतविधा को अपनाकर गीतों की स्वर्णधूलि से इन्होंने गीतिकाव्य को आकाश का विस्तार दिया है। नवगीतों, जनवादी गीतों के माध्यम से उसे नयी जमीन दी है। स्वर को नाद और लय का आधार देकर उसकी व्यापक शक्ति को बढ़ाने का महती कार्य किया है। वेदों में उल्लिखित स्वर की शक्ति *'व्यापिनी बचेमि रूपाः स्मुरन्त स्वर शक्तयः'।* को गीतों का आधार दिया है।

टी0 एस0 इलियट का यह कथन शान्ति सुमन के गीतों पर सही उतरता है – 'A musical pattern of sound and a musical pattern of the secondly meaning of words.'

डॉ0 शान्ति सुमन के गीत दार्शनिकता से बोझिल नहीं हैं, उनमें एक सहजता है, पारदर्शिता है और यही कारण है कि इनके गीत सहज

सम्प्रेष्य हैं। कीट्स ने अपने ग्रंथ लामिया में लिखा है – 'Poetry dies at the mere touch of cold Philosophy.' लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि इनके गीतों में दार्शनिकता का अभाव है। हाँ इनके गीतों में दर्शन की दुरुहता नहीं बल्कि एक सहज जीवन दृष्टि है जो हमारे अन्तर्मन को संवेदित करती, उसे प्राणवान बनाती है, नयी जन–चेतना से समन्वित करती है।

शान्ति सुमन के गीतों का आकाशीय विस्तार जितना ऊँचा है, उतनी ही ऊँची है इनकी कलात्मक दृष्टि। स्वर, लय और तान को साधकर इन्होंने विषय को व्यापक सौन्दर्य दिया है। ये सामाजिक बोध को जिस सहजता से अभिव्यक्ति देती हैं वह इनकी कलात्मक सूझका परिचायक है – प्रांजल भाषा से गहरी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति कवयित्री की विलक्षणता का प्रमाण है। जीवन के विकास का स्वर–संधान लेकर कवयित्री मानव–शक्ति की महत्ता आंकती है। अपने अन्तर के प्रकाश से जन–जीवन को प्रकाश देती है। बाह्य जगत उनके अन्तर में प्रविष्ट होकर एक नया रूप लेता है तब उसी व्यापक भावना को गीतों में उतारती हैं।

अनेक पुरस्कारों, सम्मानों से सम्मानित डॉ0 शान्ति सुमन ऐसी गीतकर्त्री हैं जिन्होंने जीवन के हर पक्ष को अपने गीतों में वाणी दी है। डॉ0 विजेन्द्र नारायण सिंह के शब्दों में – 'विकसनशील संवेदनशीलता की गीतकर्त्री हैं – शान्ति सुमन।'

■

शान्ति सुमन : गीतों की अंतर्यात्रा

❑ डॉ० सुरेन्द्र प्रसाद जमुआर

1960 के दशक में शान्ति सुमन, शान्ति जैन और शान्ति ओझा के नाम पत्रिकाओं में अक्सर पढ़ने को मिल जाया करते थे। शान्ति सुमन (15/9/1942) और शान्ति जैन (14/7/1946) के काव्य और गीत प्रकाशित होकर लोकप्रिय होने लगे थे। इन दोनों कवयित्रियों के काव्य–संग्रह निकल चुके थे। शान्ति सुमन का 'भीतर–भीतर आग' संग्रह उनकी जनवादी गीत–रचना में सक्रिय था और इस संबंध में उसकी समीक्षा मेरे द्वारा 'हिन्दुस्तान' दैनिक पत्र में 2003 में की जा चुकी है। शान्ति सुमन जी के काव्य की अंतर्यात्रा कितनी संवेदनशील है, अपने गीतों में संघर्षशील, श्रमजीवी जन–जीवन के सकारात्मक पहलुओं को उन्होंने किस तरह उजागर किया है, इसकी विवेचना करना इस निबंध का उद्देश्य है। उनकी यह यात्रा बिम्बात्मक रही है तथा उनकी यात्रा गीत से शुरू होकर नवगीत तथा जनगीत तक की स्थितियों की गवाह रही है।

शान्ति सुमन का जन्म उत्तर बिहार के सहर्षा जिले के कासीमपुर गाँव में 15/9/1942 को हुआ। 1965 में एम0 ए0 उत्तीर्ण होने के बाद 1966 में मुजफ्फरपुर के महन्त दर्शनदास महिला कॉलेज में उनकी नियुक्ति हुई तथा उन्होंने अपनी तेजस्विता और मानसिक ऊर्जा को सतत् सहेजे रखा। वे अपने परिवार के अत्यंत साधारण व्यक्तित्व सी थीं। गाँव में अपने टोले में उन्होंने बच्चों को भूखा–नंगा देखा। इनका परिवार बड़ा था जिसमें खानेवाले और आराम करनेवाले अधिक थे। सुमन जी ने लोगों को बेगार खटते देखा और घर के बाहर खेत–खलिहान सभी जगह गरीब व्यक्तियों को पिसते और घुटते देखा। अपनी छोटी उम्र में ही वे इस विषमता को समझने लगी थीं। जीवन के इसी प्रभाव ने शान्ति सुमन के गीतों की जनवादी पृष्ठभूमि बनाई है।

वैसे तो शान्ति सुमन गीत लिखा करती थीं, लेकिन 1970 में 'ओ प्रतीक्षित' पहला गीत–संग्रह छपने पर उन्होंने नवगीत विधा में अपनी उपस्थिति बनाई। इस धारा में बहकर इन्होंने बहुत स्तरीय गीत लिखे।

शान्ति सुमन के पिता का नाम भवनन्दन लाल दास है जो कुँवर बाबा

के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनकी पूज्य माताजी का नाम जीवनलता देवी था जिनका 30 नवम्बर 1986 को देहान्त हुआ। शान्ति सुमन को दादी का सान्निध्य अधिक मिला। वे अपनी दादी के रूप, गुण एवं स्वभाव जैसी बड़ी शालीन हैं। अपने नौ भाई–बहनों में वे सबसे बड़ी हैं। इनको सर्वाधिक प्यार मिला। अपनी माँ जीवनलता की तरह इनका नाम घर में तथा आजीविका में शान्ति लता है। उन्होंने इसी नाम से प्राध्यापन किया और 2004 ई0 में हिन्दी विभागाध्यक्ष के पद से सेवामुक्त हुई हैं। शान्ति सुमन जी का 33 वर्षों तक कॉलेज–प्राध्यापन के साथ उनका सामाजिक सरोकार बेहद घना होता गया। इनका पुत्र अरविन्द (मुकुल) बहुत मेधावी है और दूसरी संतान चेतना वर्मा उनकी पुत्री है। चेतना स्वयं एक कवयित्री है और उनका एक काव्य–संग्रह 'उस दिन का इन्तजार' 2007 में छपा है। शान्ति सुमन को अपने दामाद सुशान्त वर्मा (यांत्रिक अभियंता) के असमय निधन से गहरा संताप हुआ। उसका रचनात्मक बोध–मूल्य इनके काव्यों में भी दिखता है।

इनकी पहली गीत–रचना सुपौल जिलान्तर्गत त्रिवेणीगंज के कवि तारानन्दन तरुण द्वारा संपादित पत्रिका 'रश्मि' में छपी। उन्हें आकाशवाणी और दूरदर्शन के कई केन्द्रों से कई वर्षों से अपने गीतों को प्रसारित करने का मौका मिलता रहा है। लगातार 30 वर्षों तक (1960–1990) आकाशवाणी पटना में ये नियमित रूप से कार्यक्रम में भाग लेती रहीं हैं। शान्ति सुमन पटना के अतिरिक्त राँची, लखनऊ, इलाहाबाद, वाराणसी, जम्मू–कश्मीर, दिल्ली, कलकत्ता, मुम्बई आदि जगहों के अनेक आकाशवाणी और दूरदर्शन केन्द्रों में सस्वर गीत–पाठ कर चुकी हैं।

गीत–काव्य की उपासिका शान्ति सुमन की सरलता और शालीनता उनके व्यक्तित्व के गुण हैं। उनकी रचनाओं में मिथिलांचल के गाँव की मिट्टी की सुगंध और उसकी अस्मिता देखते ही बनती है। उनके गीतों में साधारण मनुष्य की व्यथा और संवेदना को कोमल शब्दों में गूँथने की कला मिलती है। उनके दस गीत संग्रहों में 'ओ प्रतीक्षित' (1970), 'परछाई टूटती' (1978), 'सुलगते पसीने' (1979), 'पसीने के रिश्ते' (1980), 'मौसम हुआ कबीर' (1985), 'तप रहे कचनार' (1997), 'भीतर–भीतर आग' (2002), 'एक सूर्य रोटी पर' (2006), 'धूप रँगे दिन' (2007) और एक मैथिली गीत–संग्रह 'मेघ इन्द्रनील' है। अभी 2011 में इनका एक गीत–संग्रह 'नागकेसर हवा' प्रकाशित हुआ है। इनकी कविताओं का

एक साझा संकलन 'समय चेतावनी नहीं देता' है और 'सूखती नहीं वह नदी' (2009) उनकी कविताओं का एकल संकलन है। इसके सिवा उन्होंने 'जल झुका हिरन' उपन्यास भी लिखा है जो उपन्यास से अधिक गीतकाव्य ही लगता है। शान्ति सुमन ने 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य' नामक एक आलोचना ग्रंथ भी लिखा है। इन्होंने 'सर्जना', 'अन्यथा' और 'बीज' नामक पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया है।

शान्ति सुमन के लेखन के विविध आयामों को समेटने हेतु उनके उपन्यास और समीक्षात्मक गद्य की संक्षिप्त चर्चा के बाद कहना है कि उन्होंने अपनी गीत–सर्जना की जमीन बदलकर जनवादी गीतों की रचना में लगा दी और वे नवगीत एवं जनवादी गीतों के बड़े हस्ताक्षरों में गिनी जाने लगीं। '60 के दशक में यानी 1958 ई0 में राजेन्द्र प्रसाद सिंह जी के 'गीतांगिनी' काव्य–संकलन का प्रकाशन होने पर शान्ति सुमन के गीत सामने आये। 'ओ प्रतीक्षित' को आत्मदान के अभिषेक में नवगीत की रचना मानकर राजेन्द्र प्रसाद सिंह जी ने उसकी संस्तुति की। उसके बाद कवि उमाकान्त मालवीय (1931–1982) ने शान्ति सुमन को नवगीत की एकमात्र कवयित्री, कविवर सत्यनारायण जी (1935) ने गीत के फलक पर शान्ति सुमन के अभिर्भाव को एक घटना, आलोचक और मेरे सहपाठी डॉ0 विजेन्द्र नारायण सिंह जी (1940) ने उन्हें हिन्दी के जनवादी गीतों के हस्ताक्षरों में एक बड़ी रचनाकार तथा इनके पारिवारिक मित्र कवि नचिकेता जी ने शान्ति सुमन को गीत–रचना का एक नया सौन्दर्यशास्त्र प्रदान करने के लिए अनेक संस्तुति–उपहार दिये।

'भीतर–भीतर आग' अपने इस गीत–संकलन मे 75 नवगीत संगृहीत करते हुए शान्ति सुमन ने अपने समय को गीतकारों के आत्मसाक्षात्कार का समय माना है। गीत को अत्याधुनिक साँचे में ढालने हेतु गीतकारों को सदैव सचेत रहने की बात की है –

'कभी धूप ने, कभी छाँव ने छीनी है कोमलता
एक करोटनवाला गमला रहा सदा ही जलता
खुशियोंवाले दिन पर लगता, लगा किसी का चाँटा है।' (पृ0 88)

'परछाईं टूटती' दूसरे नवगीत–संग्रह में मध्यवर्गीय व्यक्तियों की

व्यथाओं, उसका जीवन–यथार्थ और मानवीय संवेदनाओं की व्यंजना हुई है –

'जब कभी कोई बच्ची वर्षा में नहाती है,
घर की याद आती है।'

'सूखती नहीं वह नदी' (किताब पब्लिकेशन, हाजीपुर रोड, मुजफ्फरपुर) में शान्ति सुमन कविता की नई खिड़कियाँ खोलती हैं और स्मृति–जीवन में कविता को नई पहचान देती है। शान्ति सुमन की कविता लय में चलकर जीवन–वृत्तान्त बनती है।' ये विचार गोरखपुर (उ0 प्र0) के सशक्त आलोचक डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव के हैं। उसकी 'भूमिका' में शान्ति सुमन कविता को मनोरंजन का साधन नहीं, अपितु जीवन–संघर्ष के लिये एक पैना औजार मानती हैं। इस संग्रह की जो 2009 में प्रकाशित है, कवयित्री ने कहा है कि अंतर्वाह्य संघर्षों, जीवन की असुविधाओं और व्यवस्था की जटिलताओं ने इन कविताओं को लिखने की जमीन दी है। इन्होंने डॉ0 शिवकुमार मिश्र, डॉ0 विजेन्द्र नारायण सिंह, डॉ0 मैनेजर पाण्डेय, डॉ0 रेवती रमण एवं नचिकेता को समर्पित करते हुए, इस संग्रह में 75 कवितायें संकलित की हैं। इन कविताओं में संबंधों का एक रागात्मक विस्तार हुआ है – अलगाव के विरूद्ध। कवयित्री के भीतर भावना की कमी नहीं है –

'और शब्दों की तरह छपी होती है उसकी खुशी
हवा का एक हल्का झोंका है उसका गुस्सा
शहद में लिपटी हुई उसकी ममता, तुलसी के
पत्तों सो गमकता उसका स्नेह।'

(पृ0 21)

साधारण जन की जीवनधारा से क्रांतिकारी विचार पनपता है और बन्धन–मुक्ति के लिए छटपटाती स्त्री के बिम्ब विशेषता से उभरते हैं –

'चले जाना चाहते हैं तुम्हारी देह से निकलकर
मैं जानती हूँ कोसों दूर उजाले को अपनी आँखों में भरते हुए
तुम अपने अस्तित्व के हिस्से को
खींचकर निकाल रहे हो।'

(पृ0 28)

'सुलगते पसीने' (1979) के गीतों में शान्ति सुमन की एक सशक्त

जनवादी गीतकार के रूप में पहचान बनी और वे सामाजिक सरोकार से गहरे जुड़ती रहीं –

'बहो हवा हे झिर–झिर, तनिक अरज कर लें
अबके उपज सोनमाटी, परब सब दुख हर लें।'

शान्ति सुमन ने 'मौसम हुआ कबीर' (1985) के जनवादी गीतों में श्रम–सौन्दर्य से युक्त उस मजदूरिन माँ को चित्रांकित किया है जिसके बच्चे का बचपन कारुणिक है –

'फटी हुई गंजी न पहने खाये बासी भात ना
बेटा मेरा रोये माँगे एक पूरा चन्द्रमा'

'एक सूर्य रोटी पर' गीत–संग्रह 2006 में प्रकाशित होने पर शान्ति सुमन का एक और सशक्त जनवादी गीत–संग्रह सामने आया। इस संग्रह में उनका जनवादी रूप भी नजर आया है। 2007 में प्रकाशित 'धूप रंगे दिन'में व्यवस्था के अंतर्विरोध को गीतकर्त्री ने अपनी लयात्मक शैली में उजागर किया है। शान्ति सुमन का सामाजिक यथार्थ से अत्यंत लगाव रहा है और पारिवारिक संबंध भी विनम्रता के संगम पर खड़ा है। पत्र–पत्रिकाओं में सम्मान–पत्र मिलने के अलावा वे बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना से साहित्य सेवा–सम्मान का पुरस्कार, राजभाषा विभाग, बिहार द्वारा महादेवी वर्मा सम्मान एवं पुरस्कार, भारतेन्दु सम्मान और उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ द्वारा सौहार्द्र सम्मान एवं पुरस्कार से भी विभूषित हुई हैं। वे कासीमपुर (सहर्षा) गाँव में जन्म लेकर भद्रेश्वर, फारबीसगंज, जिला अररिया (अब) में विवाहित हुईं। वहाँ से मीठनपुरा, मुजफ्फरपुर में रहकर 33 वर्षों तक महन्त दर्शनदास महिला महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर में प्राध्यापन किया। 2004 में हिन्दी विभागाध्यक्ष के पद से सेवानिवृत्ति के बाद 2005 से जमशेदपुर (झारखण्ड) में टिस्को में कार्यरत अपने अभियंता पुत्र अरविन्द, पुत्रवधू डॉ0 विशाखा और एक पौत्री शालीना और एक पौत्र ईशान के साथ रहकर काव्य–साधना को सरस्वती की साधना मानकर काव्य–रचना में सतत् निरत हैं। शान्ति सुमन की पुत्री चेतना वर्मा जो स्वयं एक समर्थ कवयित्री हैं, जमशेदपुर वीमेन्स कॉलेज के इतिहास विभाग में प्राध्यापन करती हुई अपने एक पुत्र – अपूर्व और एक पुत्री श्रेयसी के साथ शान्ति सुमन का एक भरा–पूरा परिवार बनाती हैं।

शान्ति सुमन ने हिन्दी गीतों के अतिरिक्त मैथिली भाषा में भी उत्तम गीतों की रचना की है। 1991 में उनका 'मेघ इन्द्रनील' नामक मैथिली गीतों का संकलन प्रकाशित हुआ है। इसमें मैथिली गीत हिन्दी गीतों की संवेदना से अलग नहीं है। इनके गीतों का शिल्प संवेदित और अनुभूति प्रदत्त है। मैथिली गीतों में उनकी सामाजिकता के साथ उनकी आत्मीयता ने भी जगह बनाई है। मैथिली गीतों की सर्जना में उन्होंने अपने गाँव–घर की मिट्टी, हवा–पानी को शामिल किया है –

'उजरल सोहाग सन लागय/बाढ़ि सँ धोअल–पोछल गाम
गील माटि पर खिचल रेख/मोनक कमजोर प्रणाम'

इस प्रकार शान्ति सुमन का सारा काव्य सांस्कृतिक परिवेश की गरिमा और सौन्दर्य लेकर उभर उठा है और स्त्री–पुरुष के परस्पर प्रेम, श्रम और जीवन–संघर्ष से प्रेरणा लेता रहा है। उनके गीत लोकगीत की तरह शिल्प–संवेदना के स्तर पर मानव–श्रम का प्रेरणा–स्रोत भी लेते हैं। उनके हिन्दी और मैथिली दोनों ही गीतों के प्रभावी आकर्षण, आत्मीय–सामाजिक संस्पर्श एवं लोकप्रिय शिल्प–सौंदर्य उन्हें जनता से जोड़ते हैं, जनता से संवाद भी स्थापित करते हैं।

■

'नवगीत की प्रथम कवयित्री' : शान्ति सुमन

❑ श्रीकृष्ण शर्मा

डॉ0 शान्ति सुमन सुप्रसिद्ध गीत–कवयित्री हैं। उन्होंने इस दिशा में लम्बी दूरी तय की है। अस्तु, उनका रचना–संसार भी विशाल है, जिसे दिनेश्वर प्रसाद सिंह 'दिनेश' ने अपने द्वारा सम्पादित 'शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि' शीर्षक ग्रंथ में संजोने का प्रयास किया है। प्रारंभ में ग्रंथ की समाग्री पर सम्पादकीय (पृष्ठ 5 से 8) में अत्यन्त संक्षित दृष्टि–निक्षेप, फिर 'अनुक्रम' (पृष्ठ 9 से 12) तत्पश्चात् विभिन्न काव्य–मंचों से उनकी गीत–प्रस्तुति के चित्र (पृष्ठ 13 से 18) हैं।

सम्पादक ने अपने विस्तृत आलेख 'शान्ति सुमन : व्यक्ति एवं कृति' (पृष्ठ 57 से 83) में उनके व्यक्तिगत जीवन, वैचारिक दृष्टि और साहित्यिक जीवन पर प्रकाश डाला है। उनके अतिरिक्त राजेन्द्र प्रसाद सिंह, डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद, डॉ0 मैनेजर पाण्डेय, डॉ0 रेवतीरमण, रामनिहाल गुंजन, सत्यनारायण, डॉ0 वशिष्ठ अनूप, डॉ0 सीता महतो, नचिकेता, डॉ0 चेतना वर्मा, सुजाता सिन्हा, डॉ0 सुरेश गौतम, कुमार रवीन्द्र, रत्नेश्वर झा, डॉ0 पूनम सिंह, डॉ0 अशोक प्रियदर्शी, डॉ0 पुष्पा गुप्ता, मनीष रंजन, चन्द्रकान्त आदि विभिन्न विद्वानों के उनके जनवादी गीतों पर 13, नवगीतों पर 12 एवं सृजन पर 20 लगभग 46 आलेख व विचारांश हैं। अन्त में बानगी बतौर उनके गीत–संग्रहों से 55 चयनित गीत प्रस्तुत किये गये हैं।

विभिन्न लेखकों ने शान्ति सुमन के गीतात्मक व्यक्तित्व को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने–परखने का प्रयास किया है। सत्यनारायण ने लिखा है कि – 'गीत के फलक पर शान्ति सुमन का आविर्भाव एक घटना है' (पृष्ठ 129)। 'साठ और सत्तर के दशक में उनके नवगीत बहुचर्चित और सुप्रसिद्ध हुए' (सम्पादकीय पृष्ठ 5)। 'प्रारम्भिक दौर में लिखे गये उनके नवगीत सीमाओं का अतिक्रमण करते रहे' – डॉ0 वशिष्ठ अनूप (पृष्ठ 51)। 'वे हिन्दी नवगीत की ख्यातिलब्ध गीतकार' – कनकलता रिद्धि (पृष्ठ 267) और 'समकालीन लेखन की प्रणेती हैं' – राजेन्द्र प्रसाद सिंह (पृष्ठ 47)। 'वे नवगीतकारों की पहली पंक्ति में हैं।

उन्हें छोड़ कर नवगीत पर किया गया कोई भी विचार उचित और प्रामाणिक नहीं होगा' – डॉ0 रविभूषण (पृष्ठ 40)।

डॉ0 रविभूषण ने लिखा है कि – 'समय के अनुसार उन्होंने अपने गीतों की जमीन बदली और जनवादी गीतों की रचना की' (पृष्ठ 40)। 'जो मध्य वर्ग की समकालीन जिन्दगी के संवेदनशील क्षणों के दस्तावेज हैं' – डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद (पृष्ठ 98)। 'हिन्दी के जनवादी गीतों के बड़े हस्ताक्षरों में एक हैं शान्ति सुमन' – डॉ0 विजेन्द्र नारायण सिंह (पृष्ठ 33)। 'उन्होंने हिन्दी की जनवादी गीत–धारा को एक नई ऊँचाई और सार्थकता प्रदान की' – डॉ0 वशिष्ठ अनूप (पृष्ठ 145)। 'शान्ति सुमन हिन्दी के स्त्री गीतकारों, खासकर नवगीत और जनगीत के क्षेत्र में सर्वोच्च शिखर पर विराजमान हैं' – नचिकेता (पृष्ठ 41)।

शान्ति सुमन बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न रचनाकार हैं। नवगीत व जनगीत के अतिरिक्त उन्होंने लोकगीत भी लिखे हैं। उनके मैथिली गीतों का संग्रह 'मेघ इन्द्रनील' है। वस्तुतः 'उनके गीतकार की जड़ें मिथिला अंचल में है। ...मैथिल संस्कृति के वे सारे उपकरण, जो नागार्जुन की कविता को अमरता देने वाले हैं, बड़े शालीन तरीके से शान्ति सुमन के गीतों में भी सक्रिय हैं' – डॉ0 रेवती रमण (पृष्ठ 120)। गद्य–पद्य की अन्य विधाओं में भी उनकी लेखनी का स्वर्णिम स्पर्श मिलता है। 'समय चेतावनी नहीं देता' उनकी नयी कविताओं का संग्रह है। 'जल झुका हिरन' उपन्यास और 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य' समीक्षा–पुस्तक है। विभिन्न संग्रहों की भूमिकाओं में उनका अध्ययन–मनन स्पष्टतः परिलक्षित होता है। इस ग्रंथ में प्रस्तुत उनका 'आत्मकथ्य' भी गद्य पर उनके अधिकार का परिचायक है।

अपनी रचना–प्रक्रिया और गीतधर्मिताके संबंध में सुमन ने अपने 'आत्मकथ्य' में स्पष्ट किया है कि – 'मैं मूलतः गीतकर्त्री हूँ। ...मैं अपने भावों और विचारों को गीत के माध्यम से व्यक्त करने में सुविधा महसूस करती हूँ' (पृष्ठ 86)। '...गीत को मैं अपने से अलग नहीं मानती। ये शब्द, भाव, विन्यास कैसे और कहाँ से आते हैं, जो विवश करते हैं कुछ लिखने के लिए और जब वे आते हैं तो उन्हें बैठने के लिए जगह, तोड़ने के लिए तिनके और करने के लिए कुछ बातें मिल ही जाती हैं। यह रचनाकार का अपना एकान्त है। सब कुछ व्यक्तिगत पर सामाजिक होता है' (पृष्ठ 85)।

वे इस बात को सिर्फ बुर्जुआ प्रचार मानती है कि – 'दस वर्षों पूर्व से ही जनता और साहित्य के बीच, विशेषकर गीत और कविता के बीच संवाद की स्थिति नहीं है।' उनके अनुसार – 'सच तो यह है कि गीतों और कविता का जनता के साथ संपर्क पहले से अधिक प्रगाढ़ हो रहा है' (पृष्ठ 87)।

सार्वकालिक कालजयी गीतों के संदर्भ में उन्होंने लिखा है कि – 'हिन्दी में ऐसे भी गीत लिखे गये हैं या लिखे जा रहे हैं, जो वस्तु और शिल्प दोनों में तात्कालिक महत्त्व के हैं। उनका तात्कालिक प्रभाव जितना भी हो, पर वे गीत उस घटना–विशेष के साथ ही समाप्त हो जाने वाले हैं। कुछ ही घटनाएँ इतिहास में अपनी जगह बनाती हैं। शेष तो नदी की लहरों की तरह आती–जाती रहती हैं। ऐसे गीत कालजयी नहीं होते। कालजयी गीतों की हिन्दी में कमी नहीं है' (पृष्ठ 88)। '... सामन्ती मानसिकता के....दबाव के बावजूद आज भी जगनिक और कबीर प्रासंगिक हैं' (पृष्ठ 89)।

जनवादी गीतों के संबंध में उनका मत है कि – 'जनभाषा को नवगीत ने अन्यतम परिणति तक पहुंचाया। नवगीत की इस जनभाषी चेतना ने जनवादी गीतों में एक स्वस्थ भूमिका का निर्माण किया। ...किन्तु आज इस अन्तःपरीक्षण को भी साथ रखना आवश्यक है कि जनवादिता के नाम पर कोई रचना सावधानी के अभाव में प्रतिक्रांतिकारी भी बन जा सकती है। राजनीति जब व्यवसाय बन जाये, सत्ताधारी और व्यवसायी में सीधी साठ–गांठ हो जाये ....तो भ्रष्ट व्यवस्था से जनता त्रस्त हो जाती है। ...मोह–भंग की उस स्थिति में भी....जनवादी गीतकार के मन में आत्म–निर्वासन या आत्महन्ता आस्थाएँ नहीं आतीं' (पृष्ठ 89)।

'शान्ति सुमन अपने समय की चुनौतियों से टकराती और संघर्ष करती' (संपादकीय, पृष्ठ 5) 'गीतों की अस्मिता की रक्षा के लिए आज भी सक्रिय हैं' (आत्मकथ्य, पृष्ठ 90)। अपनी लेखन–यात्रा के दौरान उन्होंने नवगीत से जनगीत तक की यात्रा की है। 'उन्होंने गीत की जमीन को कोड़ने, तोड़ने, गोड़ने से लेकर निकौनी करने तक का काम किया है। उनके गीतों की जमीन हरी गन्ध से सुवासित और मन के राग से रंजित है' – डॉ0 पूनम सिंह (पृष्ठ 276)।

'ये गहरी मानवीय चिन्ता के एकात्म भाव से उपजे गीत हैं' – डॉ0

शिव कुमार मिश्र, पृष्ठ 32। यह एकात्म भाव विराट की चिन्ता करता है, वर्ग की नहीं। इसलिए यह किसी राजनैतिक दल या किसी विचारधारा का विषय नहीं हो सकता। किन्तु ग्रंथ में संकलित अधिकांश आलेख विशिष्ट (मार्क्सवादी) विचारधारा के रंग में रंगे हुए परिलक्षित होते हैं। सम्भवतः सम्पादक का अभिप्रेत भी कवयित्री को एक 'जनवादी गीतकार' के रूप में प्रतिष्ठित करने का रहा है, तभी तो उन्होंने ग्रन्थ के प्रथम 'केन्द्र' में उनके 'जनवादी गीत' (पृष्ठ 31 से 43) और तत्पश्चात् 'नवगीत' (पृष्ठ 47 से 35) को लिया है।

इस दिशा में कवयित्री के प्रगतिशील मार्क्सवादी विचार भी सम्भ्रम उत्पन्न करते हैं। यथा – 'मैंने हमेशा अपने गीतों में प्रगतिशील और प्रतिगामी तथा जनवादी और जन–विरोधी विचारधाराओं के द्वन्द्व और सामाजिक चेतना के अन्तर्विरोधों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है' – (आत्मकथ्य, पृष्ठ 87)। फिर उनका यह प्रमुख गीतांश –

'कच्चे गीतों से अच्छा है/नारा एक लिखो,
बँधे हुए द्वीपों से बेहतर/धारा एक दिखो।'

और इससे संबंधित नचिकेता की टिप्पणी की – 'कृत संकल्पित कवयित्री का जनता की अदालत में दायर यह एक हलफनामा है' (पृष्ठ 157)।

डॉ0 शान्ति सुमन एक विदुषी गीत–कवयित्री हैं। 'वे गीत की सीमा और शक्ति जानती हैं' – डॉ0 मैनेजर पाण्डेय (पृष्ठ 35)। अतः इस सत्य से भली–भाँति परिचित हैं कि किसी भी राजनैतिक विचारधारा से प्रेरित कोई नारा कभी साहित्य नहीं हो सकता। अस्तु विचारधारा का यह अतिरेक क्षमतावान रचनाकार को एक दायरे तक सीमित कर देता है। इसी को दृष्टिगत रखते हुए कुमार रवीन्द्र को शान्ति सुमन की सृजन–सामर्थ्य के संदर्भ में लिखना पड़ा है कि – 'उनका अधिकांश सृजन 'जनगीत' और 'जनवादी गीत संज्ञाओं से परिभाषित किया जाता रहा है, किन्तु उनकी गीत–क्षमताओं का विस्तार उससे कहीं अधिक है' (पृष्ठ 185)।

सुप्रसिद्ध गीत–समीक्षक डॉ0 सुरेश गौतम का इस संबंध में अभिमत महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार – 'कवयित्री की असली पहचान नवगीत है, जनवादी गीत नहीं। ...(किन्तु) जनवादी गीत का नेतृत्व हथियाने की

साहित्यिक उठा–पटक में कवयित्री स्वयं ही अपने नवगीतों को जनवादी गीतों के समक्ष बौना बना देती है, जबकि इनके नवगीत व्यक्ति और समाज के जीवन्त बिम्ब बनकर उभरे हैं' (पृष्ठ 180)। उमाकान्त मालवीय जैसे नवगीतकार की दृष्टि में 'वे नवगीत की एकमात्र कवयित्री हैं' (पृष्ठ 72)। 'नवगीत' के क्षेत्र में शान्ति सुमन के महत्व को रेखांकित करते हुए गीत–मर्मज्ञ और ललित समीक्षक डॉ0 सुरेश गौतम ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि – 'नवगीत दशकों में संकलित अनेक नवगीतकार तो कवयित्री का प्रासंग भी नहीं है। नवगीत–विकास चेतना में... शान्ति सुमन का नाम लिये बिना नवगीत का इतिहास अधूरा और अपंग होगा' (पृष्ठ 182)।

अन्त में कहा जा सकता है कि 372 पृष्ठीय इस विशाल ग्रंथ 'शान्ति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि' के माध्यम से संपादक दिनेश्वर प्रसाद सिंह 'दिनेश' कवयित्री के व्यक्तित्व और कृतित्व से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारी जिज्ञासु पाठकों और अध्येताओं के समक्ष प्रस्तुत करने में पूर्णतः सफल रहे हैं।

'खुशी की बात है कि कई दूसरे गीतकारों की तरह शान्ति सुमन की संवेदनशीलता विचारधारा की आँच में सूख नहीं गई है' – डॉ0 मैनेजर पाण्डेय (पृष्ठ 36)। फिर भी यह लिखना समीचीन होगा कि वे राजनैतिक विचारधारा से परे रहकर अपने रचना–कर्म में एक नदी की भाँति अनवरत प्रवहमान रहें। उनकी रचनाएँ सम्भावनाओं का अनन्त आकाश हैं। पाठकों को अभी उनके श्रेष्ठ सृजन की प्रतीक्षा है।

■

शान्ति सुमन - नवगीत से जनगीत की दूरी तय करती रचनाकार

❑ डॉ० कीर्ति प्रसाद

शान्ति सुमन को उमाकान्त मालवीय ने नवगीत की एकमात्र कवयित्री कहा था। इस कथन के पीछे शान्ति सुमन की वह अलग पहचान थी जो इनको समकालीन गीत–कविता में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका के लिए रेखांकित करती है। इनका लेखन '60 के आस–पास शुरू हुआ। इसको कवयित्री भी स्वीकार करती हैं, पर गीत रचना के अंकुर तो बचपन से ही कोंपल धरने लगे थे। उन दिनों गाँव के पुस्तकालय से निराला, प्रसाद और विशेषकर महादेवी के गीत को पढ़ने की उनको सुविधा मिली थी। इसलिये कविता का वही स्वरूप इनके मन में था। '60 के बाद अपने जीवनानुभवों के आधार पर इन्होंने गीत और कविता के अन्तर को जाना। उनकी कई अवधारणाओं से अवगत हुईं।

शान्ति सुमन का रचनात्मक जीवन संघर्षों से भरा रहा। ग्राम्य परिवेश में जन्म लेने के कारण वहाँ की परम्परित व्यवस्था में प्रवेशिका की परीक्षा पास करने के बाद ही इनका विवाह हो गया। आगे पढ़ने के लिए दूसरा विकल्प नहीं था। उन दिनों गाँव में किसी लड़की का मैट्रिक पास कर लेना ही शिक्षा का अंतिम पड़ाव मान लिया जाता था। इसलिए शान्ति सुमन का पारिवारिक और रचनाकार जीवन दोनों साथ–साथ ही यात्रा पर चले।

शान्ति सुमन पढ़ाई के लिए '59 में मुजफ्फरपुर आईं। तब से मुजफ्फरपुर ही इनका कार्य–क्षेत्र और रचना–भूमि है। इनका जन्म सम्मिलित परिवार में हुआ था। इन्होंने खुली आँखों से उसके संघर्षों, सुख–दुख, अंतर्विरोधों और विसंगतियों को देखा था। गाँव में इनके पिता का घर ही 'मालिक' का घर था। अधिकांश लोग पिता के खेत जोतनेवाले, खेती करने वाले, बटाईदार और अन्य कार्य करने वाले थे। शान्ति सुमन ने किसान–परिवार में पलने–बढ़ने के कारण मालिक और रैयत के अन्तर्सम्बन्धों को उसी समय से जान लिया था। उनके शोषण, कर्जों के सारे चक्रव्यूहों को ये समझने लगी थीं। जीवन के वे सारे अनुभव आज तक इनके अवचेतन के जरूरी हिस्से बने हुए हैं।

'65 में एम0 ए0 (हिन्दी) करने के बाद '66 में इनकी नियुक्ति एम0 डी0 डी0 एम0 कॉलेज, मुजफ्फरपुर में हो गई। अब ये अपनी रचना के प्रति अधिक साकांक्ष हुईं। 1971 में 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य' विषय पर इनको पीएच0 डी0 की उपाधि मिली। इस विषय पर काम करने का उद्देश्य इनको कविता को समवेत रूप से जानना था।

शान्ति सुमन के अब तक अनेक गीत–संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनका सबसे पहला गीत–संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' 1970 में प्रकाशित हुआ। उन दिनों नवगीत को लेकर बड़ी बहसें हुआ करती थीं। पक्ष–विपक्ष के विद्वानों के अभिमत व्यक्त होते थे। अज्ञेय, केदारनाथ सिंह जैसे गीतकार गीत के विरोध में अपना बयान दे रहे थे। शान्ति सुमन ने 'ओ प्रतीक्षित' में नवगीत के शिल्प को ही अपनी अभिव्यक्ति का आधार बनाया। बहुत कुछ नयी कविता की तरह नवगीत में भी मध्यवर्गीय जीवन को ही स्वीकार किया गया। शान्ति सुमन के इस पहले गीत–संग्रह में मध्यवर्ग के जीवन के द्वन्द्व, संघर्ष, सुख–दुख, आशा–निराशा और विचारों के अस्थिर ढुलमुलपन देखे जा सकते हैं। शान्ति सुमन के इन गीतों की अंतर्वस्तु में वही भाव और संवेदनायें हैं जिनसे समकालीन मध्यवर्ग लगातार आकुल–व्याकुल और अस्थिर था। स्वतंत्रता के दो दशक से अधिक बीत जाने के बाद भी इस मध्यवर्ग का आत्मसम्मान नहीं लौटा था। वह लगातार अपनी सीमाओं, अभावों और असुविधाओं में छटपटा रहा था। 1978 में इनका दूसरा नवगीत संग्रह 'परछाईं टूटती' का प्रकाशन हुआ। इन गीतों में इनकी रचनात्मकता अधिक मँजे हुए रूप में सामने आई। इसके कथ्य और रूप के अनेक रंग और शेड्स दीखे। ये गीत जितने सहज लगते हैं, भीतर की परतों में वे कहीं अधिक संवेगात्मक और मर्म को छूने वाले हैं। संघर्ष भरी जिन्दगी के बीच जीने की जिद इन गीतों के शब्द–शब्द में भरी है। यह जिद कहीं–कहीं आकुलता की सीमा तक चली गई है। अंतर्विरोध और विसंगतियों से फिर भी जीवन मुक्त नहीं है। नए ताजे बिम्बों में जीवन की अनेकांत असुविधाओं में भी जीने की ललक लिए 'भीतर–भीतर आग' के गीत याद आते हैं।

शान्ति सुमन के गीत–संग्रह 'सुलगते पसीने' (1979), 'पसीने के रिश्ते' (1980), 'मौसम हुआ कबीर' (1985) और 'एक सूर्य रोटी पर'

(2006) जनवादी गीतों की अनिवार्य परिणति हैं। इन गीतों में विंधने वाली स्मृतियाँ हैं। समय और समाज के नुकीले सवालों से टकराने एवं साहस, असुविधाजनक यथार्थों से भरी दिनचर्या, किसान–मजदूरों के संघर्ष से जुड़े जरूरी मसले और इनके साथ–साथ समकाल की भयावहता के संकेत भी इन गीतों के कथ्य में भरे हुए हैं। सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न पर्त्तों को उधेड़ते हुए ये गीत श्रमजीवी संघर्षरत जन के संकटों से पाठकों को आमने–सामने करते हैं। इन गीतों के द्वारा शान्ति सुमन ने जनवादी गीतों में अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज की है। इनके गीत अपने समय का दस्तावेज होने की क्षमता से भरे हुए हैं। शान्ति सुमन के गीत जीवन के यथार्थ को रचते हुए समय के अँधेरे से टकराते हैं और शोषण से मुक्ति का स्वप्न देखते हैं।

शान्ति सुमन के गीतों का एक सह संकलन 'तप रहे कचनार' (1997) के नाम से आया था। लोकधुनों से रचे हुए इनके अधिकांश गीत मिथिला की महीन–कोमल मिट्टी की सोंधी गंधों की संवेदनाओं के पास ले जाते हैं। जनवादी गीतों में जहाँ ये फौलादी बाँहें, शीशम आँखें, ईख सी गाँठदार उँगली, उजली हँसी, तनी मुट्ठियाँ, बुलन्द हौसले, नापाक इरादे, आमदखोर हरकतें, पपड़ाये होंठ आदि लिखती हैं, वहीं जनवादी गीत खुशनुमा अहसासों से भी भर जाते हैं। इंगुर की नदियाँ, हरियाली के दर्पण, सिन्दूरी सपने, पीली लहठीवाले हाथ, कत्थई गोद, गीत की पहली पाँती जैसा अपनापन, धूप–तितलियों के मेले, जेब की सलबट, सहमे पत्ते, बेटी जैसी खुशी, सपनीले मेघ आदि शान्ति सुमन के नये ताजे जीवंत बिम्ब हैं जिनकी चर्चा समीक्षकों ने खूब की है।

कविताओं का एक सह संकलन 'समय चेतावनी नहीं देता' के नाम से 1994 में प्रकाशित हुआ। इसमें आत्मकथ्य लिखते हुए शान्ति सुमन ने कहा – 'ये कवितायें मेरे जिन्दा रहने के सबूत हैं।' गीतों और कविताओं से इनका रिश्ता साँसों जैसा है। ये रचना के बिना नहीं रह सकतीं। जीवनानुभव के सारे द्वन्द्व और तनाव रचना से ही दूर होते हैं।

राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने शान्ति सुमन की रचना प्रक्रिया में लिखा कि 'शान्ति सुमन की गीत संरचना स्पष्ट ही उन्मुक्त रचना प्रक्रिया से फलीभूत है जिसमें पूर्वागत और प्रथित गीत–रचना की रूढ़ नियमावली से निरपेक्ष निर्मिति प्रशस्त हुई है।' डॉ0 विजेन्द्र नारायण सिंह के अनुसार 'हिन्दी के जनवादी गीतों के बड़े हस्ताक्षरों में एक हैं शान्ति

सुमन।' डॉ0 रेवती रमण मानते हैं कि 'शान्ति सुमन छायावाद की महीयसी महादेवी से न मुठभेड़ करती हैं और न उनके चरण–चिह्नों का अनुसरण ही, पर कोई चाहे तो सुभद्रा कुमारी चौहान की अगली कड़ी के रूप में उनकी जन–सम्बद्धता परख सकता है।' वहीं नचिकेता ने शान्ति सुमन को 'नवगीत से जनगीत तक की एक लम्बी दूरी तय करते हुए हिन्दी गीत–रचना का एक नया सौन्दर्य शास्त्र गढ़ने को कृतसंकल्प कवयित्री माना है।'

'मेघ इन्द्रनील' के नाम से शान्ति सुमन के मैथिली गीतों का संकलन अलग से पाठकों और समीक्षकों का ध्यान खींचता है। इन गीतों में मिथिला की प्रकृति और मिट्टी के संग समस्त देश–कोस के जीवन के छोटे–छोटे सुख, छोटी–छोटी खुशी दूसरी ओर अन्याय और भ्रष्टाचार से ऊबे हुए घर–आंगन, लोग–बाग, पास–पड़ोस में फैले निम्नमध्यवर्गीय प्रेम, आकर्षण, सुख–दुख और आशा–आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति मिली है। मानवीय संबंधों का निरन्तर दुबला होता जाना इन गीतों की मुख्य चिन्ता है। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने शान्ति सुमन को उनकी हिन्दी रचनाओं की समस्त सार्थक उपलब्धियों के साथ मैथिली रचना की गुणवत्ता को मिलाकर सौहार्द सम्मान प्रदान किया है। 14 सितम्बर, 06 – हिन्दी दिवस के अवसर पर उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान से इनको सौहार्द्र सम्मान एवं पुरस्कार दोनों मिले हैं।

इस प्रकार शान्ति सुमन ने गीतों के विशाल संसार में अपना महत्वपूर्ण स्थान सुनिश्चित कर गीतों के इतिहास में अपना नाम शामिल किया है। आनेवाले समय में जिसमें और भी कई पन्ने जुड़ने वाले हैं।

यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि शान्ति सुमन ने एक उपन्यास 'जल झुका हिरन' भी लिखा है। इसका शीर्षक ही गीत के एक ताजा ललित बिम्ब की तरह है और इसकी भीतरी बुनावट भी किसी सांगीतिक आरोह की तरह लगता है। एक गीतकार की कलम से उतरा उपन्यास इतना कोमल भावाकुल कर देनेवाला तो होगा ही।

सम्प्रति शान्ति सुमन की रचना–यात्रा जारी है। आगे आनेवाले इनके गीत संग्रह पाठकों और समीक्षकों को और भी आश्वस्त करेंगे। शान्ति सुमन जीवन और समय की साँसों के साथ चलनेवाली रचनाकार हैं। इनकी आँखों से समाज के जरूरी सवाल कभी ओझल नहीं होंगे।

■

भीतर-भीतर आग को दर्शाते कवयित्री शान्ति सुमन के गीत

❑ डॉ० महाश्वेता चतुर्वेदी

अनुभूतियों की सार्थक अभिव्यक्ति ही गीतधारा को अविराम बनाती है। स्वाभाविक सृजन प्रक्रिया से निःसृत गीत ही ऊर्जा सम्पन्न होते हैं जो दिशा बोध के लिए मणि दीपक भी होते हैं। सहज करुणा से आप्लावित गीत घावों पर मरहम का काम करते हैं। वेदना का अर्थ चीत्कार या हाहाकार नहीं अपितु विवेक उत्पन्न कर तेजस्विता की ओर उन्मुख करना है। कवि के लिए वेदना ऐसा आलोक है जो उसे आनन्दतिरेक से आपूरित करता है।

गीत और नवगीत, इन दोनों को भले ही आन्दोलनों से जोड़ा जाए, मूलतः काव्य की ही उद्धाम धारा है जो अस्तित्व को जीवित रखती है। गीत शक्ति के स्रोत हैं जो डगमगाते पगों को आगे बढ़ाते हैं।

शान्ति सुमन के गीत उस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं जिन्होंने प्रतीकों के माध्यम से भावाभिव्यक्ति की है –

'फिर हरापन ओढ़ती है
ताल में झरती कमल की पंखुरी।'

x x x

'आग भीतर जल रही पर
ठोस दिखती मिट्टियों में
गुनगुनाती धुन बहारों की'

शान्ति सुमन के गीतों की भूयसी विशिष्टता है करुणा और संवेदना यथा –

'पड़ी औंधी नाव, रेतों को पसीना छूटता है,
इस सदी में कहाँ कोई घर हमारा पूछता है।'

x x x

'जिसे छू दिया आग हो गया, छोटा–मोटा बाग हो गया,
इधर अँधेरा उधर अँधेरा, घर का बुझा चिराग हो गया।'

विरोधाभासों और विवशताओं का चित्रण –

'रोपे तो शीशम के पेड़ गये,
फूले हैं यहाँ पर बबूल।'

बिम्बों के माध्यम से भावाभिव्यक्ति –

'सहज था उन धुँधलकों में उजालों का देखना,
चुप्पियों से जुड़ा होता पेड़ शब्दों का घना।'

x x x

'सहमे–सहमे पत्ते डोले,
चिड़ियों की पाँखों को खोले।'

कवयित्री शान्ति सुमन ने भावाभिव्यंजना के लिए प्रकृति से अमलतास – कचनार – कच्चे बांस, ऋतु, पंखुरियों, आदि को चुनकर कथ्य को रोचकता के साथ सम्प्रेषणीय बनाया है। वह सहजता से कहती है –

'ये कहाँ से आ रहे अनजान अनगाये,
नीले कुहासे में डुबोये गीत।'

x x x

'सोने का चंदा रूपा की रात,
तारे मिल गाये मिट्टी की बारात।'

x x x

'गंधों का ऐसा अपनापन,
अँजुरी भर लूटता वसन्त।'

'सर्द हवाओं' के माध्यम से कवयित्री शान्ति सुमन का विसंगितयों का धैर्य से स्वागत करने का आवाहन है जिससे वे जीवन को वरदान बना सकें :

'जब भी तुमने सर्द हवाओं चाहा मेरे घर में आईं।
तुम्हें पता है अब तक मैंने तुमको कितना प्यार किया है।'

अम्मा के माध्यम से नागरीय जीवन की कृत्रिमता का चित्रण –

'दरवाजे का आम–आँवला, घर का तुलसी चौरा,
इसीलिये अम्मा ने अपना गाँव नहीं छोड़ा.....
घर की खातिर लुटा दिया सब रखा न कुछ थोड़ा।'

'भीतर–भीतर आग' नामक गीत–संग्रह के सभी गीत चाहे 'तुम एक

सघन पेड़ हो', या 'धीरे पाँव धरो', 'सिन्दूरी साँझ' या 'फूटते धान सा', 'गीत गाये देहरी' या 'नदियाँ इंगुर की' सभी करुणाप्लावित करने की सामर्थ्य ही नहीं रखते चिन्तन की ओर भी उन्मुख करते हैं।

जनवादी और मानवतावादी नवगीत की गंगा में अवगाहन करने वाली शान्ति सुमन उच्च स्तरीय कवयित्री हैं जिनके सृजन में सृजन और जागृति का स्वर है। सांकेतिकता–बिम्बों–प्रतीकों और प्रकृति के विविध परिदृश्यों के माध्यम से भावाभिव्यक्ति को सम्प्रेषणीय बनाना आपके गीतों की विशेषता है।

शिल्प सौन्दर्य और भाषिक संरचना की दृष्टि से भी उक्त संग्रह के सभी गीत पठनीय, रोचक, प्रेरक और बोधगम्य हैं। विश्वास है कि इन गीतों का काव्यानुरागियों में स्वागत होगा।

■

शान्ति सुमन पर केन्द्रित सम्मान गोष्ठी में नवगीत पर सार्थक संवाद

❑ नचिकेता

पिछले दिनों नवगीत पर बातचीत करने के लिए हिन्दी के नवगीतकारों और लेखकों द्वारा कुछ महत्वपूर्ण प्रयत्न हुए हैं और इस सिलसिले में नवगीत पर नये सिरे से बातें शुरू हुई हैं। यह आकस्मिक नहीं है कि गीतकार, कवि और समीक्षक नाटक की जनवादी परम्परा और आज के संदर्भ में उनकी संभावना को लक्षित करते हुए इधर गीतों की जनवादी पृष्ठभूमि पर भी अपने विचारों को केन्द्रित कर रहे हैं। इसी क्रम में हिन्दी के युवा नवगीतकार नचिकेता के सम्पादन में निकलनेवाली नवगीत विधा की अकेली पत्रिका 'अन्तराल' की ओर से सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक समीक्षक डाक्टर देवराज उपाध्याय की अध्यक्षता में आयोजित नवगीत गोष्ठी द्वारा हिन्दी की प्रख्यात नवगीत कवयित्री डॉ0 शान्ति सुमन को सम्मानित किया गया, जिसमें उनके दस नवगीतों के पाठोपरान्त नचिकेता ने गीत के उद्‌भव और विकास के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि "मैं छायावादी कवि पंत के उस कथन से बिल्कुल असहमत हूँ कि "वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।" दरअसल गान यानी गीत की उत्पति व्यक्तिगत 'आह' से नहीं बल्कि श्रम–श्रांति से उत्पन्न तनाव को कम करने के लिए समूह गान के रूप में हुई है। अपने रचना–संघटन में गीत व्यक्तिवाची लगते हुए भी आंतरिक प्रक्रिया में समूहवाची रहे हैं। मानव–सभ्यता के प्रारम्भ में गीत या पूरा साहित्य ही श्रव्य रहा है, किन्तु जीवन–स्थितियों के जटिल–से–जटिलतर होने के दौरान गीत श्रव्य से पाठ्य तक पहुंच गया। मध्ययुगीन सामंती–पूँजीवादी सभ्यता के विकास–क्रम में गीत में व्यक्तिवादी चेतना का प्रादुर्भाव हुआ। यहीं से गीत जीवन की ठोस प्रक्रिया से कटकर कुछ विशेष क्षणों में उपयोग की वस्तु बनकर रह गया। छायावाद तक आते–आते गीत पर व्यक्तिवादी चेतना और रूमानीपन पूरी तरह हावी हो गया था। दुर्भाग्यवश नयी कविता के इलियटवादी प्रवक्ताओं ने, खासकर अज्ञेय ने, अपने रूमानी अंदाज की गीतात्मक कविताओं को सुरक्षा–कवच पहचाने के लिए गीत के अलग अस्तित्व को ही नकार दिया। किन्तु गीत नवगीत के रूंप में उनके द्वारा

लगाये गये आरोपों और आक्षेपों के बावजूद अपने विकास की दिशा में एक नयी त्वरा के साथ आगे आया। मैं नवगीत के प्रवर्तक की बात नहीं करता बल्कि जिन नवगीत–हस्ताक्षरों ने नवगीत के कंधे से कंधा मिलाकर इस संघर्ष में भाग लिया है उनमें डॉ0 शान्ति सुमन का नाम विशेष रूप से स्मरणीय है। अतः मैं चाहूँगा कि डॉ0 सुमन के इन नवगीतों के परिप्रेक्ष्य में आज के नवगीतों की रचना संगति और उपलब्धिमूलक सार्थकता और प्रासंगिकता की पड़ताल की जाय।"

नचिकेता द्वारा विषय–प्रवर्तन के बाद प्रोफेसर सर्वदेव तिवारी 'राकेश' ने नचिकेता के द्वारा नवगीत–यात्रा के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये विचारों से अपनी आंशिक सहमति जताते हुए कहा कि मैं डॉ0 सुमन के गीतों को सुनने के बाद गीत–शक्ति का कायल हो गया हूँ। उनके गीतों में नये–नये चित्र और नये–नये बिंब के दर्शन अनायास ही हो जाते हैं। गीतों में स्वर और लय का जो स्थान है, वह डॉ0 सुमन के गीतों को सुनने के बाद सहजता से आंका जा सकता है।

लब्धप्रतिष्ठ कवि–गीतकार वेदनन्दन जी ने डॉ0 सुमन के गीतों को विश्लेषित करते हुए कहा कि डॉ0 सुमन गीत की बहुत बड़ी दूरी तय कर चुकी हैं। इनके गीतों में कई लीप्स हैं। वस्तुतः इनके गीत सामाजिक संदर्भ से जुड़े हैं। इनके गीतों की सारी स्थितियाँ यथार्थपरक हैं और वे इनमें इस तरह समाहित हैं कि नवगीत को काफी हद तक सही अर्थवत्ता देती हैं।

इसके बाद समर्थ मार्क्सवादी समीक्षक, 'वाम' संपादक डॉ0 चन्द्रभूषण तिवारी ने शान्ति सुमन के नवगीत के संदर्भ में विस्तार से अपने विचार दिये – "गीत ठोस जीवन प्रक्रिया के बीच से उत्पन्न हुए हैं। श्रममूलक व्यापारों को मधुर बनाने में ही उनकी सार्थकता है। बाद में गीत श्रम–विरोधी हो जाने के कारण अवकाश के क्षणों की चीज बन गये। पूँजीवादी चेतना के विचार के बाद बुर्जुआ समाज ने कविता को केवल एक वर्ग के लिए श्रव्य से पाठ्य बनाकर सीमित कर दिया जबकि यह सामूहिक भावों की अभिव्यक्ति के रूप में उत्पन्न हुई थी। इस समाज ने कविता के आवश्यक उपकरण–लय और चित्र को निरन्तर कम किया और पीछे चलकर कविता को लयहीन ही बना दिया। इस तरह कविता अकविता तक पहुँच गयी। यह एक प्रकार से बुर्जुआ वर्ग की ओर से की

गयी साजिश थी। इसलिए कविता में गीतों की प्रतिष्ठा आवश्यक हो गयी। इस लिहाज से नवगीतकारों द्वारा किये गये प्रयत्न प्रशंसनीय हैं।

मुझे प्रसन्नता है कि डॉ0 शान्ति सुमन के गीतों में सहज बिम्बधर्मिता है। जगत के बहुत सारे दृश्य, लोग, स्थितियाँ – सब कुछ है। इसी अर्थ में इनके गीत महादेवी, पंत और बच्चन के गीतों से अलग हैं। इनके गीत व्यक्तिगत स्तर से शुरू होकर सामूहिक रूप धारण कर लेते हैं। इनमें बाहर की स्थितियों को बहुत करीब लाकर रखने का प्रयास किया गया है। गीतों को इसी सतर्कता से आज की जीवन–स्थितियों के बीच से गुजरते हुए लक्षित किया जा सकता है।''

सुरेन्द्राचार्य ने डॉ0 शान्ति सुमन के गीतों की भूमि को काफी उर्वरा बताते हुए और गीतों को अपने समग्र प्रभाव के साथ देखने का आग्रह करते हुए कहा कि 'आज ऐसे ही गीतों की रचना की जरूरत है। मुझे इनके गीतों से काफी प्रेरणा मिली है।'

युवा कवि–समीक्षक रामनिहाल गुंजन ने नवगीत की रचना–प्रक्रिया को विश्लेषित करते हुए कहा कि 'कविता में सामाजिक परिवेश का अधिक से अधिक समावेश होना जरूरी है। आज कविता में रूमानीपन को प्रश्रय देने के खिलाफ एक मानसिकता तैयार करने की जरूरत है, क्योंकि यह प्रवृत्ति निश्चय ही कविता को व्यक्तिवादी बनाती है और उसे सामाजिक सन्दर्भों से जुड़ने नहीं देती। नई कविता और उसके बाद के कुछ कवियों ने अपनी व्यक्तिवादी रचनाओं द्वारा गीत या कविता के माहौल को व्यक्तिवादी बना दिया था। आज भी कई गीतकार उनसे पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाये हैं। इधर नवगीत के माध्यम से इस दिशा में मोहभंग हुआ है और गीत को जनवादी विधा के रूप में लाने के प्रयत्न हुए हैं। यह संतोषप्रद स्थिति है कि इधर के कुछ नवगीतकार निश्चित रूप से अपनी रचनाओं में जनवाद की संभावनाओं को रेखांकित कर रहे हैं। डॉ0 सुमन के गीतों में वैसे तत्त्व मौजूद हैं और इसीलिए उनके गीतों से नवगीत की अगली संभावना संकेतित होती है।'

वयोवृद्ध साहित्यकार बनारसी प्रसाद भोजपुरी ने डॉ0 सुमन के गीतों की बिम्ब–योजना और सहजता पर मुग्ध होते हुए कहा कि 'कविता से मुझे 'एलर्जी' है लेकिन सरस और सरल कविता मुझे पसन्द आती है। इसी सन्दर्भ में डॉ0 सुमन के गीत मुझे बेहद पसन्द हैं। डॉ0 सुमन के

गीतों में अपमानित मानवता को सहज अभिव्यक्ति मिली है।'

वयोवृद्ध कवि और नाटककार भगवती राकेश के शब्दों में 'कविता के लिए जीवन की समस्या ही प्रमुख है। डॉ0 सुमन के गीतों में जीवन की समस्याएँ अपनी सम्पूर्ण तीव्रता के साथ उपस्थित हुई है। इसी अर्थ में मैं इनहें बधाई देता हूँ।'

युवा कथाकार अरविन्द गुप्त ने नवगीत में विकसित हो रही जनवादी चेतना को विश्लेषित करते हुए कहा कि – 'नवगीत में अभी काफी काम करना बाकी है। मुझे रमेश रंजक के इधर के गीत पसंद है। इसी तरह के गीत लिखे जाने चाहिए।'

प्रसिद्ध उर्दू शायर ताज पियामी ने बताया कि 'गीत ने जब जन्म लिया था, तब समाज टुकड़ों में नहीं बँटा था। एक आदमी का अनुभव तब बहुत व्यापक होता था। गीतों में सुर का होना अनिवार्य है। इसी कारण गीत श्रमिकों के समूह में जन्म लेते रहे हैं। चूँकि डॉ0 सुमन के गीत लय और सुर से सराबोर हैं, इसीलिये ये गीत मुझे बेहद पसन्द आये।'

प्रगतिशील युवा काव्य–मर्मज्ञ सुधाकर उपाध्याय ने गीत की सामाजिकता पर जोर देते हुए कहा कि 'कविता को सामाजिक परिवेश से जोड़ना अपने आप में बहुत बड़ी उपलब्धि है। मेरी समझ से कविता के लिये तीन अनिवार्य शर्तें हैं। कविता को लयात्मक, सहज और समाज के हित में होना चाहिए।'

साईकिल द्वारा संपूर्ण भारत के यात्रा–क्रम में आरा में आये हुए कवि, पत्रकार श्याम कुमार 'बादल' ने कहा कि 'डॉ0 शान्ति सुमन के नवगीतों में सामाजिक चेतना के साथ ताजगी और रवानी है। इसलिए में इनके विकास की शुभकामना करता हूँ।'

और, गोष्ठी के अन्त में अध्यक्ष पद से बोलते हुए डॉ0 देवराज उपाध्याय ने गीत को पारिभाषित करते हुए कहा कि –

''सस्वर सरसंगम्चेव सरांगवरा।
सालंकारम् प्रमाणं च षडविधम् गीत लक्षणं।।''

गीत की यदि यह परिभाषा मान ली जाय तो डॉ0 सुमन के गीत शत–प्रतिशत सच्चे और खरे प्रतीत होंगे। फिर भी इनके गीत केवल

संगीत नहीं हैं जिसमें केवल कंठध्वनि की प्रधानता रहती है। डॉ0 सुमन ने काव्य में संगीत का सहारा जरूर लिया है, परन्तु वास्तव में वह काव्य ही है, संगीत नहीं। ऐसा लगता है कि कवयित्री की थोड़ी–सी असावधानी से उनके गीत काव्य की सीमा से फिसलकर संगीत के क्षेत्र में प्रवेश कर जायेंगे, परन्तु इस स्थिति से अपनी रक्षा इन्होंने बड़ी तत्परता से की है। इनके काव्य में काव्य के सारे गुण वर्तमान हैं। ऊपर जो परिभाषा दी गयी है वह विशुद्ध गीत की मालूम नहीं पड़ती बल्कि साहित्यिक गीत की है अन्यथा 'सालंकार प्रमाणम्' का उल्लेख क्यों किया जाता ? संगीत के लिये अलंकार की क्या जरूरत है ?

नवगीत आधुनिक युग की उपज है और आधुनिक पाठकों के लिए लिखा गया है। मैं मनोविज्ञान के लिए बदनाम हूँ। अगर मनोविज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो कविता वेश बदलकर आ रही है, अपने अधिकारों की माँग करने के लिए – इन नवगीतों के रूप में। छंद का बंधन तो तोड़ दिया। इसकी सिफारिश तो पंत ने भी की थी। निराला ने तो प्रारम्भ ही कर दिया था पर इधर के कवियों ने छन्दों पर प्रहार करते हुए कविता का कचूमर ही निकाल दिया और कविता को लयहीन भी बना दिया। लेकिन कविता कभी मरनेवाली नहीं। वह पुनः रूप बदलकर हमारे सामने आ रही है। नवगीत के उदय का यही रहस्य है और मेरी कल्पना है कि अभी इसका प्रचार–प्रसार होगा भले ही कुछ समय बाद इनसे भी ऊबकर हमारा मन किसी नई पद्धति का अविष्कार करे।'

■

नागकेसर की सुगंध से आप्लावित गीत

❑ चन्द्रसेन विराट

आज के नवगीतों की समर्थ कवयित्री शान्ति सुमन का नया गीत–संग्रह आया है 'नागकेसर हवा'। मैं इसे पढ़कर अभिभूत हूँ और वर्तमान की इस कुशल नवगीत गायिका को प्रणाम कहना चाहता हूँ। यह गीति–तत्त्व की अप्रतिम प्रतिभा है भी प्रणम्य।

संग्रह का पहला फ्लैप स्व0 भारतभूषण (भारतजी के आगे स्वर्गीय लिखने में बहुत दुख हुआ है) ने लिखा है और खूब लिखा है। उन्होंने बहुत कुछ शान्ति सुमन के गीतों की प्रशंसा में लिखकर यह भी लिखा है कि 'अनेक पत्रिकाओं में पढ़कर सोचता रहा कि चलो एक कवयित्री तो हिन्दी कविता को मिली। शुभश्री सुमित्रा कुमारी सिन्हा के बाद और किसी ने इतना प्रभावित नहीं किया। शान्ति सुमन ने नवगीत धारा को अपने मन प्राण में पूरी तरह बसा लिया है।' यह साधारण प्रमाण–पत्र नहीं, एक असाधारण गीत–कवि से असाधारण प्रशंसा–पत्र है। शान्ति जी, बधाई!

शान्ति जी द्वारा लिखित 'अंतरा' प्राक्कथन पढ़ना भी सुखद रहा। लोक कवि के बारे में क्या धारणा रखता है, यह जानकर कवि अपने रचनाकर्म के प्रति आश्वस्त होता है और विश्वस्त भी। एक आलोचक वर्ग उन्हें नवगीतकर्त्री मानता है तो दूसरा वर्ग उन्हें जनवादी गीतकार मानता है। मुझे इस संदर्भ में इतना ही कहना है कि शान्ति जी यह आलोचक वर्ग आपको मानता तो है। यह बड़ी बात है। इस वर्ग ने कई प्रतिभाओं की जान–बूझकर अवहेलना की है, जो कि साहित्यिक अपराध है। इतिहास कभी उनसे सवाल करेगा। इस संबंध में आपने भी स्वीकार किया है – 'मेरे मन में अपने गीतों को लेकर कोई दुविधा नहीं है। देश–दुनिया के संघर्षजीवी जन के सुख–दुख, हर्ष–विषाद, आकांक्षाओं और बेहतर जिन्दगी, बेहतर दुनिया के लिए उनकी मुक्ति–चेतना ही मेरी प्रतिबद्धता है। दूसरी ओर इस प्रतिबद्धता के पीछे मेरे गीतों में उन समस्त भावनाओं, अनुभूतियों, आत्मीयता और कोमलतम संवेदनाओं को बचा लेने का मन भी दीखता है जिसके बिना न तो जीवन जीने योग्य दीखता है और न हमारी मनुष्यता सुरक्षित हो सकती है।' कवयित्री की

यह प्रतिबद्धता ही उनसे इन दो विभागों में गीत रचना करवाती है। यह उनकी प्रतिबद्धता और वैचारिक अवधारणा के अनुकूल ही है।

संग्रह में 86 नवगीत सम्मिलित हैं जिसे मैं धीरे–धीरे तीन बैठकों में पढ़कर प्रभावित हुआ हूँ। गीतों में कालांतर में जो नवगीत की अर्हताएँ समाहित होती गईं, उसी ने 'नवगीत' संज्ञा को सार्थक सिद्ध किया है। नवगीत में आधुनिक बोध, महानगर बोध, ग्राम्य बोध (लोक तत्त्व भी) और जीवन की जटिलता आदि पारंपरिकता से पृथक रूप में व्यक्त होने से अपना नयापन उजागर करता है। यह सारे तत्त्व प्रकारांतर से शान्ति जी के नवगीतों में आये हैं और इसीलिए वे नवगीत के प्रमाणिक उदाहरण बन गये हैं। उनके गीतों के कुछ अंश इस ओर इंगित करते हैं –

'नहीं थकी है आँख
थका है नहीं आँख का सपना'
'अपना दुख कहती रहती है बहती हुई नदी
सच कहने की आदत से वह बाज नहीं आती
खिलते फूलों सी आँखें बरबस र'स बरसातीं
'पढ़ा करें बच्चे किताब में पोखर, घाट, नदी
खाली हाथ चली आई है, यह जलहीन सदी
सुखा रही है केश धूप में धागा बाँध सगुन का'

प्रकृति के उपादानों के माध्यम से मानव जीवन के अनुभवों को कुशलता से व्यक्त किया है कवयित्री ने।

कवयित्री को धूप और नीला रंग बहुत प्रिय है। इन प्रतीकों से बड़ी कुशलता के साथ वे अपनी महीन बात कह गई हैं –

'उजलाये अनुबंध मकर चाँदनियों के'
हँस ये नीली नदी में'
'धानी धानी धूप और वह
खड़ी खड़ी मुसकाई'
'मुट्ठी भर नीला आकाश
उड़ान में चिड़िया लाई'
'धूप के कपड़े पहन कर दिन
इस तरह आया हमारे पास'

'मुस्कानों की धूप पहन कर आई सुबह हवा
जल्दी–जल्दी रंगने बैठी अपने होठ जवा।'

डॉ0 विष्णु विराट ने उनके लिए लिखा है – 'नवगीतकारों की अव्यवस्थित भीड़ में वह सम्मिलित नहीं है। .....जनाग्रही जीवन की कटुता से वह अलग नहीं हुई हैं। निम्न मध्यवर्ग की त्रासदी और अभावजन्य दैनंदिनी में भी वह सुख के क्षणिक अनुभास ढूँढ़ लेती हैं।' इस संग्रह के गीतों में तो उन्होंने प्रकृति के उपादानों को चुना है जो उनके मानवीय मनोभावों को ठीक से व्यक्त कर गये हैं। आग्रह के साथ जनाग्रही भाव व्यंजना से थोड़ी दूर ही रही हैं। ग्राम्यबोध एवं पारिवारिकता को ही अधिक भावावेश से अभिव्यक्त किया है।

प्रकृति के प्रतीक खूब गहरे रंग में आये हैं –

'चाँदनी पहनती रात, रंग निखरे अड़हुल के
माँदर पर पड़ती थाप, उड़े अबीर सरहुल के'

इस सबके बावजूद उनका जनवादी मानस 'ललमनिया' को भूला नहीं है। वह – **'आग बचाने खातिर कोयला चुनती है बाबू'** कह ही गया है। डॉ0 मधुसूदन साहा ने उनके लिए कितना सार्थक लिखा है – 'रिश्तों के सभी संदर्भों के गीत उन्होंने लिखे हैं। उनके ऐसे गीतों में अभिव्यक्ति की सहजता और शब्दों की तरलता के साथ–साथ दृश्यात्मक बिम्बों की विशिष्ठता देखकर आँखें जुड़ा जाती है। अंत में संग्रह का सिगनेचर गीत 'नागकेसर हवा' की पंक्तियाँ उद्धृत किये बिना कैसे समाप्त करूँ –

'साँस सी लगती हवा अपनी
नागकेसर पहन जब साँकल बजाती
घाट पोखर नहीं लगते, इत्र के झरने
दूर के संगीत मन में लगे घर करने
आँखें सुबह की खुली इतनी
नेह की लाली बहुत खुल खिलखिलाती।

इन सब प्रकृति समृद्ध नवगीतों को पढ़कर उनकी एक अलग ही छवि निर्मित होती है जो सर्वथा दर्शनीय है। स्वागत योग्य है।

■

सीमा और शक्ति के दायरे के गीत

❑ डॉ० मधुसूदन शर्मा

शान्ति सुमन के गीत साँसों में बसे पारिवारिक आसंगों के साथ कोमलतम मानवीय संवेदनाओं में पगी राग और रूप भरी अभिव्यक्ति हैं। यद्यपि वे निर्द्वन्द्व भाव से स्वीकारती हैं कि आमजन की मुक्ति–चेतना के प्रति प्रतिबद्धता उनके गीतों की केन्द्रीयता है; तथापि खुरदरे विरोध और विद्रोह की प्रयोजित–सी लगने वाली परंपरा से खुद को अलग रखकर अपनी रचनाधर्मिता में वे इतनी सहज हैं 'जैसे घर में बैठकर बतिया रही हों'। इस रागात्मक बतियाव में भाषिक विचलन भी हैं और अपने भाषिक परिवेश के प्रति शाब्दिक सम्बद्धता भी।

शान्ति सुमन जन से जुड़ी कवयित्री हैं। हालांकि किसी 'वाद' के प्रचलित ढलाव से वे अलग भी हैं। नागकेसर फूल की खुशबूदार हवा के विस्तार की जद में आए वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि सभी संस्पर्शों को उनके 'नागकेसर हवा' नामक गीत–संग्रह में देखा जा सकता है। रूप, रस, गंध, शब्द–स्पर्श आदि ऐंद्रिय बिम्बों से बुना गया नवगीत का यह सर्जनात्मक कर्म गँवई जीवन के संदर्भों का समुच्चय है।

कवयित्री का यह प्रयास घर को घर की तरह रखने का संकल्प है। घर गहरी आत्मीयता, परस्पर सम्बद्धता, समर्पण, विश्वास और व्यवस्था का एक रूप है। दीवारों के दायरों को भरे–पूरे संसार में तब्दील करना उनका लक्ष्य है। उनका यह सोच उनकी लोक–सम्पृक्ति का प्रमाण है। उनके यहाँ श्रम की महक फूलों के गाँव में आकर कुछ ऐसी रच–बस गई है –

वर्षों की इच्छा ने उत्सव के रंग भरे
गंधों ने अल्पना रची
धूप के मांदर बजे, सुरीली हवा ने
छींट दी हैं खुशियाँ बची

ग्रामीण आमजन से जुड़ने का अर्थ प्रकृति से जुड़ना है। यह जुड़ाव सहज, श्रम सम्बद्ध तथा सुसंवेदित है। गँवई प्रकृति में अनुरक्ति शान्ति सुमन की रचनाधर्मिता का एक खास बिन्दु है। इस ग्रामीण परिवेश में अपनापन ओस कणों की तरह आँखों में उतर आता है। इन संबंधों में

घनेपन के साथ–साथ एक लचीला संवाद भी जरूरी होता है। खेती तथा परम्परागत ग्रामीण पेशों को अपनी जीविका का साधन बनाकर जीने में लगे निश्छल श्रमजीवियों के जीवट पर कवयित्री की भाव–दृष्टि टिकी है। *जो खेतों में हरियाली बोते हैं/पहले गीत फसल का वे सुनते हैं।*

खेतों की इस माटी के पोर–पोर में खुशबू बसी है। हवा उसे छूकर बावरी की तरह नाचती है। 'लहर पहन कर मछुआ खुश होते हैं। साँझ होने पर ये अपने जाल समेटते हैं, नावों के पाल हिलने लगते हैं तथा चरवाहे मन की डोर में 'गूँज' बाँधकर घर वापस आते हैं। ऐसे में घाट, पोखर–नदी सब इत्र के झरने जैसे लग ते हैं। (पृ० 24)

कवयित्री ने ग्रामीण परिवेश में मौसम के बदलते मिजाज को भी बड़े करीब से महसूस किया है। उनकी नजर फसलों के गीत–गानों पर टिकी है तो आस–पास गूंजते कजरी–चैता पर भी। बदलती ऋतुएँ – फागुन, चौमासा माह – जेठ, चैत, अगहन, आसिन, भादों, बया, कोयल, कागा–मैना, पिपही, मृग दोनों के साथ–साथ पुरइन, कनेर, गेंदा, कचनार, कुँई, कमल, अड़हुल, जवा, कास–वन, बेला, किंशुक, झरने और भी न जाने क्या–क्या रचनाकार की दृष्टि में है। मानवीकरण इस काव्य की स्थायी भाव है। साधारणजनों के जन जीवन की प्रस्तुत छवि बड़ी सार्थक है –

बीचों बीच टँगते रस्सी पर
सूखे से गीले कपड़े
मग के पास रखा अँगोछा
आइना–कंघी के पहरे

'बिछी चटाई हो या टूटी खाटें' फैली इस गृहस्थी में नारी की घरेलू छवि कर्म ही धर्म है' का उद्घोष करती है –

रोटी बेले या कपड़ों के धोने में
दोनों में हैं बजे चूड़ियाँ हाथों की
वैसी आवाजें मन से कब जाती हैं
झुकी प्रार्थना में उठती जो माथों की

सभ्यता की दौड़ में पिछड़ चुके आर्थिक असमानता के शिकार व्यापक लोक–जीवन से सीधा संबंध बनाए रखने वाला कवि खुद को

उन्हीं के बीच का एक आदमी समझकर उनके सुख–दुख, आशा–निराशा, सपनों–शिकवों को वाणी देता है। गाँव की दारूण वास्तविकताओं से पलायन कर शहर में आए मेहनतकश वर्ग के लोग यहाँ भी अपनी नियति से बच नहीं पाते। दिहाड़ी द्वारा भी पेट न पाल सकने वाली ललमुनियों पर कामू का प्रस्तुत कथन बड़ा सटीक बैठता है – 'आज एक ही कृत्य तर्कसंगत है हमारे लिए और वह है आत्महत्या!'

सूखी संवेदनाओं वाले महानगर पर व्यंग्य करती हुई कवयित्री लिखती है –

इसी शहर में ललमुनिया भी
रहती है बाबू
आग बचाने खातिर कोयला
चुनती है बाबू (पृ0 102)

'पहली उड़ान में, मन के सारे छंद, आँखों में हंसती, आँख नदी की, उठा कोई धुन, बादल की हँसी, हवा सुरीली, पोखर का मन, खुशी के आँसू, अनहद नाद तथा संकलन का आखिरी गीत 'बच्चा की आँखें' कुछ ऐसी रचनाएँ हैं जिनमें लोकजीवन के अभाव, अधूरे सपने, असहायता और मनमसोसे संकल्पों को जगह दी गई है। ऐसे संदर्भों में गीतकार अधिक विश्वसनीय है।

शान्ति सुमन के अनेक कथन, भंगिमाएँ नवीनता से भरपूर हैं। ताजा–तटके बिम्बों की भरमार है यहाँ। 'खुशबू और हवा की गपशप, खिड़की से झाँकते नील मेघ, गमगम करते कनेर, चाँदनी के गाँव में, फूलों के पथ पर' आदि कितने ही प्रयोग हैं जहाँ मन को खींचने में समर्थ छवि चित्र हैं। इन भाषा–प्रयोगों में कुछ तो इतने मातृभाषीय हैं कि मानक हिन्दी में खटकने लगते हैं। अस्पष्ट भावों के नमूने भी नजर आते हैं। भाषा की स्थानीयता के कारण मानक हिन्दी की दृष्टि से अनेक व्याकरणिक दोष भी संकलन में मौजूद हैं। इनमें असंगत बहुवचन तथा लिंग, कारक, विशेषण–विशेष्य व वचन संबंधी असंगतियाँ दूर की जाती तो संकलन का भाषा सौन्दर्य और निखर पाता। तथापि, प्रशंसनीय भाषा–प्रयोगों की भी भरमार है। कवयित्री की मान्यता है –

अपनी भाषा में गा
सुबह सगुन वह करती है (पृ0 96)

अंत में कहा जा सकता है कि अपनी शक्ति और सीमा को समझने वाली शान्ति सुमन का यह रागात्मक प्रयास सफल और सार्थक है। अपनी साँसों में समा गई 'नागकेसर हवा' के द्वारा उन्होंने नवगीत को सुगंधित ही बनाया है।

■

लोकराग की झंकार तथा जनाग्रही रुझान

❑ डॉ० विष्णु विराट

नवगीतकारों की भीड़ में अलग हटकर अपनी पहचान बनाने वाली तथा ग्राम्यांचल की मिट्टी की सौंधी सुगन्ध से सराबोर वहाँ के सांस्कृतिक बिम्बों को बड़ी ही सार्थक भूमिका के साथ रागात्मक झंकृति में प्रस्तुत करने वाली शान्ति सुमन अपने परम वैशिष्ट्य को अलग–अलग गीतों में अलग–अलग मिजाज से सँवारती–संजोती नजर आती हैं। एक तो उनका जीवन्त परिवेश उस पर काव्य–रचना का उनका अपना वैदुष्य सामान्य और सुधी सभी प्रकार के रसज्ञ श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करता रहा है। इनके गीतों में जो जनाग्रही पदचापों की आत्मीय झंकृति है, वह पाठक के हृदय में समाविष्ट होकर उसे निजत्व की परिसीमा में अनुबंधित कर लेती है। अधिकांश गीत प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करते हुए हमारे घर–आंगन–दहलीज मढ़ा तिवारी गली, मुहल्ले, चौपार या फिर खेत–खलिहानों में नाचते–झूमते, रोते, झींकते, हंसते, बतिआते हमसे रू–ब–रू हाथ मिलाते बड़ी ही आत्मीयता के साथ अपने सहचर से ही लगते हैं। कथन की सहजता तथा जाने पहचाने आसपास चहल–कदमी करते बिम्ब, प्रस्तुति की सरस अभिव्यंजना तथा अभिधा में व्यंगार्थों के विस्तृत अर्थबोध को प्रसरित करते बड़े ही सक्षम और अपनी पूरी वजनदारी के साथ ये गीत हमें दूर तक झकझोरते हैं, आन्दोलित करते हैं तथा बहुत कुछ सोचने पर बाध्य भी कर देते हैं।

'नागकेसर हवा' में संकलित अधिकांश गीत इसी सार्थक भूमिका का उद्घोष करते हैं। प्रायः सभी गीत मोतियों की तरह गुम्फित एक के साथ एक मेल–मिलाप करते हुए मुक्तमाला की तरह एक रागात्मक प्रबंध–सुषमा को प्रदीप्त करते हैं।

लोकराग की झंकार तथा जनाग्रही रूझान का स्पर्श इन गीतों का अपना एक अलग वैशिष्ट्य है। ये गीत मात्र गाने या गुनगुनाने तक ही अपनी अस्मिता को संकुचित नहीं रखते, बल्कि समय की त्रासद मनस्थितियों तथा अतिचार के साथ टूटते मानवीय मूल्यों को भी बड़ी सावधानी के साथ व्यक्त भी करते हैं और ब्याख्यायित भी करते हैं। जैसे –

नदी चुप है/धार चुप है
और चुप लहरें
इन उड़े–से दिनों में हम
कहाँ जा ठहरें ?
पाँव सौ–सौ चल पड़े हैं/अँधेरों के दल
देखता है कठिन कैसे/पल रहे हैं छल।
सुरंगों से भरी राहें/पाँव पर पहरे।

इसी तरह इस कथन को टटोलिये –

पँखुरी रही उदास/और खुशबू भी बन्द रही
मरुथल में गीतों की लय तानें/निष्पन्द रहीं
छाये रहे धुंध में सूरज/वापस चला गया
दिवस आज का कैसे आया/कैसे चला गया ?

खेत और खलिहानों के बीच गीत के ये बोल कितने–कितने जीवन्त और कितने–कितने अपने से लगतें हैं –

गूँजती दालान पर है/हलचलों–सी
घंटियाँ बज रहीं बैलों के गलों की
खेत पहने बालियों को मुस्कुराये
भोर होते ही पखेरू गुनगुनाये।
सुहागिन–सी नई लगती/फुनगियाँ हैं
बाँधती जल को किरन/की रस्सियाँ हैं
पात ईखों के हवा में सरसराये
भोर होते ही पखेरू गुनगुनाये।

और भी ढेर सोर गीत मन को छूते ही नहीं वरन् अन्तस्थ सुप्त उद्भावनाओं को आन्दोलित भी करते हैं। कुछ मुख पंक्तियाँ ध्यातव्य हैं –

तुम नदी होते/तुम्हीं से कहा करते/बात मन की....
तुम हवा होते/दिशा में रंगा करते/लय सपन की....
धूप तुम होते/चमक में लिखा करते/छवि नमन की....

वैसे यदि उद्धृत करना चाहूँ तो समग्र संकलन ही सामने आ जाएगा, सभी गीत अपनी–अपनी बानगी के साथ मन को छूते हैं। अन्त में एक गीत और प्रस्तुत करना चाहूँगा जो प्रासंगिक होते हुए अन्त्यज दमित

और सर्वहारा के दर्द को व्यक्त करता हुआ बेचैन करने को बाध्य कर देता है –

इसी शहर में ललमनियाँ भी/रहती है बाबू
आग बचाने खातिर कोयला चुनती है बाबू
पेट नहीं भर सका
रोज के रोज दिहाड़ी से
सोचे मन चढ़कर गिर जाए
ऊँच पहाड़ी से
लोग कहेंगे क्या यह भी तो
गुनती है बाबू

कहीं–कहीं अभिनव बिम्बों के अर्थ–विस्फोट दूर–दूर तक प्रतिध्वनित होते हैं –

छत के ऊपर कटी पतंगें/दौड़ रहे बच्चे
सूखे कपड़ों को बिलगा कर/खेल रहे कंचे
यह जो बेच रहा है टिन में गुड़ औ शक्कर है,
यह जो चमक रहा है दिन में/अपना ही घर है।

शान्ति सुमन के गीतों में सर्वाधिक आकर्षण उनके सहज कथ्यों में व्याप्त मानवीय मूल्यों के ह्रासोन्मुख परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में पुरावर्तित अनुभासों के सुखद स्पन्दन हैं। गाँव, चौपाल, खेत–खलिहान से उठे धूल के बवंडरों में वह अपनी अस्मिता तलाश करती हुई सामयिक मानदंडों को सिरे से खारिज कर देती है और वर्तमान की प्रसरित विभीषिका के साये में टूट रहे समाज और संस्कृति के भव्यभवनों के भग्नावशेषों में अपने निर्धारणों को छू नहीं पाती।

प्रस्तुत गीत संग्रह में प्रकृति का सहज सौन्दर्य, ग्राम्य संस्कृति के अछूते बिम्ब और कविता की गहरी अर्थवत्ता हमें बहुत कुछ सोचने–समझने को बेचैन कर देती है और यही बेचैन कर देने वाले भावोद्वेलन ही संग्रह की सार्थकता सिद्ध कर देते हैं।

■

नागकेसर हवा को महसूसते हुए

❑ विश्वनाथ

जब भावुकता की ओस, घास रूपी हृदयपटल भिंगो जाती है तो गीत का जन्म होता है। जब कड़वे यथार्थ के ताप से गुड़ जैसा मन पसीजता है तो गीत का जन्म होता है, कि जब दुनिया के दुखों–अवसादों की घटा मन पर छा जाती है तो गीत का जन्म होता है। मन बेचैन हो जाता है कि जैसे पृथ्वी के क्रोड़ से गर्म लावा बाहर निकलने को आतुर हो जाता है; गीत भी प्रसवित होने के लिए व्याकुल हो जाता है। गीत प्रपात की अजस्र धार की तरह झरझराता निकल पड़ता है।

छायावाद के पुरोधाओं में से निराला और पंत ने छायावाद का दामन पहले ही छोड़, प्रगतिवाद की राह पकड़ ली थी। बावजूद इसके छायावाद बहुत दिनों तक जड़ जमाये रहा। उत्तरछायावादी काल के कवियों ने अलग स्वछंद राह पकड़ी। उनकी आत्मा भावुकता और दर्शन की गहराइयों में भटकती रही।

आज से तीस–चालीस वर्ष पूर्व बिहार के प्रायः कवि, गीतकार ही थे, किन्तु उनकी गीत चेतना प्रायः छायावादी या स्वच्छंदतावादी ही रही। आज भी जनचेतना से जुड़कर लिखने वाले उल्लेखनीय गीतकार बहुत कम हैं। उन थोड़े गीतकारों में राजेन्द्र प्रसाद सिंह, रामनरेश पाठक (दोनों स्वर्गीय) सत्यनारायण, गोपी वल्लभ सहाय, डॉ0 शान्ति सुमन, नचिकेता, डॉ0 रामकृष्ण और डॉ0 यशोधरा राठौर का नाम लिया जा सकता है।

डॉ0 शान्ति सुमन के गीत सामाजिक सरोकार और जनचेतना से संपृक्त रहे हैं। इनके गीतों में आमजन के राग, दुख–सुख, हर्ष–विषाद को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। सद्यः प्रकाशित गीत संग्रह 'नागकेसर हवा' के 86 गीतों में फैले जन सरोकारों और जन संपृक्ति को देखा–परखा जा सकता है। इनका मानना है – 'मेरे मन में अपने गीतों को लेकर कोई दुविधा नहीं है। देश–दुनिया के संघर्षजीवी जन के सुख–दुख, हर्ष–विषाद, आशाकांक्षा और बेहतर जिन्दगी, दुनिया के लिए उनकी मुक्ति–चेतना ही मेरी प्रतिबद्धता है।'

डॉ0 शान्ति सुमन के आलोच्य संग्रह 'नागकेसर हवा' में भी यह

प्रतिबद्धता शिद्दत से महसूसी जा सकती है। 'इसी शहर में' गीत की पंक्तियाँ देखें – 'इसी शहर में ललमनिया भी/रहती है बाबू/आग बचाने खातिर कोयला/चुनती है बाबू/पेट नहीं भर सका रोज के रोज दिहाड़ी से/सोचता मन चढ़ कर गिर जाए ऊँच पहाड़ी से/लोग कहेंगे क्या यह भी तो/गुनती है बाबू...'

यह गीत मन को झकझोर जाता है। गरीबी का जीवन कितना क्रूर, कठोर और निर्मम है। एक गरीब आदमी को जीने के लिए किन–किन संघर्षों से होकर गुजरना पड़ता है। शहर में एक ओर अट्टालिका और प्रासाद हैं तो दूसरी ओर एक गरीब अपनी जिंदगी से जद्दोजहद कर रहा है। गीतकत्री ने सामाजिक विरोधाभास को इस गीत में शिद्दत से महसूसा है। सहसा इस गीत को पढ़ते हुए निराला की कविता 'तोड़ती पत्थर' की याद आ जाती है।

गीतकर्त्री का प्रकृति के साथ चोली–दामन का रिश्ता है। यह रिश्ता संग्रह के तमाम गीतों में देखा–परखा जा सकता है। प्रकृति के एक–एक अवयव यथा फूल, पत्ते, झरने, नदी, आकाश, समुद्र सबसे इतना अपनापा है कि इनके बगैर कुछ कहा ही नहीं जा सकता। आज प्रकृति के मनोरम चित्र मनुष्य के जीवन से आपा–धापी में दूर होते जा रहे हैं। वहीं डॉ0 शान्ति सुमन प्राकृतिक बिम्बों के सहारे अपने मन के तमाम भावों, आधुनिक बोधों, तथा गहरी संवेदना को व्यक्त करती हैं। इनकी प्राकृतिक बिंबयोजना वायवीय न होकर गहरा अर्थबोध देने में समर्थ है। इन्होंने अपने गीतों में सभी तरह के बिम्बों का प्रयोग किया है। चाक्षुष बिंब, घ्राण बिंब या स्पर्श बिंब ही क्यों न हो सभी बिंबों का कुशलतापूर्वक निर्वहन किया है। इनकी बानगी इन पंक्तियों में देखी जा सकती है –

'मुस्कानों की धूप पहन कर/आई सुबह हवा/जल्दी–जल्दी रंगने बैठी/अपने ओंठ जवा/महमह करे देहरी घर की/खिड़की बुनती जाली/कोंपल पहली इस अड़हुल की/फूटी लेकर लाली/अभी उतरने वाली परबत से है लाल शुआ....' (पहली कोंपल, पृष्ठ–41)

इनके गीतों में सभी ऋतुओं, महीनों के सुंदर चित्र उभर कर आए हैं किन्तु वसंत और फागुन ने इन्हें काफी मोहा है। इनके गीतों में ऋतु–

वर्णन और बारहमासा वर्णन की प्राचीन परंपरा के दर्शन भी नयी और मौलिक भंगिमा में होता है। इनके ऋतु वर्णनों में 'मलिक मुहम्मद जायसी' की तरह विरह की पीड़ा व्यक्त न होकर उल्लास के रूप में आया है। इनके गीतों में प्रकृति का उल्लसित बिंब उभर कर आया है, निराला की तरह ('अट नहीं रही है/आभा फागुन की तन/सट नहीं रही है/कहीं साँस लेते हो/घर–घर भर देते हो/उड़ने को नभ में तुम/पर–पर कर देते हो/आँख हटाता हूँ तो/हट नहीं रही है....') 'फागुन उतरा' में देखा जा सकता है –

'अलसायी है आँखे/लगता फागुन उतरा है/आँखों में, गालों पर/ताजा कुमकुम बिखरा है/गेंदा के फूलों की खुशबू/भरी हुई पुरवाई/सुर लय की कोंपल जो फूटी/पहचानी धुन आई/मन के ही साँकल पर/कोई जादू ठहरा है' अथवा 'सुखा रही केश' गीत में – 'कूक गई कोयल/पर रथ है रूका हुआ फागुन का/आते–जाते कभी हुई/पुरवा से कहा सुनी/मौसम ने मारे ताने/है तब से अनकहनी/सुखा रही है/केश धूप में/धागा बाँध सगुन का...'

डॉ0 शान्ति सुमन के भीतर बसी प्रकृति, महज जड़ प्रकृति नहीं है बल्कि पूरी अस्मिता के साथ जीवंत है। तभी मानवीय व्यवहारों का सहज आरोपन इतनी सहजता से कर पाने में समर्थ होती हैं। प्रकृति का मानवीकरण इनके गीतों की सहज प्रवृत्ति है।

'ग्रीष्म' बहुत ही कठोर ऋतु है। इसकी भयावहता कवि हृदय को बहुत कम ही आकर्षित करती है किन्तु डॉ0 शान्ति सुमन इनमें भी सौन्दर्य ढूँढ़ निकालने का प्रयास करती दीखती हैं। यह तो कवि हृदय होने का काव्य विवेक है। केदारनाथ अग्रवाल की तरह जो दृश्य सौन्दर्य की कसौटी से दूर थे, उन्हें उन्होंने सौन्दर्य की परिधि में लाया। उसी तरह डॉ0 शान्ति सुमन भी 'आई पुरवा' में नए सौन्दर्य बोध को जन्म देती नजर आ रही हैं – **'उमस बाँटती आई पुरवा/रितु को हुआ पता/फूलों की पखुरियों पर/आलेख लिखे धूलों के/ टहनी–टहनी टकराई/जैसे कम्पन कूलों के/होते सुबह संवदिया आया/सबको गया बता'** अथवा 'भरे जेठ में' के गीतांश देखें – **'अपने ही दुख जब दिखते थे/बड़े–बड़े लगते वे कितने/गिरे**

हुए पीले पत्तों पर/अपनी मुहर लगायी किसने/ऊसर हुए खेत पर रितु की आँख बरसती है/खुशियों की ताबीज बँधी है, बाँहें कसती हैं....'

'रोये से कचनार' संग्रह का अद्‌भुत और दिव्य गीत है। इसमें 'बेटी की विदाई' प्राकृतिक बिम्बों के माध्यम से बड़े ही मनोरम ढंग से व्यक्त की गयी है तथा आद्‌यंत सांगरूपक का निर्वहन अद्‌भुत कुशलता से किया है। लगता है कि संपूर्ण प्रकृति इस विदाई समारोह में सम्मिलित है तथा इस अवसर पर अपनी–अपनी भूमिकाओं का निर्वहन कर रही है। इस गीत को पढ़ते हुए सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के गीत 'मेघ आए बड़े बन ठन के सँवर के/पाहुन ज्यों आए हों गाँव में शहर के' तथा 'आए महंत वसंत' का सांगरूपक और प्रकृति का मानवीकरण बरबस याद आता है –

'खुशबू चली हवा के घर से/रोये से कचनार/जैसे बढ़ते पाँव विदा के/मन के फाँक हजार/आशीषों में हाथ उठे हैं/अड़हुल के जूही के/खेतों के मेड़ों पर बादल/आते हैं फूही के/दोनों पाँव महावर भर के/चलती दो पग चार/महफा के झालर में उड़ते रंग नहाये द्वार/टहनी की आँखें भर आईं/लहरों ने मुँह पोछे/हरियाली के नए बाग में/मन ही बन अंगोछे/भीतर–भीतर ही कुछ दरके/नेह नयन अँकवार/मन से मन की बात हुई है/रंगे खत में प्यार' यह गीत हिदी गीतों में विरल गीत है। ऐसा निर्वहन गीतों में दुर्लभ है। इस गीत की समानता 'देव' के कवित्त – **'डार द्रुम पलना बिछोना नव पल्लव के/सुमन झिंगूला सोहे तन छवि भारी है/पवन झूलावे, केकी–कीर बतरावैं 'देव'/कोकिल हलावैं–हुलसावैं कर तारी दै....'** से सांगरूपक निर्वहन के आधार पर की जा सकती है, किन्तु अपने विषय वस्तु (विदाई) के संदर्भ में यह हिन्दी गीतों के इतिहास में अकेला गीत प्रयोग है।

'उड़े से दिन' गीत में गहरी सामाजिक चिंता दिखाई पड़ती है। कवयित्री का कोमल हृदय समाज में फैले अनाचार, भ्रष्टाचार देखकर गहरे व्यथा के समुद्र में डूब जाता है। इससे निकलने की छटपटाहट है, मुक्ति की बेचैनी है जो इस संग्रह का ही नहीं बल्कि कवयित्री/गीतकर्त्री

का मूलभाव है। डॉ0 शान्ति सुमन के गीतों की सबसे बड़ी विशेषता है कि प्रकृति के व्याज से ही मनुष्य के दुखों, समस्याओं, हर्ष–विषाद को संवेदना के अंतरतम में गहरे उतर कर व्यक्त करती है। समकालीन युगबोध को व्यक्त करती गीत की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

'नदी चुप है, धार चुप है/और चुप लहरें/इन उड़े से दिनों में हम कहाँ जा ठहरें/पाँव सौ–सौ चल पड़े हैं अंधरो के दल/देखना है कठिन कैसे पल रहे हैं छल/सुरंगों से भरी राहें पाँव पर पहरे/जली है तो आग घर में ताप कितना कम/अंधेरी इन घाटियों में गुम हुआ मौसम/साफ तो कुछ नहीं दीखे अतल जल गहरे....'

डॉ0 शान्ति सुमन की यह भी विशेषता है कि यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए कहीं भी तलवार भाँजती या नारा लगाती नजर नहीं आतीं। कोमल कांत पदावलियों में भाषाई विनम्रता के साथ बिना 'लाउड' हुए कठोर यथार्थ को बड़े सलीके से अभिव्यक्त कर जाती हैं। इन्होंने संग्रह की भूमिका (अंतरा) में स्वीकार करते हुए लिखा भी है – **'किसी कठोर परिस्थिति या हिंसक स्थितियों के लिए मैंने बाघ, भालू, सियार आदि हिंस्र जीवों का आश्रय नहीं लिया और न लहू बहाने की स्थिति मेरे गीतों में आई है। मैंने अमानवीय कठोरता को भी नरम कोमल तरीके से कहने का रास्ता अपनाया है। लहू के बहने से मुझको भय लगता है कदाचित यह भय मेरी कोमलता और आत्मीयता का स्रोत बनता है।'** लाउड होना इनकी नियति में ही नहीं है। इसलिए कठिनतम परिस्थितियों की अभिव्यक्ति भी कोमल–कांत विनम्रता से लबालब भरी है। चाहे वह 'बाढ़ की विभीषिका' हो या 'भुखमरी' ही क्यों न हो, परुषता का सर्वथा अभाव–सा दिखता है। नमूने के तौर पर कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं – **'आँधी जैसा बढ़ा आ रहा/बजा रहा है तासा/ये घनघोर घटायें बादल/गाता है चौमासा...'** या **'उनके घरों की तस्वीरें हँसती हैं/अपने घर की दीवारें रोती हैं/जोड़ रही उंगली पर आधे/अपने बीते दिन को/कितने कब भूखे सोये बच्चे/लगे गड़ाँसे मन को/बिना जले वह धुआँ–धुआँ होती है....।'**

संग्रह का एक गीत है 'कागज पर पानी'। अभिधार्थ रूप में यह गीत

वर्तमान और भविष्य के पानी पर गहरी चिंता प्रगट करता दिखता है तो दूसरी ओर 'पानी' के श्लेष से व्यवस्था पर बगैर लाउड हुए गहरी चोट करता है। 'व्यवस्था का पानी' अर्थात इज्जत–आबरू दाँव पर हैं। व्यवस्था से लोगों का विश्वास किस प्रकार उठ रहा है, इसकी व्यंजनापूर्ण अभिव्यक्ति बहुत सुंदर बन पड़ी है –

'कागज पर बहता है पानी/प्यासे होंठ सिले.../पढ़ा करें बच्चे किताब में/पोखर घाट–नदी/खाली हाथ चली आई है/यह जलहीन सदी/काँटे ही खिलते हैं अब तो/घर भी लगे किले...।' मनुष्य की आँखों का पानी किस तरह मरता जा रहा है, यह सहज ही महसूसा जा सकता है। इस सदी की सबसे बड़ी विडंबना है संयुक्त परिवार का टूटना और एकल परिवार का बंनना। अब तो परिवार की संकल्पना का ही विघटन हो रहा है। अब तो 'लीव इन रिलेशनशिप' की नई अवधारणा के जमाने में घर, घर–सा नहीं रह सकता। संवेदना शून्य समाज में घर, घर न होकर किले की कैद लगता है। यह गीत उत्तर औपनिवेशिक मानसिकता पर भी गहरी चोट करता है क्योंकि उपभोक्तावादी समाज संवेदन शून्य हो चुका है।

इस संग्रह की गीतकर्त्री को स्त्रीवादी आंदोलन का जरा भी संस्पर्श नहीं हुआ है। आज स्त्रीविमर्श की धूम पूरी दुनिया में है। स्त्रियाँ पूरी ताकत से पुरुष को ललकार रही हैं तथा अपने ऊपर हुए शोषण, उत्पीड़न को 'बोल्ड' अंदाज में मुट्ठियाँ भींचकर व्यक्त कर रही हैं। यह संयोग कहा जाए या दुर्योग कि इन पर इस आंदोलन का कोई असर नहीं दिखता। स्त्री होने के नाते इन्हें स्त्री विमर्श में कूद पड़ना चाहिए था किन्तु इनके गीतों में कहीं स्त्रीवादी क्रांतिकारिता के दर्शन नहीं होते। जिस प्रकार स्त्रीवादी कवयित्रियाँ, कथा लेखिकाएँ, स्त्री विमर्शकर्त्रियाँ पुरुष पर तोप बरसाती हुई दिखती है, डॉ0 शान्ति सुमन के गीतों में इसकी बू भी नहीं सूँघी जा सकती हैं। किन्तु ऐसा नहीं कि इनकी चेतना से स्त्री गायब है। स्त्री है पर स्त्रीवाद के घोषणा–पत्र की तरह नहीं। स्त्री है, पर स्त्री की तरह, प्रकृति के एक उपादान की तरह, प्रेम की चलती–फिरती आत्मा की तरह, निश्छल, कोमल, व्यक्तित्व लिए, तो कहीं संघर्षरत भी। देखें एक बानगी – **'कंचा खेल रही है लड़की/आँखों से हँसती/खाली हाथ अब तक है रही/अधूरी है मस्ती/रह–रह आसमान को देखे/रह–रह बादल को/घर**

पर अपनी नजर टिकाये/उस बीते कल को/सुहाती अभी हाट की चीजें/हैं इसको सस्ती....।'

डॉ0 शान्ति सुमन के गीतों में सूरदास की गोपियों–सी भावुकता है न कि नंददास की गोपियों–सी तार्किकता। नंददास की गोपियाँ जहाँ तर्कों के वाणों से उद्धव के हृदय को तार–तार कर देती हैं, वहीं सूर की गोपियाँ उद्धव को भावुकता की नदी में आकंठ डुबो देती हैं। उसी प्रकार डॉ0 शान्ति सुमन के गीत भी पाठक/श्रोता को भाव विभोर कर जाते हैं। इसका मतलब यह नहीं मानना चाहिए कि इनकी चेतना क्रांति विरोधी है, मुक्तिकामी नहीं है। बल्कि इन पर बीते युग का/अपने समय का विनम्र संस्कार हैजो इनको आज की कवयित्रियों की तरह 'बोल्ड' होने नहीं देता। इनके संग्रह के सभी गीतों पर यह संस्कार तथा प्रभाव देखा जा सकता है।

काव्यभाषा की दृष्टि से विचार करें तो पायेंगे कि इन गीतों में बड़ी ही सहज, सरस और मधुर भाषा का प्रयोग किया गया है। इन गीतों को पढ़ते हुए जितना बौद्धिक समाज आह्लादित हो सकता है उतना ही आम जन भी रससिक्त हो सकता है। लोक शब्दों का व्यवहार इन्होंने प्रचुर मात्रा में किया है तो तत्सम शब्दों का लोककरण भी। लोककरण करने से शब्द गीतों की लयात्मकता की धार को तेज कर देते है तो वहीं उच्चारण क्लिष्टता को कम करते हैं। इनकी भाषा पर मैथिली और बज्जिका का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। लोक शब्दों के कारण गीतों की सरसता एक ओर द्विगुनित होती है तो दूसरी ओर आत्मीयता और अपनापा का भी विकास होता है। संग्रह के गीतों में कनेर और अड़हुल के फूल अनेक बार अनेक रूपों में आते हैं। इन फूलों से इनका बहुत अपनापा दिखता है। जिस प्रकार हर अवसर पर अपने लोगों को लोग आमंत्रित करते हैं उसी प्रकार ये इन गीतों में कनेर और अड़हुल के बिम्बों का प्रयोग करती नजर आती हैं।

कुल मिलाकर डॉ0 शान्ति सुमन का सद्यः प्रंकाशित संग्रह 'नागकेसर हवा' पठनीय और संग्रहणीय तो है ही, इसे पढ़ने और महसूस करने का एक अलग दिव्य सुख है।

■

समय में रचनात्मक हस्तक्षेप

❑ डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव

जानी–पहचानी कवयित्री शान्ति सुमन की पहचान प्रायः गीतकार या नवगीतकार के रूप में रही है। समय का दबाव ऐसा कि आज वे गद्य–लय में काव्य–सृजन कर रही हैं और 'सूखती नहीं वह नदी' संग्रह से यही नई पहचान संभव हो सकी है और विकसित भी। गाँव–शहर के सीमान्त पर शान्ति सुमन ने 'पेड़ों की शक्ल में लोग', 'रोटी के पेड़', 'नई बात नहीं', 'किशोरी अमोनकर को गाते हुए देखकर' जैसी कविताएँ लिखी हैं जो समय में रचनात्मक हस्तक्षेप के मानिन्द हैं।

शान्ति सुमन संवेदनशील कवि हैं और सम्बन्धों का राग पहचानती हैं। उनके लिए 'चिड़िया' कभी माँ हो जाती है, कभी 'दियारे से शहर तक' का लैण्डस्केप सादगी में चकित करता है। चिमनियों से भरे शहर का धूल–धुआँ शान्ति सुमन के काव्य–समय में वर्जित नहीं है। 'पतझड़' में कविता में पेड़ पत्तों से वंचित होते हैं, पर ऑफिसर्स फ्लैट में टाइल्स की चमक बढ़ती जाती है। आउटहाउस के बच्चे और उनके मजदूर पिता सभ्यता की अंधी दौड़ में शामिल हो जाना चाहते हैं।

शान्ति सुमन पठन के संस्कार के चलते 'टेनीसन' की कविता से रू–ब–रू होती हैं और वसंत–दर्शन कवयित्री का अपना अनुभव बन जाता है। वसंत–लदे खेत में कविता आश्चर्य हो सकती है और प्रीतिकर अनुभव भी। सुशांत की स्मृति–शृंखला में एक–दो कविताएँ करुणा का विस्तार करती हैं और निजी क्षति के एहसास को गहरा कर जाती हैं। मीरा को गाती किशोरी अमोनकर मीरा से आगे चली जाती हैं। किशोरी अमोनकर गाती हैं तो शृंगारी वैराग्य को छंद मिलता है। कवयित्री का सवाल है – 'इतनी अतल होगी क्या कोई भी नदी/जहाँ से निकलते हैं तुम्हारे/वैरागी ताल/संगीत का जलता ज्योतिर्पिंड बन जाती है/तुम्हारे माथे पर लगी लाल बिन्दी/साजन आओ म्हारे देश गाती हुई/नहीं लगता तुमको/कि तुम्हारे संग–संग गाती हैं मीरा...../'।

'फसल की किताब' में स्त्री की आँखों में 'चूल्हें की धौंक दिख जाती है। उसके लहू में अगहनी फसल की फुनगियाँ झलक जाती हैं।' ईटानगर, कमलपुर, डुमुरडीहा स्थानवाची नाम भर नहीं हैं – सफर में पड़ाव हैं। बेटे के जन्मदिन पर शान्ति सुमन की कविता 'सोलह फरवरी

– तुम्हारे जन्मदिन पर' एक मंगल–कामना है, जिसमें 'चन्दन–तिलकित भाल' जैसे प्रयोग सम्बन्ध की गरमाई का आभास देते हैं। यहाँ भी माँ–बेटे के बीच रोटी आ जाती है। यह कामकाजी दुनिया का सच है। जिस घर–गृहस्थी में माँ पहले से रमी हुई हैं, नई बहू उनके सारे काम सँभाल लेती है। भाभी के लिए शान्ति सुमन का सद्भाव औपचारिक नहीं है। 'वे जब झाड़ू पकड़ेंगी/फेकेंगी बुहारन/तो उनके छोटे घर में, पड़ेंगे नहीं जाले/कलश, चौक, आसनी/सब कुछ चमकेंगे/और यह छोटा घर भी।'

शान्ति सुमन की कुछ कविताएँ आधी–अधूरी कथा लगती हैं। जैसे – 'अब माँ नहीं हैं।' 'अब माँ नहीं हैं/और नहीं है वह नदी भी/मटियारी मिट्टी है-उसके पेट में/उपजते हैं उसमें – जौ–गेहूँ और सरसों/मगर तुम तो कहते थे/कभी सूखती नहीं थी वह नदी/जाने कहाँ से भर जाते थे उसमें अथाह जल...।' कविता का अंत साधारण है, पर स्वप्न–विचार में अभिन्न। 'नहीं टूटेगा पुल' यह स्वर अदम्य आस्था का है। शान्ति सुमन स्त्रीवादी नहीं हैं, पर स्त्री–उत्पीड़न का सच जानती हैं। 'नयी बात नहीं' में एक स्त्री का शव एक संक्षिप्त त्रासद कविता–कथा है। स्त्री का शव है, तो पुरुष उसमें भी 'देह' देखते हैं। मीडिया के लिए स्त्री का शव खबर है। कवयित्री के शब्द हैं – 'उसकी आत्मा में ईश्वर नहीं था/उसकी आत्मा तक गया नहीं ईश्वर/वह सिर्फ देह थी, देह के साथ रही/देह लेकर मर गयी/मनुष्य होने की आदिम परिभाषा/पर भी पत्थर रख गयी।'

'सूखती नहीं वह नदी' में वैविध्य है और नयी काव्य–संभावना की झलक भी। सरलता है – पर सरलीकरण से बच कर। इस सरल वैविध्य में चुप्पी है, मितकथन की कला भी। प्रकृति और मनुष्य के बीच का अनवरत संवाद प्रीतिकर है। उसे विचारों में रिड्यूस करने का बड़बोलापन नहीं है। शान्ति सुमन नयी खिड़कियाँ खोलती हैं और स्मृति–जीवन में कविता को नयी पहचान देती हैं। शान्ति सुमन की कविता मंथर लय में चलकर जीवन वृत्तान्त बनती है। वे मानेंगी – आगे राहें और हैं। समय इतना सरल नहीं है – वह वैश्वीकरण और बाजारवाद की गिरफ्त में है। बेशुमार चीजें कविता को कथा बना रही होंगी। तब कविता भी कुछ और होगी।

■

...राग और स्मृति की नदी

❑ डॉ० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी

शांति सुमन की कविताओं के नये संग्रह – 'सूखती नहीं वह नदी' – से गुजरते हुए महसूस किया जा सकता है कि इसमें सचमुच एक नदी प्रवहमान है। भावना और संवेदना, नमी और तरलता, आत्मीयता और कोमलता तथा राग और स्मृति की नदी। इन कविताओं में संबंधों का एक रागात्मक लगाव है – अलगाव के विरूद्ध। दादी, माँ, बेटी, बेटा आदि ही नहीं, पीपल के पत्ते का भी अपनी शाख से अलग होना कवयित्री में कम्पन पैदा करता है। कोई एक सूत्र है जो उसे गाँव और अपने उस बहुरंगी, बहुरूपी प्राकृतिक परिवेश से जोड़े रहता है जिसमें वसंत है, बरखा है, शिशिर और हेमंत है, अलग–अलग ऋतुओं में मौसम का मिजाज है। इन कविताओं में गाँव की छौंक मात्र नहीं है बल्कि उसकी समूची प्राणधारा है – सड़कों, स्थानों, फसलों, शाक–सब्जियों तथा पर्व–त्योहारों के नामों तक के साथ। किसी ग्रामीण पृष्ठभूमि का कवि ही लिख सकता है ऐसी कविताएँ जो अपने अंचल की शब्दावली में पूरी तरह रचा–बसा हो। ऐसा अनुभव कवि की निजता और वैयक्तिकता में ही प्राप्त होता है जिसकी हमारे समय में खासी निन्दा की जाती है। इन कविताओं में गाँव के कुछ अछूते–टटके बिम्ब हैं, गाँव की स्त्रियों–बच्चों और मजदूरों के संघर्ष–चित्र भी हैं। पीने का पानी ढोती बेटियाँ, सुविधाओं से वंचित बच्चे, रोटी–कपड़े के लिए खटते मजदूर और ऊपर से सरकारी योजनाओं का खोखलापन। यही है वह जीवन–धारा जिससे पैदा होते हैं विचार। यही है वह साधारणजन की धड़कन जिसे जनवाद के रूप में जाना जाता है। क्रांतिकारी विचारों से नहीं बनती कविता। जीवन से ही पैदा होते हैं क्रांतिकारी विचार। कवयित्री द्वारा लिखे जाने के कारण इन कविताओं में स्त्री के प्रति सह अनुभूति स्वाभाविक है और इसीलिए इनमें बंधनमुक्ति के लिए छटपटाती स्त्री के बिम्ब खासतौर से उभरते हैं। कवयित्री जानती है कि इस वस्तुजगत में भावना का बचा रहना कितना कठिन है फिर भी प्रशंसनीय है कि उसके भीतर भावना की नमी बची है। मुझे विश्वास है, इस संग्रह की कविताएँ सहृदय पाठकों को आकर्षित करेंगी।

■

समय और समाज से जुड़ी सोच की कवितायें

❑ डॉ० शिवशंकर मिश्र

'सूखती नहीं वह नदी' सुबह से शाम तक इसी की कविताएँ पढ़ता रहा। अभी ही पुस्तक समाप्त की है। आपके गीतों से बाहर भी आप में एक सशक्त कवि है। यह देख–जान कर मुझे व्यक्तिगत रूप से प्रसन्नता हुई है। लगा नहीं कहीं एक बार कि कविता का रूप–शिल्प आपकी पकड़ या अभ्यास से बाहर है।

आपके गीतों में आये बिंबों की संश्लिष्टता, जटिलता, बहुलता प्रायः मुझे अन्यमनस्क बनाती रही है, लेकिन यहाँ इन कविताओं में प्रयुक्त बिंब–योजनाएँ, अपेक्षया, अधिक संयत, संबद्ध और प्राणवंत लगीं। इन कविताओं से गुजरने के बाद यह भी लगा कि आपको (अन्य गीतकारों को भी) कविताएँ भी अवश्य लिखनी चाहिए। ऐसे में अपने ही शब्दों को पकड़ने– पाने में सहायता भी मिलती है। और लिखिए कविताएँ।

यह सच है कि ये कविताएँ एक स्त्री की हैं, किसी स्त्रीवादी की नहीं। यह अच्छा है। इस तरह, मेरे मत में, प्रतिक्रियात्मक अभिव्यक्तियों की बजाय अनुभव की प्रामाणिकता के लिए अधिक जगह बनती है। अपकी कविताओं में यह है।

जनवाद से आपके जुड़ाव ने भी कई कविताओं को अतिरिक्त मूल्यवत्ता और संवर्धन प्रदान किया है। फिर भी बात वाद–जनवाद की नहीं, बल्कि समय और समाज से जुड़ी सोच की है। नदी भी लगभग पूरी पुस्तक में उपस्थित मिलती है जो संग्रह की आंतरिक एकता को चिह्नित ही नहीं करती, उसे सशक्त भी बनाती है। इस नाते, संग्रह का नाम भी उपयुक्त है। फिर, ग्रामीण संदर्भ भी अपनी निरंतरता में पर्याप्त आकर्षित करते हैं, अपने सर्वनामों सहित और कवि को एक व्यक्तित्व भी देते हैं। जहाँ–तहाँ भाषा–व्यवहार (प्रयोग नहीं) अटपटा लगा जरूर।

फिर भी, समय के इतने फैलाव और अनुभव–वैविध्य के बावजूद, कविताओं की भाषा–शैली, प्रयोग–प्रविधि की एक अपरिवर्तित आवृत्ति काव्य–शब्द और अनुभव–संघर्ष के बीच एक खाई भी बनाती है जो व्यक्तिगत रूप से मुझे बहुत पसंद नहीं। ऐसे में कविताओं को एक दूसरे

से अलग कर पाना भी कठिन हो जाता है, विचार भी शायद अपने सही स्वरूप में व्यक्त नहीं हो पाते।

यों पढ़ते हुए सभी कविताएँ अच्छी लगीं, ये ज्यादा पसंद आयीं –

'अभी भी दीखती हैं', 'तुम वही खुशी हो', 'फसल की किताब', 'रास्ता दिखाया दुर्दिन ने', 'पानी के सपने', 'नींद से झुकी जा रही लड़की', 'नदी', 'पेड़ों की शक्ल में लोग', 'चूल्हा नहीं जलता', 'लालिम पत्ती', 'सुगन्ध–सी बेटी', 'बथुआ का साग चुनते', 'हँसती है रंगोली', 'ऋतु–कथा', 'किशोरी अमोनकर को गाते हुए देखकर', 'बंजर में बीज', 'शायद'।

बहुत हैं। इससे ज्यादा एक संग्रह में किसी पाठक को कहाँ मिलेगा ? मेरी बधाई। इसी को मेरा पत्र, प्रतिक्रिया, समीक्षा मानें। यों मैं समीक्षाएँ लिखता भी नहीं। कविताएँ जरूर पढ़ता हूँ और अपनी राय भी उन पर जरूर देता हूँ, अगर मांगी जाए।

■

संघर्ष की आँच में भावना की नमी बचाने की कोशिश : शान्ति सुमन की कवितायें

❑ प्रणव सिन्हा

शान्ति सुमन ने जिस तरह गीत को साध लिया है, इसी तरह कविता को भी साध लिया है। ऐसा इसलिए हुआ है कि गीत की रचना करते–करते उनकी संवेदना और अभिव्यक्ति इतनी मँज गयी है कि उनकी कविता भी शब्द–लय और अर्थ–लय से भरी हुई है। वैसे कविता में गीत का होना हर समय अच्छा नहीं होता, पर जिस गीतात्मकता के स्पर्श से कविता स्तरीय, अर्थपूर्ण, संवेदनशील एवं सम्प्रेषणीय हो जाती है, उस सीमा तक कविता में गीत को प्रभावी शिल्प के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। वैसे कविता से गीत को अलग माननेवाले, आगे बढ़कर कहूँ तो अछूत माननेवाले समीक्षकों और आलोचकों को यह बात नहीं रूचेगी। परन्तु कविता को ग्राह्य बनाने के लिये उसमें लय का सान्निध्य होना ही चाहिये। मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि गीतों में जो बातें कहने से छूट जाती हैं, कविता उनको भी समेट लेती है। कविता का स्पेस बड़ा है, इसलिये उस बड़े कथ्य को लिखने में लय अपनी सहभागिता का निर्वाह करती है।

एक स्थान पर डॉ0 विजय बहादुर सिंह ने लिखा है कि 'समकालीन नयी कविता ने जो साहित्य के गैप्स जाने–अनजाने छोड़ दिये थे उन्हें बगैर किसी दावेदारी और घोषणा के संगीतात्मक छन्दों वाली कविता ने भरने की कोशिश की।' ठीक इसी के समान्तर मैं कहना चाहता हूँ कि गीत जहाँ अपनी उपस्थिति नहीं बना सका, वहाँ कविता ने उस काम को पूरा किया है। गीत और कविता का यह अंतर्सम्बन्ध कभी स्थगित नहीं होने वाला है। प्रगतिशील आन्दोलन के तीन बड़े कवि केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन गीतकार भी हैं और कवितायें लिखकर उन्होंने सिद्ध किया कि समकालीन जीवन–संघर्ष को गीत और कविता दोनों ही अभिव्यक्त करते हैं।

शान्ति सुमन नवगीत की अनन्या रचयित्री हैं। उन्होंने नवगीत को अपना अलग रंग और आस्वाद देकर अपनी पहचान बनायी। 'सूखती

नहीं वह नदी' इनकी कविताओं का पहला एकल संग्रह है। इसके पहले 1994 में 'समय चेतावनी नहीं देता' नाम से इनकी कविताओं का साझा संकलन आया था। उन कविताओं के पूर्वकथन में 'जिन्दा रहने का सबूत' शीर्षक से शान्ति सुमन ने अपनी कविताओं के बारे में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए लिखा था कि 'कवि जिन परिस्थितियों में जीता है, कविता में उसके जिये गये अनुभव ही जीते हैं। माँ, पिता, घर, गाँव सारे संबंधों से घिरी हुई कविता व्यवस्था के चक्रव्यूह में फँसती है और जिस आत्मीयता से गाँव–घर को बुनती है कविता, उसी तीक्ष्णता से व्यवस्था के घिनौने चेहरे को भी बेनकाब करती है। इस प्रकार कविता अपना जन–पक्ष सिद्ध करती है।' शान्ति सुमन ने कविता को कभी मनोरंजन का साधन नहीं माना। कविता को इन्होंने सामाजिक जिम्मेदारी के रूप में ही स्वीकार किया है।

'सूखती नहीं वह नदी' का प्रकाशन 2009 में हुआ। कुछ समानधर्मा गीतकारों और आलोचकों को भी शान्ति सुमन की कवितायें चकित कर गईं। इस विस्मय को शान्ति सुमन इस कथन के द्वारा काटती हैं। उन्होंने लिखा है कि वे गीतों के दिन थे – कभी उजले, कभी कठिन मलिन भी। गीतों के संग्रहों के साथ कविता–संग्रह के प्रकाशित नहीं होने के कई कारण हो गये। कई बार सम्पादकों–प्रकाशकों ने कविता के बदले मेरे गीत मांगे, कवितायें छपीं भी, पर गीतों की तरह उन पर प्रतिक्रियायें खुलकर नहीं आईं...।'

सम्प्रति कवयित्री के अनुसार उनके अंतर्वाह्य संघर्षों, जीवन की असुविधाओं और व्यवस्था की जटिलताओं ने इन कविताओं को लिखने की जमीन दी है। 'इन दिनों जमीन का मिलना भी बड़ी बात है।' इस जमीन को कवयित्री ने विस्तृत अर्थ–फलक तक पहुँचाया है। यह जमीन कविता के सारे अवयवों, रचनात्मक संहिति तथा रचना प्रक्रिया के व्यूह को खोलती है। जीवन–संघर्षों से ही उनका रागात्मक लगाव सघन हुआ है। शान्ति सुमन के अनुसार उनकी संवेदनाओं में गाँव है, इसलिये शहर की चमक इनमें कम है, पर मुझको लगता है कि व्यवस्था के मकड़जालों को खोलती हुई उनकी कविता जब समकालीन समाजार्थिक विसंगतियों से मुठभेड़ करती है तो गाँव क्या, शहर, जंगल, पहाड़ सभी

आ जाते हैं। पर यह है कि गाँव के लिये उनका आकर्षण, लगाव और अपनापन बेहद दीखता है –

तुम्हारे गाँव की बगल से/बहनेवाली नदी
ढाई कोस दूर से ही चली जाती है/
आस–पास के गाँवों की ओर/किनारे पर छोड़कर/
ढेर सारे पटेर और सरपत के/हरे–हरे हिलते पत्ते

पटेर और सरपत वाले गाँव बाढ़ की विभीषिका झेलते, अकाल से जूझते गाँव ही हैं जो देश के अन्य भागों की तरह मिथिला में हर साल आकर गाँव की जिन्दगी उजाड़ जाते हैं। इस नदी के माध्यम से जाने कितनी स्मृतियों के पन्ने कवयित्री की आँखों में खुलते हैं और हल्की हवा के लगते फड़फड़ाने लगते हैं –

अब माँ नहीं है/और नहीं है वह नदी भी मटियारी मिट्टी
है उसके पेट में/उपजते हैं उसमें जौ–गेहूँ और सरसों/मगर
तुम तो कहते थे/कभी सूखती नहीं थी वह नदी

गाँव की त्रासदी को शान्ति सुमन की कविता बहुत समीप से महसूस करती है। उनका जन्म एक किसान–परिवार में हुआ। गाँव की बदहाली उन्होंने अपनी आँखों देखी है। विपन्नता के बीच संबंधों की मिठास को लगातार मरते हुए भी देखा है। गाँव के रहनुमाओं की बेरूखी, वीरानगी उनकी देखी हुई है –

आप तो गाँव में रहते हैं सरपंच जी,
पर गाँव आप में नहीं रहता

इस लगावहीनता पर कवयित्री चुप नहीं होती। बड़े ही संजीदा रूप में वे अपना विरोध दर्ज करती हैं –

देखना जरूरी है/कि कैसे शिकार हो रहे हैं कामगार/
असमय मृत्यु के/भरती जा रही है जहरीली हवा/
उनके फेफड़े में/बीमार हो रही है खेतों की हरियाली/
एक नकली चमकदार ताजा हरापन/बिछा जा रहा है खेतों में/हर साल उजड़ती है आधी बस्ती

यह तय है कि बुनियादी संघर्ष ही कविता की जमीन तैयार करता

है। शान्ति सुमन की कविताओं में संघर्ष से तैयार यह जमीन अत्यंत सहजता से मिलती है। प्रख्यात आलोचक डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव ने उनकी कविताओ पर आरम्भिक लिखते हुए समय में उनके रचनात्मक हस्तक्षेप का संकेत किया है। उनके अनुसार 'जानी–पहचानी कवयित्री शान्ति सुमन की पहचान प्रायः गीतकार या नवगीतकार के रूप में रही है। समय का दबाव ऐसा कि आज वे गद्य–लय में काव्य–सृजन कर रही हैं और 'सूखती नहीं वह नदी' संग्रह से यही नई पहचान संभव हो सकी और विकसित भी। गाँव–शहर के सीमांत पर शान्ति सुमन ने 'पेड़ों की शक्ल में लोग', 'रोटी के पेड़', 'नयी बात नहीं', 'किशोरी अमोनकर को गाते हुए देखकर' जैसी कवितायें लिखी हैं जो समय में रचनात्मक हस्तक्षेप के मानिन्द हैं।' पेड़ों की शक्ल में लोग से यह चित्र द्रष्टव्य है –

'दिन के रूमाल पर मन की खुशी का/कशीदा कढ़ा हुआ
था/जब निकला था रोशनी का जुलूस/रास्तों की दोनों
ओर/पेड़ों की शकल में खड़े थे लोग/छाती पर हाथ
बाँधे/किसी ने नहीं देखा/कि तेजी से गुजरता रोशनी का
कारवाँ/छोड़े जा रहा है सड़कों पर/ढेर सारे स्याह
अंधकार

निम्नवर्ग की दिनचर्या को कविता में बुनने की कला शान्ति सुमन खूब जानती हैं। उन्होने इस कविता संग्रह में उसके कई चित्र रचे हैं। गरीबी में भी अपने घर, गाय–गोरू के साथ जीनेवाले ये लोग कितने सादा और संतुष्ट हैं। इस प्रसंग में इस वर्ग की औरतों और बच्चियों का एक चित्र यहाँ प्रस्तुत है –

'बकौलिया के आते ही/घेर कर बैठ जाती थीं बच्चियाँ और
औरतें/उनमें साड़ी का उल्टा पल्ला लेना सीख रही/लड़कियों
के साथ/गोबर उठानेवाली और 'घसगढ़नी' भी होती थी/
आलता पसंद करते चमकती थीं/उनकी आँखें/और बच्चियों
के हाथों में/लहराने लगते थे/लाल–लाल रिबन

इस संग्रह की कितनी ही कविताओं में इस समय और समाज में स्त्रियों की आहत होती अस्मिता और उनकी विडम्बनाओं के परिदृश्यों को दिखाया गया है। इनमें घर–परिवार की छोटी–छोटी खुशियों से

लेकर साधारण आदमी के दुख, कुण्ठा, घुटन और त्रास को भी व्यक्त किया गया है। इन कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता है इनमें सघन मानवीय संवेदना का होना। संवेदनाओं से भरी इन कविताओं के शब्द बोलते हुए लगते हैं। कवयित्री की आत्मीयता, स्नेह और सहानुभूति संघर्षजीवी, श्रमरत जन से लेकर गरीब बच्चों और छोटी–छोटी नौकरियों में बन्द दिनचर्या वाली बच्चियों तक जाती है –

लड़की की आँखों में रंग–बिरंगे कपड़ो में/सजे–धजे,
हाथों में खाने के डिब्बे लिये/खिलखिलाते हुए बच्चोंवाली
बस उतरती है/चुरूट पीता साहब उसको/ब्लैकबोर्ड
और/रोता हुआ बच्चा हिन्दी की बारहखड़ी लगता है

मानवेतर में भी अपनापन और लगाव इस संग्रह की कविताओं में भरे हैं –

इस तेज बारिश में/जब बाँस और करोटन के पत्ते/
साथ–साथ भींग रहे हों/मुझे उस चिड़िया की याद आई
है/जो कल तक जुटी थी अपना घोंसला बनाने के/
जुगाड़ में/अनायास उस लाल रिबनवाली लड़की की तरह

शान्ति सुमन की कविताओं में संघर्ष और तनाव को भी सहज शब्दों में व्यक्त किया गया है। इनकी कविताओं पर लिखते हुए डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी कहते हैं – 'क्रांतिकारी विचारों से नहीं बनती कविता। जीवन से ही पैदा होते हैं क्रांतिकारी विचार।' ऐसे जीवन–सापेक्ष क्रांतिकारी विचारों वाली शान्ति सुमन की कवितायें जीवन के झंझावतों के बीच भी भावना की नमी को बचाकर रखती हैं। 'सोलह फरवरी तुम्हारे जन्मदिन पर', 'बची हुई मनुष्यता', 'नदी', 'नहीं टूटेगा पुल', 'नयी बात नहीं', 'माँ ने लिखा है', 'बथुवा का साग चुनते', 'ऋतुकथा', 'तुम्हारी मिट्टी', 'दौड़ लगाता बच्चा' आदि इस संग्रह की चर्चित कवितायें हैं। आज के इस रचना–विरोधी समय में इन कविताओं की संवेदनाओं से गुजरना एक सुखद अनुभव हो सकता है। अपने समय और समाज के अँधेरों को खुरचती हुई ये कवितायें यथार्थ की पहचान और सम्पन्न संवेदनाओं की कवितायें हैं। घर–गिरस्ती के साथ और उससे अलग भी समय की धड़कनों की आवाजाही इन कविताओं में देखी–सुनी जा

सकती है –

अपने–अपने डरों से भागते हुए दो दिशाओं में भी/हम
कितने जुड़े होते हैं ईद की सेवई और होली के पुए को/
याद करते हुए/घरों के दरवाजे अलग होने के बावजूद

निस्संदेह भावनाओं की नमी को बचाने की बेचैनियों से ये कवितायें भरी हुई हैं।

■

साक्षात्कार

डॉ० शान्ति सुमन से बातचीत के अंश

'गीत ही जन-भावना को सुरक्षित रख सकता है'

❑ मार्कण्डेय प्रवासी

हिन्दी गीतों की महामल्लिका डॉ0 शान्ति सुमन पिछले साढ़े तीन दशकों से अपनी गीतात्मकता, लयात्मकता तथा गीत–विषयक प्रतिबद्धता के लिए हिमालय से कन्याकुमारी तक चर्चित रही हैं। आप मुजफ्फरपुर स्थित महंत दर्शन दास महिला महाविद्यालय में हिन्दी की यशस्विनी यूनिवर्सिटी प्रोफेसर हैं। इनके कई गीत–संग्रह प्रकाशित हैं। देश के दो दर्जन से अधिक आकाशवाणी केन्द्रों और कम से कम सात दूरदर्शन केन्द्रों द्वारा इन्हें आदर के साथ अखिल भारतीय हिन्दी कवि–सम्मेलनों में काव्य पाठ हेतु आमंत्रित किया जाता रहा है। गत दिनों इन्होंने संध्या प्रहरी के सम्पादकीय कार्यालय में पधारने की सदाशयता दिखाई। यहाँ प्रस्तुत हैं गीतों को केन्द्र मानकर इनके साथ सम्पन्न कुछ प्रश्नोत्तर।

शान्ति सुमन जी! आप सम्पूर्ण हिन्दी भारत में गीतों की महामल्लिका मानी जाती हैं और सम्पूर्ण देश में अखिल भारतीय कवि–सम्मेलनों में अपने नवगीतों और जनवादी गीतों के माध्यम से सुधी श्रोताओं का स्नेह पाती रहती हैं। कृपया यह बतायें कि आपने काव्य–साधना के लिए मूलतः गीत–विधा को ही क्यों चुना ?

मेरे लिए यह प्रश्न बहुत आकर्षक हो उठता है जब मार्कण्डेय प्रवासी जैसे श्रेष्ठ गीतकार मुझसे यह पूछते हैं कि मैंने गीत विधा को ही मूल रूप में क्यों चुना। आप तो जानते ही हैं कि गीत विधा सनातन है। चिर विकसित होकर भी इसमें विकास की संभावनाएँ पूरी तरह अक्षुण्ण रूप से जुड़ी होती है। सम्पूर्ण संस्कृत और हिन्दी साहित्य का इतिहास कहता है कि गीत अर्थात् छंद का वर्चस्व रहा है। गीतात्मकता वेद–मंत्रों में सुरक्षित रही है। हिन्दी में विद्यापति से लेकर अत्याधुनिक काल में भी गीत विधा ही सर्वाधिक मुखर विधा रही है। बीसवीं, सदी के निरंतर पथराते वातावरण में तो गीत ही हमारे अस्तित्व को नयी गति और त्वरा

दे सकते हैं। वर्तमान हिंसक परिस्थितियों में गीत हमारी आत्मिक आवश्यकता है। वह हमारी मनुष्यता, जनवादिता को सुरक्षित रख सकता है। गीतों के अवयवों में विन्यस्त माधुर्य, संवेदनशीलता और गंभीरता तथा आत्मीय संस्पर्श ऐसी बातें हैं जिनसे प्रभावित और संचरित होकर मैंने गीत को ही लेखन का मूल माध्यम बनाया।

हिन्दी में छायावाद का अन्त होते–होते जब प्रगतिशील लेखक संघ के माध्यम से मार्क्सवाद ने पैर जमाना प्रारंभ किया तो सबसे पहला आक्रमण गीतों पर हुआ। गीत को सामंती युग की विधा बताया गया और इसे तिरस्कृत रखने का प्रयास हुआ। आपकी दृष्टि में वह कौन–सा कारण है कि नयी कविता या प्रयोगवाद के दौर की कविता गीत को मार नहीं सका ?

छायावाद काल गीतों का उत्कर्षकाल रहा है। छायावाद के उत्तरार्द्ध में गीतों की काल्पनिक सघनता और वाचनीयता ने अवश्य ही उसकी सामाजिक प्रासंगिकता को थोड़ा व्यवधान दिया। ऐसे में भी महाकवि निराला के गीत अपवाद के रूप में लिये जा सकते हैं। उनके द्वारा रचित 'वह तोड़ती पत्थर', 'भिक्षुक' आदि कवितायें तथा 'आज मन पावन हुआ है', 'बाँधों न नाव', 'काले–काले बादल आये' आदि गीत इसके प्रमाण हैं। प्रगतिवाद के समीक्षकों ने अवश्य गीतों पर आक्रमण किया और अपनी वामपंथी रुझान परोसने की खातिर उन्होंने कविता का इस्तेमाल औजार के रूप में किया, पर यह आश्चर्य की ही बात है कि प्रगतिवाद के अधिकांश कवि गीतकार भी थे। जनवादी गीतों को धारदार बनाने का काम इन गीतकारों ने ही किया। हँसिया और हथौड़े की लड़ाई में छन्द ने अपनी सार्थक भूमिका निभायी। किसान और मजदूरों के मन में अपेक्षित प्रभाव डालने के लिए ये गीत जितने सक्षम हुए, उतनी कवितायें नहीं।

प्रयोगवाद और नयी कविता के युग में भी स्वयं अज्ञेय, भवानी प्रसाद मिश्र, गिरिजा कुमार माथुर, केदार नाथ सिंह, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, धर्मवीर भारती आदि अति प्रतिष्ठित गीतकार हैं। उनके गीतों ने उन्हें जितनी ख्याति दी, जितना उन्हें माँजा, उनकी कविताओं ने नहीं। फिर भी स्वयं अज्ञेय ने एक गीत–संग्रह में गीतों पर विपरीत वक्तव्य देकर उनपर निर्णय और अप्रासंगिक प्रहार किया, पर गीत की जड़ें इस देश की मिट्टी और इस देश की जनता के जीवन में बहुत गहरे गड़ी हैं।

गीत कभी भी जन–जीवन से विच्छिन्न नहीं हुआ और शिल्प के रूप में भी उसके आकृष्ट करने वाले सारे गुण और सारी विशेषताएँ जन–मानस को लुभाती रही हैं।

स्वाधीनता–संग्राम से लेकर आज तक जनता के सुख–दुख, संघर्ष और जीवन की सारी लड़ाइयों में गीत ही औजार बनते रहे हैं। इसलिए जिस चीज को जनता की स्वीकृति प्राप्त हो जाती है, उसको कोई वाद तो क्या कोई सत्ता भी ध्वस्त नहीं कर सकती, अतएव गीत आज भी लेखन के मूल में अवस्थित है।

गीत सृष्टि के आदिकाल से ही मानव–कंठ में रसते–बसते रहे हैं। आप आनेवाले अति वैज्ञानिक युग में किंवा ऐसा कहें कि इक्कीसवीं सदी में गीतों के भविष्य के बारे में कैसा ख्याल रखती हैं ?

गीतों के भविष्य के बारे में अत्यंत श्रेष्ठ और शालीन ख्याल रखती हूँ। मैं यह मानती हूँ कि आज हमारा सामाजिक जीवन जिस तरह तरह–तरह की कुंठाओं, असुरक्षा, भय, तनावों और हिंसक प्रवृत्तियों से ग्रस्त हो उठा है, गीत ही वैकल्पिक रूप से समाज को इन प्रवृत्तियों से मुक्त कर सकता है। भय से भरी हुई आँखों में नवगीत की लय बुनेगी और हिंसक मानसिकता में जब गीत की मिठास भरेगी तभी उस लालित्य, सामंजस्य और आत्मीय सम्पृक्ति के भाव जगेंगे जिनसे हमारे सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन की बेचैनी कम हो सकती है। इसलिए सही अर्थ में तो आज भी गीत अपने पूरे परिप्रेक्ष्य में अपनी संभावनाओं के क्षितिज खोले खड़ा है। जीवन जिस तरह आज विकास के सोपानों पर खड़ा है, गीत उसकी सम्पूर्ण क्षमताओं का दावेदार है।

संध्या प्रहरी के पाठकों के लिए कृपया यह बतायें कि गीतों की रचना के लिए आप शब्दों के चयन, अभिव्यक्ति की भंगिमा और लय–गति–मति की कैसी संयोजना पसन्द करती हैं ?

मैं गीतों की रचना के लिए ऐसा कोई शब्द चयन, ऐसी कोई अभिव्यक्ति की भंगिमा और लय गति–मति की संयोजना पसन्द नहीं करती जो आज के सामाजिक–राजनैतिक जन जीवन की अभिव्यक्ति के लिए ऊपर से आरोपित लगती हो। मेरे गीत अंतर्वस्तु के लिए अपेक्षित शिल्प का चुनाव कर लेते हैं। वे कहीं से सायास नहीं, बहुत सहज और

समाज तथा जन–जीवन से ही उठे हुए होते हैं। उदाहरण दे दूँ तो और भी स्पष्ट हो जाएगा –

अपना तो घर गिरा, दरोगा के घर नये उठे/हाथ और मुँह के रिश्ते में ऐसे रहे जुटे/सिर से पाँवों की दूरी अब दिन–दिन होती छोटी/कहती गोरी भौजी मेरे गाँव की!

अथवा

अभी समय को खेतों में
पौधों–सा रोप रहा
आँखों में उठने वाले गुस्से को
सोच रहा
रक्तहीन हुआ जाता कैसे गोदी का पालना!
बेटा मेरा रोये, मांगे एक पूरा चन्द्रमा!!

आपने अपने अधिकतर गीतों की रचना संध्या में की है या सुबह में या किसी अन्य समय में ? आप अपनी रचना–प्रक्रिया पर कुछ बताना चाहेंगी ?

यह बताना कठिन है कि मेरे अधिकतर गीत किस समय लिखे गये हैं। गीत किसी रुटीन वर्क की तरह तो लिखा नहीं जा सकता। इसलिये समय का कोई खास पहर मेरे लिए महत्वपूर्ण नहीं रहा। मुझको यह कहने में सुविधा होगी कि जब मेरा मन संघर्षों से जूझता रहा है और आस–पास की परिस्थितियाँ भी मुझको कसने का ही काम करती रही हैं तब अनायास गीतों ने ही मेरे द्वन्द्वों और तनावों से मुझको मुक्त किया है। गीत मेरे लिए कभी मनोरंजन का माध्यम नहीं रहा। कोटि–कोटि संघर्षरत श्रमजीवी जनता की तरह वह मेरे जीवन–संघर्ष में भी औजार की तरह रहा है। इसलिए जब भी मन थका होगा, गीतों ने ताजगी दी होगी – फिर वह सुबह है या शाम – क्या अंतर होता है।

आपके कितने गीत–संग्रह अब तक प्रकाशित हो चुके हैं ?

अभी तक दस गीत–संग्रह प्रकाशित हैं –

1. ओ प्रतीक्षित (नवगीत संग्रह) 2. परछाईं टूटती (नवगीत संग्रह) 3. सुलगते पसीने (जन गीतों का सहयोगी संकलन) 4. पसीने के रिश्ते (जनगीतों का सहयोगी संग्रह), 5. मौसम हुआ कबीर (जनवादी गीत–संग्रह), 6. मेघ इन्द्रनील (मैथिली गीत–संग्रह), 7. भीतर–भीतर

आग, 8. पंख–पंख आसमान, 9. एक सूर्य रोटी पर, 10. धूप रँगे दिन।

आपकी दृष्टि में अभी देश–प्रदेश में कौन–कौन से गीतकार गीत लेखन में सक्रिय लगते हैं ?

वर्तमान सामाजिक–राजनीतिक परिस्थितियों में लगातार खंडित होती हुई संवेदनाओं को गीत ही जीवित रख सकता है यह आभास आज के समस्त विचारकों को हो रहा है और इस अपेक्षा को देश–प्रदेश में जो गीतकार जीवित रख रहे हैं उनमें राजेन्द्र प्रसाद सिंह, माहेश्वर तिवारी, नचिकेता, रामकुमार कृषक, मार्कण्डेय प्रवासी, बुद्धिनाथ मिश्र, गोपी वल्लभ सहाय, सत्य नारायण, निर्मल शुक्ल, मधुसूदन साहा, अनूप अशेष, महेन्द्र नेह, देवेन्द्र आर्य, अंजनी कुमार विशाल, सुरेश श्रीवास्तव, श्रीकृष्ण तिवारी, यश मालवीय, कैलाश गौतम आदि के नाम अधिक महत्वपूर्ण हैं। आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री तो इस समय भी गीत रचना में रत हैं ही। उनकी सक्रियता और भी विलक्षण है।

यह संयोग और सौभाग्य की बात है कि पटना तथा दिल्ली से प्रकाशित 'संध्या प्रहरी' सांध्य दैनिक के सम्पादक श्री अंजनी कुमार विशाल स्वयं हिन्दी के सुकवि और सुकंठ गीतकार हैं। आपको जेवीजी संध्या प्रहरी कार्यालय में आकर कैसा लगा ? क्या आप इस समाचार–पत्र के सम्पादन–प्रकाशन में भी किसी प्रकार के गीतात्मक स्पर्श का अनुभव करती हैं ?

मुझको संध्या प्रहरी कार्यालय में आकर जिस आत्मीयता का अनुभव हुआ, उसके लिए मैं इसके सम्पादक श्री विशाल की साहित्यिक सुरुचि, गीतिल संवेदना और सामाजिक सौजन्य के लिए स्नेह मानती हूँ। मैं इस समाचार–पत्र के सम्पादन के विन्यास और अन्तर्वस्तु की सघनता में जीवन को इतना उपस्थित पाती हूँ कि लगता है गीत इसके भीतर ही कहीं रचा बसा होगा। इस कुशल सम्पादन, प्रकाशन के लिए श्री अंजनी कुमार विशाल की जागरूकता की प्रशंसा ही की जा सकती है।

('संध्या प्रहरी', 26 अप्रैल 1994 में प्रकाशित)

■

गीत रचना मेरी रचनात्मक विवशता है : शान्ति सुमन

❑ निर्मल मिलिन्द

डॉ0 शान्ति सुमन गीतों के संसार का सुपरिचित नाम हैं। एम0 डी0 डी0 एम0 कॉलेज मुजफ्फरपुर में हिन्दी विभाग की प्रोफेसर शान्ति सुमन का पहला नवगीत संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' सन् 1970 में प्रकाशित हुआ जबकि दूसरा नवगीत संग्रह 'परछाईं टूटती' सन् '78 में छपा। 'सुलगते पसीने' सन् '79 में, 'पसीने के रिश्ते' '80 में तथा 'मौसम हुआ कबीर' सन् '85 में छपे। ये तीनों संग्रह जनवादी गीतों के संग्रह हैं। डॉ0 शान्ति सुमन का शोध प्रबंध 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य' प्रकाशनाधीन है। शान्ति जी ने नवगीत पत्रिका 'अन्यथा' तथा जनवादी पत्रिका 'बीज' का भी संपादन किया है। इनके गीतों और निबंधों का प्रकाशन अनेक पत्र–पत्रिकाओं में होता रहा है। जमशेदपुर की साहित्यिक संस्था 'सृजन' के हाल–हाल में ही संपन्न काव्य आयोजन के अवसर पर शान्ति सुमन की गीत धारा के माध्यम से आधुनिक हिन्दी गीत जगत के विभिन्न वैचारिक पड़ावों की पड़ताल करने के लिए यह साक्षात्कार समायोजित किया गया।

पाठकों के लिए प्रश्न और उत्तर प्रस्तुत हैं –

प्रश्न – आपकी साहित्यिक यात्रा की शुरूआत कब हुई ? अपने गीतों के विकास के बारे में कहें ?

उत्तर – मेरी साहित्य यात्रा की शुरूआत माध्यमिक शिक्षा के दौरान बचपन में ही हो गयी थी, किन्तु इसमें स्थायित्व और स्तरीयता सन् 60 के बाद आयी। मेरी दृष्टि में किसी भी कला संस्कृति का मूलाधार अर्थव्यवस्था होती है। जाहिर है मूलाधार में परिलक्षित होने वाले परिवर्तनों का प्रतिबिम्ब कमोबेश कला–संस्कृति में अवश्य होता है। इसलिए मेरी रचनाओं में भी समाज व्यवस्था में आने वाली तब्दीलियों का कालानुसार प्रक्षेपण होता रहा है। वैचारिक अंतर्वस्तु में आनेवाले परिवर्तन के समानांतर मेरे गीतों में भी बदलाव आये हैं। यह प्रक्रिया सायास नहीं हुई है। दरअसल मैं रूप और वस्तु की द्वन्द्वात्मक एकता में विश्वास करती हूँ।

प्रश्न – कविता और गीत के अन्तर्सम्बन्ध के बारे में आपके विचार क्या है ? आपने गीत विधा ही क्यों चुनी ?

उत्तर – कविता कभी भी छंद मुक्त नहीं होती। केवल छंद के रूप बदल जाते हैं। मात्रिक और वर्णिक छन्दोबद्ध रचनाओं (कविताओं) में भी गद्यात्मकता होती है और गद्य में भी कविता के तत्त्व पाये जाते हैं। यह बात अलग है कि आजकल बन्धनमुक्त छंदों का कविता में इस्तेमाल का प्रचलन अधिक है। मैं मूलतः गीतकार हूँ। गीत मानव जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। जब तक जीवन है, जीवन में रागात्मकता है, गीत की प्रासंगिकता और उपयोगिता अक्षुण्ण है। यह श्रम शक्ति को संघटित और गतिशील करने तथा श्रम शक्ति के ह्रास से उत्पन्न तनाव और थकान को कम करने का सबसे कारगर हथियार है। गीत रचना मेरी रचनात्मक विवशता है। मैं अपने विचारों और भावों को गीत के माध्यम से व्यक्त करने में सहुलियत महसूस करती हूँ। हर रचनाकार अपनी सुविधा और अन्तर्निष्ठा के अनुसार ही अभिव्यक्ति का माध्यम (विधा) चुनता है। कोई भी विधा कमजोर नहीं होती और हर विधा की अपनी–अपनी सीमाएँ होती हैं। मगर महान रचनाकार विद्यागत सीमा का अतिक्रमण करता है और विद्या को विकसित करने में अपनी भूमिका निभाता है। विधा की सीमाओं को वह बेरहमी से तोड़ता भी है। गीत रचना में शब्दों की ध्वनि और ध्वनि के अनुगूंजात्मक प्रभाव का विशेष महत्व है।

प्रश्न – क्या विचारधारा के द्वन्द्व का महत्व आपकी दृष्टि में है ?

उत्तर – हर रचनाकार सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संघर्ष में ही विकसित होता है। हर समय प्रगतिशील और प्रतिगामी तथा जनवादी और जनविरोधी विचारधाराओं में तीव्र (हिंस्र) संघर्ष होता है। मैंने हमेशा अपने गीतों में विचारधारा के इसी द्वन्द्व और सामाजिक चेतना के अन्तर्विरोधों को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है। विभिन्न संघर्षशील इलाकों, तबकों और जन समुदायों में मेरे गीतों का इस्तेमाल किया जाना इसका सबूत है।

प्रश्न – गीत रचना के संबंध में आपकी अवधारणा क्या है ?

उत्तर – गीत रचना के अपने नियम होते हैं, अपना अनुशासन होता

है। गीत रचना में रूप और वस्तु की द्वन्द्वात्मक एकता अगर नहीं है तो वह कम से कम गीत नहीं है, कोई और चीज है। गीत रचना को लोकप्रिय और संवेदनात्मक बनाने के वास्ते संगीत, लोकधुनों, लोक मुहावरों और लोकशब्दावलियों का प्रयोग नितांत आवश्यक है। लेकिन इन सामग्रियों का व्यवहार सावधानीपूर्वक आन्तरिक जरूरत के तहत होना चाहिए। अन्यथा गीत के रूपवाद और सरलीकरण की गिरफ्त में आ जाने का खतरा हमेशा मौजूद रहता है। रचनाकार की जनजीवन में पैठ जितनी गहरी होगी रचना उतनी ही दुहरी और भाव प्रवण होगी तथा रचना के लिए कच्चे माल का भी प्राचुर्य होगा। जनजीवन से रचनाकार की दूरी वैचारिक रिक्तता का कारक होती है। ऐसी स्थिति में रचनाकार अपनी रिक्तता को ढँकने के लिए कला का अतिरिक्त सहारा लेता है। फलस्वरूप रचना रूपवाद के शिकंजे में फंसकर अमूर्तन का शिकार हो जाती है।

प्रश्न – क्या कविता और गीत एक दूसरे के पूरक हैं ?

उत्तर – गीत मनःस्थितियों का काव्य है और कविता परिस्थितियों का तथा गीत में शब्दों के ध्वन्यात्मक सौंदर्य और अनुगूंजात्मक प्रभाव का विशेष महत्व होता है। जबकि कविता में शब्दों के अर्थानुभवों, अर्थों की लय और अर्थ विश्लेषण की अपूर्व शक्ति अन्तर्निहित होती है। तात्पर्य है कि गीत और कविता परस्पर विरोधी नहीं प्रत्युत एक दूसरे की पूरक विधाएं हैं। जिस तरह अच्छी कविता के लिए गहरी भाव–प्रवणता, सघन अनुभूति, सहज काव्य भाषा और संप्रेषण में सहायक बिम्ब–प्रतीकों की उपस्थिति अविवार्य है उसी तरह अच्छे और कालजयी गीतों की रचना के लिए विचारधारात्मक तथा सौंदर्यात्मक होना निहायत जरूरी है। मौजूदा दौर के गीतों का वैचारिक आधार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और जनवादी विचारधारा है। मेरी रचनाओं में बिम्ब–प्रतीक विचारधारा की मांग यानी जरूरत के मुताबिक व्यवहृत होते हैं। जैसी वस्तु वैसा रूप।

प्रश्न – क्या आज जनसाधारण और गीत में संवादहीनता की स्थिति है ?

उत्तर – जनसाधारण और साहित्य (कविता या गीत) के बीच संवादहीनता है, यह एक बुर्जुआ प्रचार है। मैं अपने अनुभव से जानती हूँ कि कविता और गीतों का जन सामान्य के साथ संपर्क निरंतर बढ़

रहा है। हर जन पक्षधर रचनाकार का दायित्व यहीं दुहरा हो जाता है। उन्हें प्रथमतः अपनी रचना का स्तर जन स्वाद के स्तर के अनुरूप रखना होता है और धीरे–धीरे अपनी रचना का स्तर ऊपर उठाना होता है ताकि रचना के साथ–साथ जनता की मानसिकता का स्तरोन्नयन हो सके। रमेश रंजक, नचिकेता, अश्वघोष, गोरख पांडेय, महेन्द्र नेह, देवेन्द्र कुमार आर्य, महेश्वर, विजेन्द्र अनिल, रामकुमार कृषक आदि गीतकारों के व्यापक जनसमर्थन और जबान पर चढ़ जाने का यही राज है।

प्रश्न – नवगीत और जनवादी गीत का वैचारिक अन्तर क्या है ?

उत्तर – नवगीत रचना का मुख्य वैचारिक आधार आधुनिकतावाद और आलोचनात्मक यथार्थवाद है, जबकि समकालीन जनवादी गीत–रचना का वैचारिक आधार वैज्ञानिक समाजशास्त्रीय जीवन–दृष्टि और सर्वहारा विश्व दृष्टिकोण से लैस समाजवादी यथार्थवाद है। नवगीत मूलतः मध्यवर्गीय जनजीवन की निराशा और असमंजस का दस्तावेज है और जनवादी गीत संघर्षशील मेहनतकश अवाम की मुक्ति कामना का शंखनाद। नवगीत सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विसंगतियों और विघटन का एहसास भर है, मगर जनवादी गीत इनकी उत्पत्ति के कारणों की सुनिश्चित तलाश करता है और इनसे मुक्ति के उपाय ढूंढता है। वैचारिक अन्तर्वस्तु की इस भिन्नता के अनुरूप जनवादी गीतों के शिल्प, रूप, तेवर और भंगिमा में भी पारंपरिक गीतों से गुणत्मक अंतर है। नवगीत के अधिकांश क्रियापद नकारात्मक और विशेषण निषेधात्मक हैं जबकि जनवादी गीत के क्रियापद सकारात्मक और विशेषण ओजगुण को उद्भासित करने वाले होते हैं। नवगीत के विम्ब प्रतीक एक सीमा तक अमूर्तन के शिकार हैं और जनवादी गीत के विम्ब प्रतीक जाने–पहचाने और जनसंघर्ष के बीच के होते हैं।

प्रश्न – रचना में कल्पना की भूमिका क्या है ? क्या वह निरपेक्ष होती है ?

उत्तर – किसी भी कलाकृति में कल्पनाशक्ति का उपयोग सोद्देश्य और वस्तु–सत्य के सापेक्ष होता है। कल्पनाशीलता कभी निरपेक्ष नहीं होती। निरपेक्ष कल्पना किसी भी रचना या कृति को अमूर्तन और भाववाद की गर्त में ढकेल देने के लिए पर्याप्त होती है। कल्पना यथार्थ

को तराशने और उसमें सौंदर्य सृष्टि का उपकरण मात्र है। यथार्थ के निरीक्षण, तुलना और विश्लेषण के लिए रचना में कल्पना–शक्ति का प्रयोग अनिवार्य है।

प्रश्न – क्या आप मानती हैं कि गीत एक सक्षम विधा है ?

उत्तर – गीत रचना में अनुभूति के साथ–साथ विचारों और समस्याओं को अभिव्यक्त करने की भरपूर क्षमता है। यह क्षमता रचनाकार की प्रतिभा और जीवन की गहरी पकड़ पर निर्भर करती है। निराला के गीत इसके प्रमाण हैं। आज के युगीन भावबोध को व्यक्त करने में यह पूरी तरह सक्षम विधा है। मौजूदा दौर के एक विशेष कालखण्ड के संपूर्ण ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक और सांस्कृतिक संघर्षों से प्राप्त अनुभवों और आज के लहूलुहान यथार्थ को एक ही गीत–रचना 'बाइस्कोप का गीत' में उजागर करके सार्थक और सफल प्रयोग पिछले दिनों नचिकेता ने किया है। मुझे विश्वास है कि गीत की क्षमता को संदेह की निगाह से देखने वाले लोगों को इसके द्वारा करारा जवाब मिलेगा। उनके अलावा उपरोक्त तमाम गीतकारों ने आजके युग–बोध को अपने–अपने ढंग से अपनी रचनाओं में उकेरने का कामयाब यत्न किया है।

प्रश्न – लोकगीत के संदर्भ में आपके क्या विचार हैं ?

उत्तर – कोई भी गीत–रचना कालान्तर में लोकगीत की पंक्ति में शरीक हो सकती है। रचना के समय गीत केवल गीत होता है। गीत जब जनता की जबान पर चढ़ जाता है, रचनाकार की निजता सामूहिकता में तिरोहित हो जाती है, लेखकीय अनुभूति बहुसंख्यक जनता की अनुभूति और संस्कार में तब्दील हो जाती है, तब वह लोकगीत में शुमार होने लगता है। शिल्पगत स्खलन किसी भी रचना के लिए खतरनाक है। सुघड़ शिल्प में ढले गीत ही सार्थक और मुकम्मल होते हैं। लोकगीत भी वृहत्तर सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों से जुड़े होते हैं। वास्तव में ऐसे लोकगीत परिमाण की दृष्टि से कम हैं। दरअसल हमारे पर्व–त्योहार, शादी–ब्याह, कर्मकाण्ड आदि के अवसर पर गाए जाने वाले अधिकांश लोकगीत सामन्तवादी और पूंजीवादी समाज व्यवस्था की उपज हैं। इसलिए इनमें प्रतिक्रियावाद और प्रतिगामिता के तत्व अक्सर पाये जाते हैं। इसी अभाव की पूर्ति की खातिर आजकल लोकगीतों के

पुनर्संस्कार की जरूरत शिद्दत के साथ महसूस की जा रही है। कई गीतकार इस दिशा में निष्ठा और इमानदारी के साथ कार्यरत हैं और एक सीमा तक अपने उद्देश्य में सफल भी हो रहे हैं।

प्रश्न – लोकगीत और साहित्यिक गीतों का अन्तर बतायें।

उत्तर – लोकगीत और गाली गीत अथवा लोकभाषा में रचित बाजारू व फुटपाथी गीतों में जमीन–आसमान का फर्क है। लोकगीत में अश्लीलता का कोई स्थान नहीं है। अगर अश्लीलता का मतलब रोमानी संवेदना से है तो पहले श्लील–अश्लील की पुनर्व्याख्या करनी होगी। गीत–रचना के लिए रागात्मकता और रोमांटिकता की अनिवार्यता है। लोकगीत और साहित्यिक गीत में बहुत बड़ी विभाजक रेखा नहीं है। कई लोकगीत तो शिल्प व संदेवना की दृष्टि से इतने परिपूर्ण होते हैं कि उनके आगे साहित्यिक गीत पासंग में भी नहीं ठहरते। मैं एक बार और दुहरा दूँ कि कालान्तर में कोई भी गीत–रचना अपनी निजता खोकर और बहुसंख्यक जनता का संस्कार बनकर लोकगीत की संज्ञा से अभिहित हो सकती है। इसलिए अश्लीलता हर हालत में गीत–रचना के लिए वर्जित प्रदेश है। गीतों की लोकप्रियता का प्रमुख कारण संवेदनात्मकता, अनुगूंजात्मकता और संवाद शैली का बाहुल्य है न कि अश्लीलता का समावेश।

प्रश्न – क्या आज लोकगीत लिखे जा रहे हैं ?

उत्तर – चूंकि लोकगीतों की पहली शर्त्त लेखकीय निजबद्धता के उन्मूलन और सामूहिकीकरण की प्रक्रिया है, इसलिए लोकगीत का रचनाकार प्रायः गौण हो जाता है। ऐसा लेखकों की उपेक्षा की वजह से नहीं होता है, स्वाभाविक रूप से होता है। अगर आपका संकेत लोकभाषा में लोकधुनों के आधार पर गीत रचना से सरोकार रखने वाले रचनाकारों की ओर है तो रमेश रंजक, गोरख पांडेय, महेश्वर और विजेन्द्र अनिल का नामोल्लेख मैं जरूर करना चाहूंगी जिन्होंने अपनी क्षेत्रीय लोकभाषाओं में काफी अच्छे गीत लिखे हैं और उनके अधिकांश गीत जनता की जुबान पर चढ़कर उनके संस्कार का हिस्सा बनते जा रहे हैं। लेकिन ये गीत अभी लोकगीत नहीं बने हैं।

प्रश्न – हिन्दी गजल के बारे में आपके अभिमत क्या हैं ?

उत्तर – निस्संदेह गजल उर्दू की साहित्यिक विधा है। उर्दू साहित्य

में गजल सर्वाधिक प्राचीन लोकप्रिय और सार्थक विधा है। यह सच है कि पाकिस्तानी और हिन्दुस्तानी गायकों ने गजल को लोकप्रिय बनाने में मदद की है। मगर एक बात ध्यान देने की है कि गायक प्रायः रोमानी और आध्यात्मिक गजलों का गायन के लिये चुनाव करते हैं। यह अकारण नहीं है। दरअसल ये गायक प्रायः पेटी बुर्जुआ संस्कार से लैस हैं। हिन्दी गजल अपने प्रारंभ से ही सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विसंगतियों को उजागर करने लगी है। वह हुस्न, इश्क के खुशनुमा प्राचीर से निकलकर खेत–खलिहान होते आम आदमी के जीवन संघर्ष में शामिल हो गई है।

स्वाभाविक है कि निम्न पूंजीवादी मनोवृत्ति वाले गजल गायकों को इनमें रस नहीं मिलता। मगर वक्त आ रहा है, जब प्रगतिशील और क्रांतिकारी गजलों की ध्वनि से गली–कूचे गूंजेंगे। वह दिन ज्यादा दूर नहीं है।

(22 मार्च, 1992 के 'राँची एक्सप्रेस' में प्रकाशित)

■

गीत : अपनी संवेदनाओं को व्यक्त करने की सहजता

❑ अमित प्रभाकर

डॉ0 शान्ति सुमन समकालीन हिन्दी गीतों के संसार का एक सुपरिचित नाम है। नवगीत और जनवादी गीत के बड़े रचनाकारों में एक डॉ0 शान्ति सुमन का स्थान अपनी विधा की गीत कवयित्रियों में सर्वोच्च है। कवि–सम्मेलनों के माध्यम से लगातार चौंतीस वर्षों तक काव्य–मंच पर धूम मचाने वाली सुकंठ गीतकार शान्ति सुमन पूरे देश में अपनी पहचान बना चुकी हैं। इनका पहला नवगीत संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' सन् 1970 में प्रकाशित हुआ जबकि दूसरा नवगीत संग्रह 'परछाईं टूटती' 1978 में छपा। इनके 'सुलगते पसीने' 1979, 'पसीने के रिश्ते' 1980, 'मौसम हुआ कबीर' 1985, 'मेघ इन्द्रनील' (मैथिली गीत–संग्रह) 1991, 'तप रहे कचनार' 1997, 'भीतर–भीतर आग' 2002, 'पंख–पंख आसमान' (एक सौ एक चुने गीतों का संग्रह) 2004, 'एक सूर्य रोटी पर' 2006, 'धूप रंगे दिन' 2007, 'नागकेसर हवा' 2011 आदि गीत–संग्रह प्रकाशित हुए। इन्होंने 'सूखती नहीं वह नदी' नाम से मुक्तछंद की कविताओं का संग्रह भी प्रकाशित किया है। इनका एक उपन्यास 'जल झुका हिरन' प्रकाशित है। इनकी आलोचना की पुस्तक 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य' भी प्रकाशित है। शान्ति सुमन ने नवगीत पत्रिका 'अन्यथा' तथा जनवादी पत्रिका 'बीज' का सम्पादन किया है। इनके नाम दर्जन भर साहित्यिक सम्मान और पुरस्कार हैं। डॉ0 शिवकुमार मिश्र ने शान्ति सुमन के गीतों को मानवीय चिन्ता के एकात्म से उपजे गीत माना है। डॉ0 मैनेजर पाण्डेय ने माना है कि शान्ति सुमन के गीतों का महत्व उनके विशिष्ट रचाव में है। लगता है कि लोकगीत की आत्मा नई देह पा गई है। उमाकान्त मालवीय ने शान्ति सुमन को नवगीत की एकमात्र कवयित्री माना। डॉ0 सुरेश गौतम ने कहा कि शान्ति सुमन का नाम लिये बिना नवगीत का इतिहास अधूरा है। ओम प्रभाकर ने इनके नवगीतों में अछूता प्रस्तुत करने की तड़प देखी है। डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद ने इनके नवगीतों को समकालीन जिन्दगी के संवेदनशील क्षणों के दस्तावेज कहा है। मदन कश्यप के शब्दों में शान्ति सुमन हमारे समय के दुर्लभ गीतकारों में हैं। इस प्रकार कुमार रवीन्द्र, सत्यनारायण, देवेन्द्र

कुमार, डॉ0 रेवतीरमण आदि ने भी शान्ति सुमन को गीत के फलक पर उनके आविर्भाव को एक घटना माना है। साहित्यिक संस्था 'सर्जना' में सम्पन्न काव्य–आयोजन के अवसर पर शान्ति सुमन की गीत–धारा के माध्यम से आधुनिक हिन्दी गीत जगत के विभिन्न संवेदनात्मक एवं वैचारिक पड़ावों की पड़ताल के लिए अमित प्रभाकर ने यह साक्षात्कार समायोजित किया है। पाठकों के लिए प्रश्न और उत्तर प्रस्तुत हैं –

प्रश्न – अपने गीत–सृजन के बारे में और अपनी गीत–यात्रा के बारे में भी कहें।

उत्तर – माध्यमिक शिक्षा के समय मैंने गीत लिखना शुरू किया था। किन्तु उसका गुणात्मक विकास '60 से हुआ। मेरे गीत नवगीत के दौर की रचना हैं। अपने पूर्व के गीतों की अपेक्षा नवगीत में संवेदनाओं की सघनता के साथ मानवीयता का विस्तार भी है। आत्माभिषेक के कारण नवगीत नयी अनुभूतियों के गीत हैं। नवगीत को मैंने काव्याभिव्यक्ति के लिये अनिवार्य विधा के रूप में स्वीकार किया। 'सुलगते पसीने' से मेरे गीतों की दिशा बदलती है और उनमें विकास का नया मोड़ दिखने लगता है। मेरी दृष्टि में किसी भी कला–संस्कृति का मूलाधार अर्थ–व्यवस्था होती है। मूलाधार में परिलक्षित होने वाले बदलाव का प्रतिबिम्ब कमोवेश कला–संस्कृति में अवश्य होता है। इसलिये मेरी रचनाओं में भी इन बदलावों का कालानुसार प्रक्षेपण हुआ है। यह प्रक्रिया बदलते हुए समय के साथ अधिक संवेदनशील और सहज होती गयी है। इसलिये मेरे नवगीत में व्यवस्था की सतह पर हो रहे बदलाव भी शामिल हुए। संघर्षरत श्रमजीवी जन के दैनंदिन सुख–दुख, आशा–आकांक्षा के साथ व्यवस्था से उनके प्रतिरोध भी गीत के कथ्य बने।

प्रश्न – कविता और गीत के अन्तर्सम्बन्ध के बारे में आपके विचार क्या हैं ?

उत्तर – नयी कविता छन्द को स्वीकार नहीं करती, परन्तु वह छन्दमुक्त नहीं होती। छन्द के रूप बदल जाते हैं। जिस अर्थ–लय की बात कविता करती है, वह भी गीत की ही सम्पदा है। वैसे विस्तार से देखें तो मात्रिक और वर्णिक रचनाओं में भी कविता (गीत) होती है और गद्य में भी। कविता में गीत के तत्त्व पाये जाते हैं। जिन दिनों कविता लिखी जा रही थी, उसके पड़ोस में गीत की रचना भी पूरी त्वरा से हो

रही थी। कोई ऐसी कविता नहीं होती जिसमें गीत का समभाग नहीं हो और कभी–कभी गीत में भी कविता की संभावना बनी रहती है।

प्रश्न – आपने गीत विधा ही क्यों चुनी ?

उत्तर – कथ्य और शिल्प की जिस ताजगी और नयापन पर मेरी दृष्टि गई, वह नवगीत का ही दौर था। जीवन से जिस आसक्ति की अभिव्यक्ति नवगीत में हुई, उससे ही समाज के पुराने मूल्यों से लड़ने की चुनौती आई। अपनी संवेदनाओं को व्यक्त करने की सहजता मुझको गीत में ही मिली। यद्यपि गीत रचना सरल नहीं है, फिर भी मेरे कथ्य, अनुभवों और विचारों–संवेदनाओं को गीत का फार्म ही अनुकूल लगा। इसलिए मैं मूलतः गीतकार हूँ। गीत मानव समाज की अनिवार्य आवश्यकता है। जब तक जीवन है, जीवन में रागात्मकता है, गीत की प्रासंगिकता बनी रहेगी। यह मानसिक द्वन्द्वों, तनावों और श्रम–शक्ति के ह्रास से उत्पन्न थकानों को कम करने का सबसे सशक्त माध्यम है। गीत–रचना मेरी रचनात्मक विवशता है। मैं अपने भावों और विचारों को व्यक्त करने के लिये मित्र विधा के रूप में गीत को ही देखती हूँ। विधा कोई भी कमजोर नहीं होती। हर विधा की अपनी सीमायें भी होती हैं। महान रचनाकार विधागत सीमा का अतिक्रमण करता है और विधा को विकसित करने में अपनी भूमिका निभाता है।

प्रश्न – आपने गीत विधा पर केन्द्रित एक पत्रिका 'अन्यथा' निकाली थी। उसे अकाल ही क्यों स्थगित कर दिया ?

उत्तर – हाँ, मैंने नवगीत पर केन्द्रित एक पत्रिका 'अन्यथा' नाम से निकाली थी। उसको अकाल स्थगित करने के पीछे के कारण बड़े नहीं थे। वह एक अनियतकालीन पत्रिका थी। उसके निकलने की संभावना अस्त नहीं हुई है। उसके पहले मैंने 1963–'64 में 'सर्जना' नाम से भी एक पत्रिका सम्पादित की थी। मित्रों के अंतर्विरोधों के कारण वह आगे नहीं निकल पाई। दो–तीन अंक उसके आये थे। 'अन्यथा' उसकी जगह पर ही आई थी। उन दिनों मैं अपने शोधकार्य में व्यस्त थी। 'अन्यथा' का पहला अंक नवगीत पर शोध करने वालों के लिए आज भी महत्वपूर्ण है।

प्रश्न – गीत रचना के संबंध में आपकी अवधारणा क्या है ?

उत्तर – गीत एक कठिन रचना कर्म है। उसकी रचना–प्रक्रिया

अत्यंत जटिल होती है। गीत का अपना रचनात्मक अनुशासन होता है। गीत–रचना में वस्तु और रूप की द्वन्द्वात्मक एकता अगर नहीं है तो वह गीत नहीं है। गीत–रचना को लोकप्रिय और संवेदनात्मक बनाने के लिये संगीत के साथ लय और लोकधुनों, लोक मुहावरों और लोक शब्दावलियों का प्रयोग आवश्यक है। इनके प्रयोग में सावधानी की जरूरत है, अन्यथा गीत में रूपवाद और सरलीकरण के आने की गुंजाइश बनी रहती है। गीतकार की जन–जीवन में पैठ जितनी गहरी होगी, रचना उतनी ही दुहरी और भावप्रवण होगी। इससे रचना के लिये कच्चे माल का प्राचुर्य बना रहता है। जन–जीवन से रचनाकार की दूरी वैचारिक रिक्तता का कारक होती है। ऐसी स्थिति में गीतकार अपनी रिक्तता को ढँकने के लिए कला का अतिरिक्त सहारा लेता है। फलतः गीत रूपवाद में फँसकर अमूर्त्तन से ग्रस्त हो जाती है।

प्रश्न – क्या कविता और गीत एक दूसरे के पूरक हैं ?

उत्तर – पहले गीत के पड़ोस में कविता होती थी। अब पड़ोस बदल जाया करता है। फिर भी गीत मनःस्थितियों की रचना है और कविता परिस्थितियों की। गीत में शब्दों के ध्वन्यात्मक सौन्दर्य और अनुगूँजात्मक प्रभाव का विशेष महत्व होता है। कविता में शब्दों के अर्थानुभवों, अर्थों की लय, अर्थ–विश्लेषण की अपूर्व शक्ति अन्तर्निहित होती है। अर्थात् गीत और कविता परस्पर विरोधी नहीं, प्रत्युत एक दूसरे के समान्तर स्वतंत्र विधायें हैं। उनके आपस में पूरक बनने की संभावना भी बनी रहती है। जिस तरह अच्छी कविता के लिए गहरी भाव–प्रवणता, सघन अनुभूति, सहज काव्य–भाषा और सम्प्रेषण में सहायक बिम्ब–प्रतीकों की उपस्थिति अनिवार्य है उसी तरह अच्छे और कालजयी गीतों की रचना के लिये विचारधारात्मक और सौन्दर्यात्मक होना अति आवश्यक है। समकाल के गीतों का वैचारिक आधार जनवादी विचारधारा है। गीतों में बिम्ब–प्रतीक कथ्य के अनुरूप होते हैं।

प्रश्न – क्या आज गीत और जनसाधारण में संवादहीनता की स्थिति है ?

उत्तर – जिस जन साधारण के सुख–दुख, आशा–आकांक्षा और पूरे जीवन–संघर्ष पर गीत आधारित होता है, उसमें और जनसाधारण में संवादहीनता की स्थिति हो ही नहीं सकती। मैं अपने अनुभवों से जानती

हूँ कि आज गीतों से जनसाधारण का संपर्क निरन्तर बढ़ रहा है। गीतकारों को अपनी रचना (गीत) का स्तर जनता के स्तर के अनुरूप रखना होता है और धीरे–धीरे अपनी रचना का स्तर ऊपर उठाना होता है। ताकि गीत के अनुरूप जनता की मानसिकता का उन्नयन हो।

प्रश्न – क्या विचारधारा के द्वन्द्व का महत्व आपकी दृष्टि में है ?

उत्तर – हर रचनाकार सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संघर्ष में ही विकसित होता है। प्रगतिशील और प्रतिगामी तथा जनपक्ष और प्रतिपक्ष की विचारधाराओं में तीव्र संघर्ष होता है। मैंने अपने गीतों में इसी द्वन्द्व और सामाजिक चेतना के अन्तर्विरोधों को अभिव्यक्त किया है।

प्रश्न – गीत में कल्पना की भूमिका क्या है ? क्या वह निरपेक्ष होती है ?

उत्तर – गीत में ही नहीं, किसी भी कलाकृति में कल्पना का उपयोग सोद्देश्य और वस्तु–सत्य के सापेक्ष होता है। कल्पनाशीलता कभी निरपेक्ष नहीं हो सकती। निपरेक्ष कल्पना किसी भी रचना को अमूर्त बनाती है। कल्पना यथार्थ को तराशने और उसमें सौन्दर्य भरने का काम करती है। यथार्थ के निरीक्षण, विश्लेषण और तुलना के लिये रचना (गीत) में कल्पना शक्ति का प्रयोग अनिवार्य है। कल्पना ही वह शक्ति है जिससे समकाल के रचनाकारों की स्तरीयता का निर्णय होता है। रचना में विशिष्ट रचाव की दृष्टि भी होती है।

प्रश्न – लोकगीत के संदर्भ में आपके क्या विचार है ?

उत्तर – कोई भी गीत कालान्तर में लोकगीत की पंक्ति में शामिल हो सकता है। रचना के समय गीत केवल गीत होता है। गीत जब जनता की जुबान पर चढ़ जाता है, गीतकार की निजता सामूहिकता में तिरोहित हो जाती है, गीतकार की अनुभूति बहुसंख्यक जनता की अनुभूति और संस्कार में बदल जाती है तब वह लोकगीत बन जाता है। जनगीत की तरह लोकगीत भी वृहत्तर सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों से जुड़े होते हैं। हमारे पर्व–त्योहार, शादी–ब्याह आदि के अवसर पर गाये जाने वाले अधिकांश लोकगीत सामन्तवादी और पूंजीवादी समाज व्यवस्था की उपज हैं। इसलिये इनमें प्रतिक्रियावाद और प्रतिगामिता

के तत्त्व अक्सर पाये जाते हैं। इसीलिये आजकल लोकगीतों के पुनर्संस्कार की जरूरत महसूस की जाती है।

प्रश्न – लोकगीत और साहित्यिक गीतों का अन्तर बतायें ?

उत्तर – यदि लोकगीत से आपका तात्पर्य विवाह आदि के अवसर पर गाये जाने वाले मनोरंजनार्थ गाली गीत से है अथवा लोकभाषा में रचित बाजार और फुटपाथी गीतों से है तो उसकी बात मैं नहीं करती। वैसे लोकगीतों से उनका जमीन–आसमान का अन्तर है। अश्लीलता का कोई स्थान लोकगीत में नहीं होता। गीत–रचना में रागात्मकता और रोमांटिकता को देखते हुए लोकगीत और साहित्यिक गीत में कोई बड़ी विभाजक रेखा नहीं है। कई लोकगीत शिल्प और संवेदना की दृष्टि से साहित्यिक गीतों से मिलते–जुलते हैं। कालान्तर में कोई गीत अपनी निजता खोकर और बहुसंख्यक जनता का संस्कार बनकर लोकगीत की संज्ञा से अभिहित हो जाते हैं। अश्लीलता से गीत का कोई संबंध नहीं होता। गीतों की लोकप्रियता का प्रमुख कारक संवेदना और ध्वन्यात्मक अनुगूँजात्मकता और संवाद शैली की उपस्थिति है।

प्रश्न – क्या आज लोकगीत लिखे जा रहे हैं ?

उत्तर – क्षेत्रीय लोकभाषाओं में काफी अच्छे गीत लिखे गये हैं और आज भी लिखे जा रहे हैं। अधिकांश गीत जनता की जुबान पर चढ़कर उनके जीवन और संस्कार का हिस्सा बनते जा रहे हैं। लेकिन ये गीत अभी लोकगीत नहीं बने हैं।

प्रश्न – नवगीत और जनवादी गीत का वैचारिक अन्तर क्या है ?

उत्तर – दोनों के वैचारिक अन्तर को हम दोनों प्रकार के गीतों में व्यक्त बिम्बों की प्रकृति से जान सकते हैं। नवगीत में मध्यवर्गीय सामाजिकता व्यक्त हुई है। उस समाज को व्यापक धरातल मिला है। वह समकालीन जीवन–यथार्थ का संवेदनशील दस्तावेज है। जनवादी गीत में जनपक्षधर रचनात्मक भागीदारी मिलती है। समकालीन जनवादी गीत रचना का वैचारिक आधार वैज्ञानिक समाजशास्त्रीय जीवन–दृष्टि और सर्वहारा विश्व–दृष्टि से लैस समाजवादी यथार्थवाद है। जनवादी गीत में संघर्षशील श्रमरत जन की मुक्ति–कामना भी है। नवगीत में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक–सांस्कृतिक विसंगतियों और विघटन की विस्तृत अभिव्यक्ति मिलती है। जनवादी गीत इन विसंगितयों के

कारणों तथा इनसे मुक्ति के रास्तों की तलाश करता है ?

प्रश्न – राजनीति से आप गीत का कैसा संबंध स्वीकार करती हैं ?

उत्तर – राजनीति से गीत का संबंध ऐसा है कि राजनीति जिस समाज व्यवस्था को अस्त–व्यस्त करती है, व्यवस्था की उसी पीठ पर चढ़कर गीत समय और समाज को गढ़ता है। वह व्यवस्था का प्रवक्ता नहीं, उसका आलोचक है। कोई भी साहित्य जब राजनीति के पीछे चला है, उसका नुकसान हुआ है। गीत संरचना, शिष्टाचार और प्रतिबद्धता की भाषा है। राजनीति को उससे सीखना चाहिये। राजनीति तोड़ती है, गीत जोड़ने में विश्वास करता है। राजनीति आज विनम्र नहीं है जबकि गीत का मनुष्यता से संबंध लगातार प्रगाढ़ हुआ है। राजनीति के जोड़–तोड़ के विपरीत गीत ने हमेशा समय, समाज और संस्कृति को रचने का काम किया है।

प्रश्न – साहित्य की एक कुशल और लोकप्रिय प्रोफेसर के रूप में नौकरी करते हुए, घर परिवार के विभिन्न आसंगों को जीते–झेलते हुए सृजन की बेचैनी में अपेक्षित एकांत की तलाश के बीच कुछ मुश्किलें भी आती होंगी। बहुत वैयक्तिक न लगे तो अपने इस अहसास को भी बाँटें ?

उत्तर – कुछ भी वैयक्तिक नहीं है। संवेदनायें और विचार शब्दों में ढलकर लोकार्पित हो जाते हैं। विचार और अनुभूतियों के शब्दों में ढलने की प्रक्रिया सरल नहीं है। आगे आने वाला समय सुविधा लेकर आएगा – यही सोचती हुई यहाँ तक आ गई। बढ़ती उम्र के साथ समस्यायें भी आती रहीं। खुशियों ने बहुत कुछ जोड़ा, दुख ने उसके कुछ पन्ने उड़ा दिये। निजी परिवार बड़ा नहीं है। पुत्र अरविन्द और पुत्री चेतना का भी छोटा–छोटा परिवार है। शालीना, ईशान, अपूर्व और श्रेयसी मेरी खुशियों के दस्तावेज हैं। विशाखा और चेतना इन खुशियों को बाँटने वाली प्रमाण पत्र हैं। अपने एकांत का बहुत सारा हिस्सा उनको देती हूँ। कठिन तो रहा घर के काम–काज करते हुए, नौकरी में अपनी छवि बनाते हुए, घर–बाहर के दायित्वों को वहन करते हुए सृजन के लिए एकांत तलाशना। मैं तो कहूँगी कि आज भी स्त्रियों का लेखन–कर्म पुरुषों की भाँति स्वच्छन्द नहीं हो सका है। अस्तु, जब मन के पटल पर भावनायें

और विचार संगुम्फित होकर आकार ग्रहण करने लगते हैं तो एक बेचैनी सी होती है। वह बेचैनी चौका में रहें या कॉलेज में, रास्ते में या कवि–गोष्ठी में अपेक्षित एकांत तलाश ही लेती है और फिर संभव होती है रचना। रचना का जन्म इसी तरह होता है 'मेरे घर में'। गीत इन्हीं संघर्षों के बीच रच जाते हैं।

('संकल्प रथ' मई, 2011 में प्रकाशित)

■

गीत पर शान्ति सुमन के वैचारिक आलेख

नवगीत : समकालीन गीत की सशक्त परिणति

❑ डॉ० शान्ति सुमन

प्रारम्भ में ही गीत और कविता को पढ़ते हुए सहज ही समझ में आ गया था कि गीत–रचना कविता–लेखन की तरह आसान नहीं है और प्रत्येक कवि गीतकार नहीं हो सकता। गीतकार मुक्त छंद की कविता लिखता भी है। गीत के प्रति कोमल संदेवना और अन्य सामाजिक लगावों की तरह गीत से ही लगाव की बात समझ में आने लगी थी। मेरी कविता–यात्रा विशेषकर गीत–यात्रा की शुरूआत बचपन में ही हुई। 1960 के बाद उसको स्तरीय और स्थायी संयोग मिला।

तत्कालीन सामाजिक–आर्थिक और साहित्यिक परिस्थितियों के दबाव ने जिस गीत–चेतना को जन्म दिया उसको ही नवगीत की संज्ञा से अभिहित किया गया। किसी ने उसको आंदोलन की संज्ञा दी, किसी ने उसको स्वतःस्फूर्ति विधा के रूप में जाना। मैंने नवगीत को गीत की विकास–यात्रा की अनिवार्य परिणति के रूप में स्वीकार किया। इसके संबंध में मैंने अपने द्वारा संपादित नवगीत के प्रतिबद्ध पत्रिका 'अन्यथा' के संपादकीय तथा उसमें प्रकाशित एक आलेख में लिखा था तथा 'धर्मयुग' में डॉ0 कुंवर द्वारा आयोजित परिचर्चा गोष्ठी के अंतर्गत शंभुनाथ सिंह, उमाकान्त मालवीय, ओम प्रभाकर, माहेश्वर तिवारी, बुद्धिनाथ मिश्र और मेरे नवगीत–संबंधी अभिमतों में भी इसके संबंध में विचार स्पष्ट हुए थे।

मैं मानती हूँ कि किसी भी कला–संस्कृति का मूलाधार सामाजिक व्यवस्था होती है। इसलिए स्पष्टतः मूलाधार में परिलक्षित होने वाले परिवर्तनों का प्रतिबिम्ब कमोवेश कला–संस्कृति में अवश्य होता है। निराला की 'वह तोड़ती पत्थर', 'जुही की कली' जैसी रचनायें हों या उमाकांत मालवीय, रमेश रंजक, नचिकेता, माहेश्वर तिवारी या नरेश सक्सेना, बुद्धिनाथ मिश्र आदि के गीत, सब में स्पष्टतः यह देखा जा सकता है। मेरे गीत भी इसी कोटि में आते हैं। पहले सबके मन में समाज के प्रति एक भावुक दृष्टि होती है। मैंने भी समाज–व्यवस्था में आनेवाले परिवर्तनों को देखा, सामाजिक यथार्थ के साथ गीतों की

संवेदना को जोड़ा तो मैंने देखा कि तपते हुए कचनारों की पांत में जीवन के अच्छे–भले दिन भी तपने लगे हैं। नवगीत में सामाजिक संदेवना यहीं से आई। मेरी रचनाओं में भी समाज–व्यवस्था में आने वाले परिवर्तनों का कालानुसार प्रक्षेपण हुआ है। संवेदनात्मक अन्तर्वस्तु में आने वाले परिवर्तन के समानान्तर मेरे गीतों में भी बदलाव आये हैं। यह प्रक्रिया सायास नहीं है। दरअसल रूप में और वस्तु की द्वंद्वात्मक एकता में पहले भी विश्वास करती थी, आज भी करती हूँ।

बहुत सारी पत्र–पत्रिकाओं में आयोजित साक्षात्कारों में यह प्रश्न पूछा जाता रहा है कि मैं गीत क्यों लिखती हूँ ? मैंने स्पष्ट किया भी है और आज भी मानती हूँ कि मैंने गीतों के साथ कहानी, नाटक और समीक्षायें भी लिखीं। मैंने कवितायें भी लिखी हैं, पर प्रकाशन जगत में एक बार किसी चीज के लिए नाम रूढ़ हो गए तो फिर कठिनाई होती है। इसलिए मेरा मन और मेरे विचार अधिकांशतः गीत में ही ढले और उस विधा में ही व्यक्त होते रहे। किसी आग्रह के तौर पर नहीं, सहजता से मानती रही हूँ कि कविता छन्द–बद्ध होकर जनता के अधिक समीप होती है, उसके मन–प्राणों पर छायी रहती है। उसके जीवन को आन्दोलित और संजीवित करती है। कविता छन्द मुक्त नहीं होती। गद्य में भी एक प्रकार का छन्द होता है। छन्द में ढलने के कारण ही कबीर और तुलसी आज भी जनता के प्रिय कवि हैं।

सन् '60 से '75 तक नवगीत पूरी तन्मयता से लिखा जाता रहा। रमेश रंजक का पहला नवगीत संग्रह 'गीत विहग उतरा' सन् '69 में प्रकाशित हो गया था। मेरा नवगीत–संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' 1970 में आया। नचिकेता का 'आमदकद खबरें' 1972 में प्रकाशित हुआ। उमाकांत मालवीय का नवगीत संग्रह 'मेंहदी और महावर' 1963 ई0 में ही आ गया था। इस प्रकार नवगीत की जमीन पक कर तैयार हो गई थी और कोई भी नया रचनाकार उन दिनों नवगीत ही लिखता था, लिखना चाहता था क्योंकि वह एक ऐसा समय था जब गीतकार के रूप में नवगीत लिखना समय की संवेदना से जुड़ना था। नवगीत विधा में इतना आकर्षण था कि कितने ही कविता–लेखक गीतकार बन गये थे। जिस तरह धूप मुट्ठी की पकड़ में नहीं आती, उसी तरह गीत की संवेदना भी सबकी पकड़ में नहीं आती। गीति–तत्व एक ऐसी संवेदना है जो जहाँ भी होती है, अपनी कोमलता की पहचान छोड़ती है। वह गद्य में भी पहचानी जा

सकती है। चाह कर कोई उसको पकड़ भी नहीं सकता। मैं फलतः गीतकार हूँ। मैं मानती हूँ कि गीत मानव जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है जब तक जीवन है, जीवन में रागात्मकता है, गीत की प्रासंगिकता और उपयोगिता अक्षुण्ण है। लौकिक जीवन में भी ऐसा कोई सामाजिक कार्य नहीं है जिसमें गीत की सहयोगी भूमिका नहीं हो। यह श्रम–शक्ति को संघटित और गतिशील करने तथा श्रमशक्ति के ह्रास से उत्पन्न तनाव और थकान को कम करने का सबसे कारगर हथियार है। गीत–रचना मेरी रचनात्मक विवशता है। मैं अपने भावों और विचारों को गीत के माध्यम से व्यक्त करने में सुविधा महसूस करती हूँ। हर रचनाकार अपनी सुविधा और अन्तर्निष्ठा के अनुसार ही अभिव्यक्ति का माध्यम (विधा) चुनता है। जो लोग गीत के विरोधी हैं, वे गीत की कटु आलोचना करते हैं। वे क्योंकि गीत नहीं लिख सकते, इसलिए गीत को कमजोर विधा मानते हैं। कोई भी विधा कमजोर नहीं होती और हर विधा की अपनी–अपनी सीमायें होती हैं, किन्तु महान रचनाकार विधागत सीमा का अतिक्रमण करता है और विधा को विकसित करने में अपनी भूमिका निभाता है। वह विधाओं की सीमा को बेरहमी से तोड़ता है। नवगीतकार ने शब्दों की ध्वनि और ध्वनि के अनुगूंजात्मक प्रभाव पर विशेष रूप से ध्यान दिया है।

हर रचनाकार, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संघर्ष में ही विकसित होता है। नवगीतकारों को ये संघर्ष कम नहीं झेलने पड़े। मुझको तो मेरे इन संघर्षों ने ही रचा है। क्योंकि तब मेरे दिन बड़े कठिन थे। मुझको पढ़ना भी था – कैरियर की चिन्ता थी, परिवार देखना था और गीत की रचना भी करनी थी। मुझको बहुत कम सुविधायें प्राप्त थीं और मुझको इन्हीं में सब कुछ करना था। तब नवगीतकारों के दायित्व भी बड़े थे। गीत को नयी दृष्टि से देखना, सोचना और लिखना सचमुच गुरूतर कार्य था। नवगीतकारों ने सबसे अधिक ध्यान अछूते बिम्बों को जुटाने में दिया। उपमा, रूपक की ताजगी और भाषा की सादगी के कारण भी नवगीत अपने पूर्ववर्ती गीतों से अलग दिखते थे। नवगीतकार के भाषागत प्रयोग जितने पैने हैं उतने ही सम्मोहक भी।

नवगीत में यदि तनाव, कुण्डा, पीड़ा, पराजय और रंगीन सपने अधिक हैं तो इनके लिए तत्कालीन, आर्थिक–सामाजिक व्यवस्था ही

जिम्मेदार है। पढ़े–लिखे युवकों का बेकार होना, गांव की कृषि व्यवस्था की बदहाली तथा अनिश्चित भविष्य के कारण युवकों में जो एक प्रकार की बेचैनी, त्रास और घुटन की मानसिकता बन गयी थी, नवगीतकार को निकट से इसका अहसास था, क्योंकि अधिकांश नवगीतकार मध्यवर्ग से आये थे और मध्यवर्गीय त्रासदी से पीड़ित भी थे। यह कहना एकांगी होगा कि नवगीत में केवल मध्यवर्गीय पीड़ा को ही अभिव्यक्ति मिली है। बेकारी के मनस्ताप को झेलते हुए युवकों में केवल मध्यवर्ग के ही युवा नहीं थे, अपितु गांव या छोटे शहरों के युवा भी थे जो पेट की खातिर गांव छोड़कर महानगर की ओर पलायन कर रहे थे। छोटे शहरों के वे साधन और पूंजीहीन युवा भी थे जो दिल्ली, असम, पंजाब आदि में अपना भविष्य तलाश रहे थे। अभाव मनुष्य को कभी--कभी स्वप्नजीवी बना देता है। नवगीत का स्वप्न–लोक इन अभावों की ही देन है। सपनों के बारे में नवगीत में जितना कहा गया, छायावाद को छोड़कर और किसी काव्य–धारा में नहीं। नवगीत ने छायावाद से भी अधिक लोकप्रियता अर्जित की क्योंकि इसकी अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक चमकीले, ताजे और मोहक बिम्बों से भरी हुई है।

सन् '75 के बाद नवगीत में जो शिथिलता आई उसके कई कारण हुए। प्रगतिवादी उभार ने छायावाद के ऐश्वर्य को कम कर दिया था। इस प्रकार देश की अस्त–व्यस्त राजनीतिक–सामाजिक दशा ने नवगीत के इन्द्रलोक को शिथिल करने का काम किया। नवगीत अब समय की मांग और यथार्थ से जुड़ गया था। इसलिए जनता का झुकाव फिर इस ओर बढ़ने लगा और समय के ताप को पूरी तरह नवगीत ने पहचाना। अभिजात–बोध उसके स्वभाव में शुरू से शामिल था। इसलिए अपनी अभिव्यक्ति को बदल कर वह अपनी लीक पर ही चलता रहा। फलस्वरूप उसमें मैनरिज्म भी आया और जब सड़कों पर निकल आने की जरूरत हुई, नवगीत अपनी चारदीवारी से निकल भी आया।

मुझको यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि नवगीत को उसके अपने कुछ नवगीतकारों से ही अहित हुआ है। जब विधा की पहचान पकड़कर उसके विकास का इतिहास लिखा जाना चाहिए था, तब उसके उत्स को लेकर ही विवाद होता रहा। छायावाद के कवियों ने स्वयं अपने ऊपर और अपने समानधार्मा कवियों के ऊपर जितना लिखा, उस विधा को समझने के लिए वह पर्याप्त है, पर नवगीत में यह काम नहीं हुआ।

नवगीतकार एक दूसरे से आगे निकलने की होड़ में ही बेचैन रहे। उन्होंने विधा नहीं, अपने विकास के बारे में अधिक सोचा। नवगीतकार ने अपने बारे में लिखा ही नहीं, अपनी रचना–प्रक्रिया को भी कम स्पष्ट किया। नवगीत का कोई विकास–क्रम या सुस्पष्ट इतिहास लेखन नहीं हुआ। इसलिए एक पाठकीय अभिरुचि बनने में कठिनाई हुई। छोटे–छोटे मतभेदों के कारण इसकी एक स्वस्थ संगठनात्मक छवि नहीं उभरी। विवादों के व्यूह में इस विधा को अधिक क्षति उठानी पड़ी। अन्यथा क्या कारण था कि इतनी सशक्त और जीवन्त विधा जो आज भी लिखी जा रही है, का असमय इतना बिखराव हो जाता ? जिस नवगीत ने सुखद भावों को जगाने, मोहक बिम्बों को उकेरने, सुप्त स्मृतियों को सहलाने का काम इतनी तन्मयता से किया, जनता के सामने नये, ताजा गीत के रूप में आने का अधिकार प्राप्त कर लिया, वह अगर बाद के वर्षों में पूरी सघनता से नहीं आ पाया तो क्या मान लिया जाय कि वह आने योग्य नहीं रहा ? यदि ऐसा होता तो आज जो नवगीत लिखे जा रहे हैं, नवगीत–संकलन आ रहे हैं, पाठकों के मन में इसकी गूंज फिर सुनाई पड़ने लगी है, तो ऐसी घटनायें नहीं होतीं। जीवन कितना भी कठिन हो जाए, मगर कोमलता का पूरा निर्वासन नहीं होता। राग को जीवन में आंजना ही पड़ता है। यदि इतने भर के लिए भी नवगीत याद किया जाए तो पूरा का पूरा नवगीत बच जाएगा और अलिखित होकर भी उसका इतिहास अपना दाय मांगेगा। अपना वर्चस्व सिद्ध करने के लिए शम्भुनाथ सिंह के 'दशक' और राजेन्द्र प्रसाद सिंह के 'सप्तदशक' भले प्रकाशित हो गए हों, पर आज तक नवगीत का एक जायज 'एन्थोलोजी' प्रकाशित नहीं हो सका। यह विधा की कमी या कमजोरी नहीं, अपितु विधा से अधिकाधिक अपेक्षा करने वाले विधायकों के षड्यंत्रों के कारण ऐसा हुआ। यह अधूरा काम आज भी हो सकता है। अन्यथा 'आंख मूंदकर जगी रात' में उभरेगी 'सुबह रक्तपलाश की' और 'टूटती परछाईं' के वृत्त में फिर 'टूटेंगे जल बिम्ब।' कितना भी डालें 'बीज बंजर में' या 'फेंके जाल मछेरे' 'गूंजे महुवा महावर' के गीत, 'लौट–लौट आये सगुन पांखी', बनती रहें 'खबरें आमदकद' फिर भी मन सालता रहेगा कि कब उतरेगा 'गीत विहग' और 'कोई तो हो हरसिंगार।'

समय की रचनात्मक जरूरत के कारण मैं अभिव्यक्ति में जन–जीवन की लोक–संवेदना को कभी भूल नहीं पाई। सच्चाई तो यह है कि

सिद्धांत–कथन गीत या कविता होने की क्षमता नहीं रखते। अनुभूति की संवेदना गीत को अन्तस्तल तक पहुंचाती है और विचार उसको ठोस सामाजिक आधार देते हैं। नवगीत में भी सिद्धांत ने सिर उठाया था और इसमें मैनरिज्म बढ़ने का खतरा तभी पैदा हुआ था। कुछ नवगीतकारों ने अपनी रचनात्मकता को धारदार बनाते हुए उसकी सहजता की रक्षा करेन का काम किया था। मगर जैसा कि हर विधा के उत्तरार्द्ध के वर्षों में होता है, उसके गुण की अपेक्षा परिणाम इतने बढ़ जाते हैं कि लगता है रिकार्ड पर कोई सुई अटक गयी हो और बार–बार एक ही स्वर सुनाई पड़ने लगा हो। फिर भी रचनाओं की इस भीड़ में भी कुछ नवगीतकारों के गीत अभिव्यक्ति के चरम को छूते हैं। उन्हीं 'जेनुइन' नवगीतों के आधार पर इसका मूल्यांकन संभव है और वही 'जेनुइन' नवगीत इसके धरोहर भी हैं। लम्बे समय तक लिखे जाने वाले नवगीत के सृजन और समीक्षा पर उभरते सवालों के तर्कपूर्ण उत्तर दिये जाने की जरूरत है। अद्यतन काव्य–दिशाओं से साक्षात्कार कराने के लिए नवगीत की बड़ी भूमिका रही है। इस दृष्टि से इसका सर्वेक्षण, विश्लेषण और प्रतिनिधि हस्ताक्षरों के संदर्भ आज भी दिये जायें तो छायावाद के बाद नवगीत एक बड़ी काव्य–विधा के रूप में दिखेगा। कई नवगीतकारों की रचनाधर्मिता और वैशिष्ट्य आज भी लोकार्पित नहीं है। कई नवगीतकारों के संग्रह समय पर नहीं आये। इसलिए भी उसकी निरन्तरता को बाधा पहुंची। अपनी असावधानियों के चलते ही यह समय से पिछड़ा प्रतीक होने लगा। इसमें में भी मेरा मानना है कि वही नवगीत समय से पिछड़ा प्रतीत हुआ जिसकी रचनात्मकता में कोई कमी रही, वरना समय–संदर्भ के कारण संवेदायें चाहे लाख बदल जाती हों, कुछ संवेदनायें ऐसी भी होती हैं जो समय–संदर्भ के बदल जाने पर भी तरोताजा लगती हैं। प्रेम, ममता, दया, क्षमा, सहानुभूति, आत्मीयता, पारिवारिकता, सामाजिकता, एकजुटता आदि की भावनायें और संवेदनायें ऐसी ही हैं।

एक बात और भी है जो तत्कालीन समय का सच और नवगीत की समसामयिकता एवं प्रासंगिकता को रेखांकित करती है। वह यह कि 62 के बाद 75–80 तक कवि–सम्मेलनों के मंच पर नवगीत अधिक लोकप्रिय रहा। यह बात अलग है कि लोकप्रियता होना और समय के साथ होना अलग–अलग बातें भी हो सकती हैं, पर नवगीत अपनी अभिव्यक्ति की तीक्ष्णता और धार के कारण, वस्तु के साथ शिल्प के

मंजाव के कारण जनता के मन में रस–बस गया था। नवगीत के पहले ऐसा जन–समर्थन प्रगतिवाद को छोड़कर किसी कविता को नहीं मिला था क्योंकि नवगीत में जनता के मन और मस्तिष्क दोनों को झकझोरने के पर्याप्त कारण हैं।

'तप रहे कचनार' में संकलित अपने नवगीतों से वस्तु और शिल्प को उद्धृत करते दो चित्र उपस्थित करती हूँ –

"तुमको चाहा कितना–कितना
मैंने अपनी चाह में
सूरजमुखी खेत में झूमे
फसलें खड़ी गवाह में
रुकता नहीं प्यार–प्यार यह
नदी–झील–पर्वत सा
मीठा–मीठा लगे रात–दिन
शहद घुले शर्बत सा
लाज का गहना पहने तेरी
आँखें बसी निगाह में।"

तथा

"था तो अमलतास था ऋतु का प्यार
...रोकर सरल क्षणों में
मौसम की हवाओं सा
आहिस्ता सरकना
रोपकर मुख पर आंखों को
हिलते कास–वन में
हंसुली का चमकना
गीत के आखर–सरीखे तप रहे कचनार।"

सम्प्रति इतना ही।

■

गीत में बदलाव के संकेत

❑ डॉ० शान्ति सुमन

गीत विधा चिरन्तन है। आदिकाल से लेकर आज तक यह सतत् प्रवाहित है। कविता छन्दोबद्ध होकर, कभी निर्बंध होकर रची जाती रही। कभी उसके गुम होने का अंदेशा बढ़ा तो कभी उसकी वापसी का हल्ला हुआ, पर गीत प्रकृति की तरह मानव–जीवन के सरोकार में रहा और उसका यही अपनत्व जहाँ उसकी विजय है, वहीं उसके निरन्तर प्रवहमान होने के सबूत भी। अपने दीर्घ जीवन में गीत हरदम समकालीन होता रहा, कभी चुक गया हो ऐसा प्रमाण नहीं मिलता।

गीत के दीर्घायु होने का सबसे बड़ा कारण है उसका समयानुकूल होना। हर समय का अपना एक सच होता है और शायद इसलिये कि गीत समय के साथ चलता रहा है, अपने युगबोध के साथ इसमें परिवर्तन के संकेत समाहित होते रहे हैं। नहीं बदलने की हठधर्मिता यदि गीत में होती तो गीत या तो एकरस हो गया होता अथवा ऊब से भरकर अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गया रहता। यह शुभ लक्षण है कि समयानुसार गीत की प्रवृत्ति में बदलाव आया है और प्रत्येक समय के गीत अपनी एक सुनिश्चित पहचान बनाये हुए हैं। सनद रहे कि प्रारम्भ से ही गीत–रचना ने सांस्कृतिक प्रगति–यात्रा में योगदान किया है। हम स्पष्ट देखते हैं कि विद्यापति के भक्ति और श्रृंगारमूलक गीत, कबीर के वेदान्तपरक गीत, मीरा के श्रृंगारी वैराग्यजन्य गीत, तुलसी के विनय गीत, सूर के विप्रलम्भ श्रृंगार से ओतप्रोत गीत से लेकर भारतेन्दुकालीन नवजागरण से सम्बद्ध गीत और विद्वेदी युग के राष्ट्रीय गीत सब प्रवृत्ति की दृष्टि से भिन्न हैं। उनमें एकरसता नहीं है और नहीं आवृत्ति का दोष।

हिन्दी गीत में सबसे बड़ा विभाजक बिन्दु है छायावाद। कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से यह पुनर्गीत का काल था। फिर प्रगतिकालीन गीत भी बदलाव के सहज स्वीकृत संकेत लेकर आये। आधुनिक हिन्दी गीत काव्य का अद्यतन विकसित रूप है नवगीत। 1958 में राजेन्द्र प्रसाद सिंह के सम्पादन में प्रकाशित 'गीतांगिनी' के गीतों में उसका स्वरूप उभरकर सामने आयो। गीत रचना की अनिवार्य परिणति के रूप में नवगीत का आगमन हुआ था, इसलिये अपने पूर्व के गीतों से भिन्न इसके तेवर सामने आये। नवगीत की पुनर्नवता को एकमत से स्वीकार किया

गया। छठे दशक के पूर्व से ही गीत में ग्राम्य चेतना और लोक तत्त्वों के प्रयोग होने लगे थे। सातवें दशक में नगरीय द्वन्द्व गीतों में उभरकर आने लगे –

एक चाय की चुस्की एक कहकहा
अपना तो इतना सामान ही रहा

– उमाकांत मालवीय

एक गैस का चूल्हा अबतक नहीं खरीद सका
चढ़ती मँहगाई देती सपनों के पाँव थका
पूरी कभी नहीं पड़ती तनख्वाह महीने की

– नचिकेता

धूप में जब भी जले हैं पाँव
घर की याद आई

– माहेश्वर तिवारी

फूल, पत्ती, जड़, तना है
साँस पर कुहरा घना है
बेंत–वन की घाटियों में
बैठना–उठना मना है
जंगलों में सुख कहाँ अहसान दुखता है

– शान्ति सुमन

एक बार और जाल फेंक रे मछेरे
जाने किस मछली में बंधन की चाह हो

– बुद्धिनाथ मिश्र

कोई भी विधा कितनी भी प्रिय और जरूरी हो, दीर्घकालीन रचनानुभवों से गुजरते हुए वह कहीं न कहीं अपने यथार्थ को दुहराने लगती है। उसमें धीरे–धीरे मैनरिज्म आने लगता है और एक स्थिति उत्तरकाल में ऐसी आती है जब लगता है गीतकार कोरस लिख रहे हों। नवगीत के साथ अंततः ऐसा ही हुआ। वह मैनरिज्म का शिकार हो गया। एक ही नवगीतकार जैसे अपने भावों और संवेदनाओं को दुहराने लगे। शिल्प इतने सघन हो उठे कि अपनी समृद्धि में भी वे उबाऊ होने लगे। यही वह बिन्दु था जब सत्तरोत्तर के दशक में जनवादी गीत–रचना प्रारम्भ

हुई। किसान–मजदूरों के श्रम–संघर्षों को लिखते हुए गीतकारों ने व्यवस्था के चेहरे को बेनकाब किया। सत्ता के जोर जुल्म और पूँजीवादी अत्याचारों का खुलकर विरोध हुआ। गीतकारों ने सही समय पर सही निर्णय लिया। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं –

धूप में जब भी जले हैं पाँव सीना तन गया है
और आदमकद हमारा जिस्म लोहा बन गया है

– रमेश रंजक

अंधकार में कैद न होंगे
इन्कलाब के नये उजाले
हाथों की भाषा बोलेंगे
अब फौलादी सीनेवाले
बहुत चली, अब नहीं चलेगी
समझौतों की खींचातानी

– नचिकेता

काटने को जल–सतह पर जमी काई
चीरकर गहराइयों को
हम हवा का साथ देने निकल आईं
हैं सधे तैराक की मजबूत बाँहें,
पसलियाँ हम

– माहेश्वर तिवारी

कदम बढ़ेंगे गिर–गिर के उठेंगे
उठ–उठ के चलेंगे आ साथी
अब न सहेंगे, अब चुप न रहेंगे
सिर तान के चलेंगे आ साथी

– कांति मोहन

अपना तो घर गिरा
दरोगा के घर नये उठे
हाथ और मुँह के रिश्ते में
ऐसे रहे जुटे
सिर से पाँवों की दूरी

अब दिन–दिन होती छोटी
कहती नवकी भौजी मेरे गाँव की

– शान्ति सुमन

इस तरह गीत में जीवन की पीड़ा, त्रास, घुटन, अभाव, शोषण के साथ अमानवीयता के प्रति आक्रोश भी उभरकर आये। आर्थिक विषमता, निर्धनता की पीड़ा, आम आदमी के सरोकार – आठवें दशक से गीतों में व्यवस्था विरोध प्रारंभ हो गया। वहीं से और उसके बाद के दशक में जन सांस्कृतिक चेतना का विकास हुआ। इसके साथ ही मानवीय अस्मिता का प्रतिबिम्ब भी गीतों में खुलकर आया। कहा जा सकता है कि छायावादी, प्रगतिवादी और नई कविता के गीत विभिन्न कालावधियां में लिखे गये, परन्तु नवगीत एक ऐसा गीतकाल है जिसमें ये तीनों प्रवृत्तियाँ समाहित हैं। ऐसा ही है इसलिये नवगीत के कोख से जनबोधी गीत आये और फिर स्वतंत्र रूप से जनवादी गीतों का उदय हुआ। नवगीत तीन–तीन रचना–युगों को अपने साथ लेकर आया था। अपने मूल रूप में नवगीत मध्यवर्गीय भावानुभूतियों का प्रस्तोता रहा, परन्तु सत्तर का दशक आते–आते वह विभिन्न रचनात्मक द्वन्द्वों से घिर गया। अपने समय की परिस्थितियों के दबाव के कारण वह विभिन्न मुद्राएँ धारण करता रहा, पर उसका गीत तत्त्व कहीं बाधित नहीं हुआ। गीत, नवगीत, जनगीत की विभिन्न धाराओं से बहता हुआ गीत पुनर्गीत होता चला आ रहा है।

किसान आन्दोलन, नक्सलवाड़ी आन्दोलन का प्रभाव गीतों में ऐतिहासिक भूमिका रखता है। कविता में जहाँ इतने बदलाव नहीं आये, गीत अपने कोमल मर्म के कारण काल सापेक्ष होता रहा है। प्रगतिकाल के कलाहीन गीतों से मुक्त होता हुआ नवगीत अपने सघन शिल्प के कारण अधिक पहचान बना सका। नवगीत को कलात्मक गीत विधा के रूप में प्रतिष्ठित होने का श्रेय प्राप्त है। श्रेय की इसी उपलिब्ध से आतंकित नयी कविता के कितने ही कवियें के सिंहासन हिलने लगे थे और शीघ्रता में उन्होंने गीत का विरोध करना शुरू कर दिया। उन विरोधियों में वैसे भी रचनाकार थे जो कितने ही समृद्ध गीतों के रचयिता भी थे और स्वयं अपनी पहचान मिटा रहे थे, अपना बिम्ब तोड़ रहे थे। अज्ञेय, केदारनाथ सिंह जैसे कितने ही गीतकारों के नाम इस संदर्भ में उल्लेख्य हैं।

नवगीत ने मध्यवर्गीय त्रासदियों को अधिक लिखा। इसके साथ ही इसमें मानवीय सुख–दुख, हर्ष–विषाद, आशा–निराशा के विविध यथार्थ चित्र भी आये। उदाहरणस्वरूप कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं –

लाख जतन जानकर किये
पाँवों के रुख पलटें कैसे
इतने दिन साथ हम जिये

– राजेन्द्र प्रसाद सिंह

भावलोक गीत में पूरी निष्ठा से व्यक्त हुए। नवगीत और जनवादी गीत दोनों में ही घर–परिवार और आंचलिकता के स्वर मुखरित हुए पर जनवादी गीतों के घर–परिवार संघर्षशील श्रमजीवी जनता के घर–परिवार हैं। इनमें सामंजी पूँजीवादी विलास नहीं, दमनकारी व्यवस्था के विरूद्ध आग जलती है। नई कविता की जो दुर्बलतायें थीं, इन गीतकारों ने उनसे बचने की चेष्टा की। नवगीत की यह देन है कि उसमें जीवन जीवन की तरह, प्रेम प्रेम की तरह और संघर्ष संघर्ष की तरह व्यक्त हुए। जनवादी गीतों में श्रमजीवी संघर्षरत जनों के सम्बन्धों को खूब लियाा गया। प्रगतिवादी गीतों की तरह जनवादी गीत्तों में कलात्मकता का ह्रास नहीं है, अपितु कलात्मकता और अधिक विश्वसनीय रूप में प्रस्तुत हुई है –

पानी काटता है जिस तरह पत्थर
काट दूँगा वह अँधेरा
जो कि बरसों से पड़ा है जहन के भीतर
हर घड़ी, हर दिन, थकन के पार
तेज करता हूँ निरन्तर रोशनी की धार

– रमेश रंजक

धूप निकली, कली चटकी
चल पड़ी हर साँस अँटकी
लगी घर–दीवार पर फिर
चाह की छवियाँ उभरने

– नचिकेता

हम सब बनकर आम अमोला
भरा करेंगे खाली झोला

टँगे रहेंगे आसमान में जब खजूर के बेटे

– माहेश्वर तिवारी

मुड़े हुए नाखून ईख सी गांठदार उंगली
टूटी बेंट जंग से लथपथ खुरपी सी पसली
बलुआही मिट्टी पहने केसर का बाग जला
कथरी ओढ़े तालमखाने चुनती शकुन्तला

– शान्ति सुमन

नवगीत ने दफ्तर की कुर्सियों और दफ्तर की सीढ़ियों की थकन को अधिक देखा था। उसने रोजमर्रे की भाग–दौड़ के बीच कहीं एक सुगंध सना रूमाल या कमल की पंखुड़ी को छुपाकर रख लिया था। जनवादीं गीत में क्रांति के स्वर अधिक मुखर हुए और विरोध और विद्रोह के बीच व्यवस्था–परिवर्तन की बातें हुईं। दोनों ही प्रकार के गीतों में सकारात्मक तत्त्व अधिक हैं। ये गीत गीतकार को सामान्य जन से जोड़ते हैं। गीत में निहित लय, बिम्ब, शब्द–गठन पाठकों को आत्मीय संस्पर्श देते हैं।

जनवादी गीतों को शैलेन्द्र और पाश आदि के गीतों से अधिक बल मिला। इससे इन गीतों में संघर्षजीवी जनसमूह – किसान, मजदूर तथा निम्न वर्ग की समाजार्थिक और राजनीतिक चेतना व्यक्त हुई है। जनवादी गीतों ने सामाजिक संघर्ष को जन–जीवन से जोड़ा। इन पंक्तियों ने जन–संघर्ष और मुक्ति युद्ध को और तेज किया –

हम लड़ेंगे साथी,
उदास मौसम के लिये
हम लड़ेंगे साथी,
गुलाम इच्छाओं के लिए
हम चुनेंगे साथी,
जिन्दगी के टुकड़े

– पाश

छायावाद ने नवीन शिल्प और नये छंदों से कविता की एकरसता को तोड़ा था, नवगीत ने अकलात्मक गीतों के प्रति अपनी असहमति प्रकट करते हुए नयी रचना–शक्ति का परिचय दिया। जनवादी गीतों ने उससे भी आगे जाकर अंतर्राष्ट्रीय मानवतावाद का परिचय दिया। अपनी

धर्मनिरपेक्ष छवि का परिचय देते हुए मनुष्य की विशेषकर शोषित–पीड़ित और दलित जन की मुक्ति के लिये गीतों को हथियार के रूप में प्रयुक्त किया।

गीतों के हर ठहराव और नयी शुरूआत के समय गीतकारों को सोचने की जरूरत महसूस हुई थी। आज भी इस बात को समझने की जरूरत है कि गीत अपने इतिहास को तो नहीं दुहरा रहा है ? यह एक कठिन समय है। यह गीतकारों के लिये पुनः आत्मपरीक्षण का सहय हो सकता है। पूर्व की अपेक्षा आज शब्द अधिक सक्रिय हुए हैं। इसलिये गीत को अत्याधुनिक रूप में ढालने और सामाजिक सरोकार के लिये गीतकारों का जनपक्ष में आत्म साक्षात्कार जरूरी है। उदारीकरण और विश्व–बाजारवाद ने आज नई परिस्थिति उत्पन्न कर दी है। जीवन के हर क्षेत्र में सरलीकरण आया है, यहाँ तक कि भाषा के स्वरूप में भी। जरूरी है कि गीतकार बार–बार अपने अनुभवों में प्रवेश करें।

छायावाद के उत्तरकाल में निराला भक्तिपरक पद लिखने लगे थे, पंत अपने को दुहराने लगे थे और महादेवी रहस्य के अंतर्लोक में लीन होती चली गई थीं। नवगीत के उत्तरकाल में भी ऐसा ही कुछ हुआ। भक्ति और वैराग्य तो नहीं लिखे गये, पर गीतों में सब कुछ को समेट लेने का अधैर्य इतना बढ़ गया कि गीत अपने स्वभाव से ही गिरने लगा था। जनवादी गीतकार इन अन्तर्विरोधों से बचे हैं। वे अपने अनुभवों के अतल में गये हैं और स्वाभाविक सृजन–प्रक्रिया से गुजरे हैं। जनवादी गीतकार की पहचान इसलिये अपने समय, समाज और वर्ग के जरूरी सवालों से जुड़नेवाले जुझारू मित्र के रूप में है। वह अपने संवेदनशील समाज की आँख और हृदय है। वह अपने समाज के यथार्थ के ताप को अनुभव करने वाला जागरूक पहरूआ भी है। ये गीतकार दुनिया में श्रमजीवी संघर्षरत जन के लिए लड़ने की आग जलाये रखते हैं। यहीं से उनके गीतों में प्रामाणिक ऊर्जा आई है। सहज मानवीय करुणा के अभाव को गीतकार आज सामान्य जन की पीड़ा लिखकर पाट रहे हैं। गीतों ने लेखन को निष्करुण होने से बचाया है। राग और प्रीतितत्व गीतों में ही बचे हुए हैं। निष्करुण होते हुए समाज को गीतों से ही बचाया जा सकता है।

मैंने एक स्थान पर लिखा था जिसको आज भी लिखना जरूरी लगता है कि "समाज में सक्रिय परिवर्तनकामी शक्तियों के साथ गीतों

के जुड़ने की बात जब होती है तो कविता के इतिहास के पिछले पन्ने को भी पलटने की बात सामने आती है। गीतों में प्रगतिवाद का पुनरागमन हो और उसका वही परिणाम भी हो तो यही अच्छा है कि गीत अपनी बुनियादी विरासत से जुड़ा रहकर अपने सामाजिक और सामयिक सरोकारों को अधिक तेज करे और आवश्यक होने पर समय का अतिक्रमण भी कर जाये। जानलेवा व्यवस्था का मर्सिया पढ़ने से कोई फायदा नहीं। इसे बदलने की आकांक्षा रखनेवाली सक्रिय ऐतिहासिक शक्तियों का साथ देना ही उचित है।"[1]

अतएव आज के हिंसक समय में गीतों में ही सुरक्षित रह सकती है मनुष्यता और इस जटिल समय में जब आदमी को लोहा बना देने की साजिश जारी है, बूढ़े कुछ कहने से कतराते हैं और बच्चे हंसने से, युवा पीढ़ी के सपनों में जंगल उग आये हैं तो गीत ही हैं जो उनके जंगल को हरापन देंगे और उनकी संभावनाओं को भी तलाशेंगे। गीत इन तमाम स्थितियों पर आँखें टिकाये रहेंगे तो निश्चय ही इनमे फिर–फिर बदलाव के संकेत बनते रहेंगे।

पूर्व के गीतों में विशिष्ट अनुभवों को अधिक व्यक्त किया जाता था। जनवादी गीतों में अतिसाधारण अनुभवों तक गीतकार की दृष्टि जाती है। इसलिये जनवादी गीतों में श्रमजीवी वर्ग के दैनंदिन जीवन की पुनर्रचना की गई है। जनवादी गीत के श्रमजीवी, शोषित–दलित वर्ग के आँख–कान, पेट–पीठ और हृदय की गूँज से भरे हुए हैं। अधिकांश जनवादी गीतकारों ने अपनी मध्यवर्गीयता का अतिक्रमण कर मेहनतकश जनता की वास्तविक जीवन–शैली और संघर्षों के अनुरूप अपनी संवेदना और विचारों का गठन किया है। इससे जनवादी संघर्ष को एक नयी जमीन, एक नयी दिशा मिली है। इन गीतों में एक ओर शोषित–दलितों का संघर्ष है तो दूसरी ओर व्यवस्था के प्रतिगामी और विद्रूप चेहरे भी। उनके जीवन–संघर्षों को गीत में ढालने के लिये जनगीतकारों ने क्रांतिकारी अंतर्वस्तु के साथ लोकशिल्प, मुहावरे और धुनों को भी अपनाया है। इसलिये इन गीतों से शक्तिशाली जन–मानस से लैस जनसंगठन भी तैयार हुआ है। मैं मानती हूँ कि जब तक समाज में भूख,

1. **'गीत के संदर्भ में'** – शान्ति सुमन : **'संचेतना'** पूर्णांक 157, पृष्ठ 18 वर्ष 32 अंक–3

गरीबी और शोषण है, जब तक व्यवस्था के कुचक्र में जनता फँसी हुई है, जन–मुक्ति के प्रयास जारी रहेंगे। अपने समय, समाज के जरूरी सवालों से जनवादी गीत जुड़ते रहेंगे। विश्वराष्ट्रीयता श्रमजीवियों को एकजुट करने में सहायक होगी। जनता के द्वारा अपनी बात कहकर जनविरोधी गीत लिखने का अब समय नहीं रहा।

■

गीत के बारे में

❑ डॉ० शान्ति सुमन

आज इस बात को समझने की बड़ी जरूरत है कि यह समय गीतकारों के लिए आत्म साक्षात्कार का समय है। गीत को अत्याधुनिक साँचे में ढालने के लिये उनका सचिन्त रहना स्वाभाविक है, पर सचेत रहना उनके लिये आवश्यक है कि वे जीवनानुभवों को अभिव्यक्त करने की जगह गीतों को बुनियादी सरोकार से ही तो अलग नहीं करने लगे हैं। आज उदारीकरण और विश्व बाजारवाद के कारण जीवन के हर क्षेत्र में जो सरलीकरण आने लगा है, गीत का उससे प्रभावित होना आकस्मिक नहीं है। इसलिये गीतकारों को अपने अनुभवों में बार–बार प्रवेश करने की आवश्यकता है। ये वही अनुभव हैं जो उनके गीतों को सार्थकता देते हैं। उनके गीतों के रचना–लोक को अपेक्षित विस्तार भी देते हैं। इससे उनके गीतों के शिल्प पक्ष की भी रक्षा होती है।

गीतों में बहुत कुछ समेटने का जब अधैर्य होने लगता है और सब कुछ पर छन्द जोड़ लेने की जल्दबाजी होती है तो गीतों के चलताऊ होने का खतरा बढ़ जाता है। अंततः गीत पूरे फार्म के बावजूद अनुपस्थित होने लगता है। गीतकार जहाँ इन चीजों से बचते हैं, अपने अनुभवों के अतल में जाते हैं, स्वाभाविक सृजन–प्रक्रिया से गुजरते हैं, इनके गीतों में तभी प्रामाणिक ऊर्जा आ पाती है। अन्यथा केवल फार्म के द्वारा कविता से गीत का अलग होना कोई मायने नहीं रखता।

बड़ी तेजी से गद्यात्मक हो रहे युगबोध को गीतों में उतारने के क्षण गीतकार यदि सहज न रहे तो गीतों का चरित्र बदल जा सकता है। सहज मानवीय करुणा का अभाव जिस तरह समाज और जीवन में हो रहा है, गीत के राग तत्त्व और उसकी लयात्मकता से इस स्थिति को पाटा जा सकता है। मैं कहना चाहती हूँ कि सहज मानवीय करुणा के अभाव को ढँकने की कोशिश में गीत का स्वर आरोपित नहीं होना चाहिये। यदि यह स्वर आरोपित नहीं हो तो गीत आज भी जीवन की सत्ता को जीवन्त करने का एक सशक्त माध्यम है। इस तरह के गीतों के सृजन से निष्करुण लेखन से बचा भी जा सकता है।

समाज में सक्रिय परिवर्तनशाली शक्तियों के साथ गीतों के जुड़ने

की बात जब होती है तो कविता के इतिहास के पिछले पन्ने को भी पलटने की बात सामने आती है। गीतों में प्रगतिवाद का पुनरागमन हो और उसका वही परिणाम भी हो, तो यही अच्छा है कि गीत अपनी बुनियादी विरासत से जुड़ा रहकर अपने सामाजिक और सामयिक सरोकारों को अधिक तेज करे और आवश्यक होने पर समय का अतिक्रमण भी कर जाए। जानलेवा व्यवस्था का मर्शिया पढ़ते रहने से कोई फायदा नहीं। इसे बदलने की आकांक्षा रखनेवाली सक्रिय ऐतिहासिक शक्तियों का साथ देना ही उचित है। पिछले दिनों में गीतों ने जो असंतोष व्यक्त करने का काम किया, उसको बन्द होना चाहिये। आज गीतों को अभिव्यक्ति के लिए वृहत्तर भूमिका चुनने की आवश्यकता है। केदार और नागार्जुन की कविता ही नहीं, उनके गीत भी अपनी ऊर्जा के कारण हमारे लिये प्रासंगिक हैं। उन गीतों का सामाजिक सरोकार और युग सत्य का अवलोकन ही उन गीतकारों को आज भी प्रासंगिक बनाये हुए हैं। प्रगतिवाद में भी एक तरह की भावुकता थी। सपना देखने की अपनी एक अलग जिद थी। आज के गीतों को उस भावुकता और उस जिद से भी बचने की जरूरत हो सकती है। व्यवस्था कहाँ–कहाँ हमें काट रही है, कैसे–कैसे दिखे–अनदिखे तरीकों से हमारा अहित करती है, इसकी समझ रखकर ही गीतों को विरोध और विद्रोह की मुद्रा अपनाना चाहिये।

एक दुखती हुई स्थिति यह है कि जब–तब गीतों को निरस्त करने के प्रयत्न होते रहे हैं। विशेषकर नवगीत–आन्दोलन के साथ तो यह विडम्बना जुड़ी ही रही। यह बात और है कि गीत/नवगीत कभी निरस्त नहीं हुआ। कविता की तरह उसकी कभी वापसी नहीं हुई क्योंकि गीत कहीं गया ही नहीं। वह सदैव समाज और जीवन–जन्म से मरण, संगठन से चुनाव, विरोध से परिवर्तन, क्रांति से शान्ति – सभी मोर्चों पर उपस्थित रहा। घर से बाजार तक, गली से चौराहे तक यहाँ तक कि अनहद नाद तक सबको घेरे रहा। वैयक्तिक समझ के साथ जन–जीवन की सामयिक परिकल्पना, जनचेतना के साथ उसका लोकरंग भी अत्यंत प्रदीप्त रहा। कारगर भाषा, लोकसंबद्ध लय–छन्द, वैचारिकता को मानसिकता में बदलने की तकनीक, अनुभव की निश्छल सामाजिकता इधर के गीतों की अनन्य विशेषताएँ हैं। इन विशेषताओं को जुगाकर ही गीत अपनी सत्ता को विशेष रूप से उद्घाटित करता रह सकता है।

इस कठिन समय में, मेरा मतलब है कि इस चुनौती भरे समय में जब मर्यादा और अनुशासन आडम्बर बन गये हों, संस्कृति धीरे–धीरे विदा ले रही हो, विचार बनने के पहले ही समाप्त हो रहे हों, गीतों में ही हमारा अस्तित्व सुरक्षित रह सकता है। गीतों में ही सुरक्षित रहती है मनुष्यता। माँ के हाथों से सँवारे गये बच्चों की तरह ही स्वस्थ्य–सुन्दर दीख सकता है गीत जहाँ हम अपनी धमनियों की आवाज सुनते रह सकते हैं। सारे बौद्धिक हथियार जहाँ निस्पन्द हो जाते हैं, गीत हमें सचेत और सतर्क करता रहता है। जनसंघर्षों के साथ ताल में ताल मिलाकर गीत ही चलता है। मानव मुक्ति का सबसे महामंत्र है गीत। मोहभंग के बाद जो शब्द टूटते नहीं हैं, गीत बन जाते हैं। सही जमीन की तलाश में जो स्वर निकलते हैं, वे गीत बन जाते हैं। अपने हाथों और पाँवों पर जिन छन्दों को भरोसा होता है, वे गीत बन जाते हैं। समय की माँग और लोकतंत्र के नाम पर जो लय फिसलती नहीं, गीत बन जाती है।

जनसंस्कृति के परिष्कार और उसके पुनर्निर्माण आज गीतों की सबसे बड़ी जिम्मेदारी है। शब्दों को आज अधिक सक्रिय होने की जरूरत है। इतने खुरदुरे यथार्थ जिनमें रचनात्मकता की इतनी संभावना हो, पहले कभी नहीं दीखे। आज समय जितना सपाट दिखता है, उतना ही बेचैन भी। समय का यह अंतर्विरोध पहले कभी इस तीखे रूप में प्रकट नहीं हुआ। इसलिये इस समय में गीतों के लिये काफी उर्वरा शक्ति भरी है। वर्तमान सामाजिक–राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था ने और चाहे जितना क्षत–विक्षत किया, पारिवारिक और व्यक्तिगत सम्बन्धों का भी इसने कम नुकसान नहीं किया। ये ठहरे हुए सम्बन्ध, काठ जैसे सपने पहले आये भी तो इतने विदीर्ण करनेवाले नहीं थे। गीत इन सम्बन्धों और सपनों को भी नये सिरे से रच सकता है और रच रहा भी है। गीत की उपलब्धियों और संभावनाओं पर तभी विमर्श होते रहते हैं।

साठ दशक के गीत जिन्हें हम नवगीत कहते हैं उस पर प्रामाणिकता की मुहर लगानेवालों में राजेन्द्र प्रसाद सिंह, शंभुनाथ सिंह, उमाकांत मालवीय, ओमप्रभाकर, माहेश्वर तिवारी, शान्ति सुमन, उमाशंकर तिवारी, श्रीकृष्ण तिवारी, अनूप अशेष, किशन सरोज, बुद्धिनाथ मिश्र आदि के नाम वरेण्य हैं। नवगीत से होता हुआ गीत जब अगले सोपान पर पहुंचता है तब उसका नाम जनवादी गीत हो जाता है। नव और

जनवादी विशेषण लगने के बाद वह मूल रूप में गीत रहता है। जनवादी गीतकारों में रमेश रंजक, शान्ति सुमन, नचिकेता, अश्वघोष, महेन्द्र नेह, मोहदत्त, रामकुमार कृषक और विशेष रूप से शलम श्रीराम सिंह के नाम उल्लेखनीय हैं। इन गीतकारों ने गीतों का एक मुकम्मल इतिहास रचा है।

इस जटिल समय में जब आदमी को लोहा बना देने की साजिश जारी है, बूढ़े कुछ कहने से कतराते है और बच्चे हँसने से और युवापीढ़ी के सपनों में जंगल उग आये हैं और कोई शातिर हाथ जब इन जंगलों को भी काटता है तो इनसे खून निकलता है – गीत इन तमाम परिस्थितियों पर अपनी आँख टिकाये हुए है। आप मानेंगे कि जब शब्द विधाओं में कैद होकर अपनी जीभ गँवा रहे हों, गीत में – केवल गीत में वे अपनी जुबाँ खोलेंगे। वे बूढ़ों को कहने की हिम्मत देंगे, बच्चों को हँसने के ढेर सारे समय और युवा पीढ़ी के सपनों में जंगलों की जगह हरी–भरी क्यारियाँ लगायेंगे। गीत एक नया संसार रचेंगे जिसमें अपनत्व के ढेर सारे पर्व होंगे। आनेवाला समय चाहे जितना निष्करुण हो, गीत अपने प्रतिरोधों से जूझेगा, प्रेम से सबको मनाएगा और जीवित मनुष्यता का दस्तावेज बनेगा।

■

जनवादी रचना-कर्म

❑ डॉ० शान्ति सुमन

अपनी वैज्ञानिक जीवन–दृष्टि, सचेतन जनपक्षधरता और प्रगतिशील अन्तर्वस्तु की वजह से समकालीन जनवादी गीत–रचना एक सुनिश्चित आकार ग्रहण कर चुकी है। सर्वसम्मति से यह बात लगभग सिद्ध हो चुकी है कि साहित्य और जन–साधारण के बीच सीधा संवाद कायम करने की दिशा में नाटक और गीत सर्वाधिक कारगर साहित्यिक माध्यम हैं। अधिकांश आलोचकों का ख्याल है कि समकालीन जनवादी गीतों को संघर्षधर्मी जन–चेतना के निर्माण में हथियार की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है और विभिन्न इलाकों में चल रहे जन–संघर्षों को गतिशीलता प्रदान करने की खातिर उनका मुकम्मल नारे के रूप में व्यवहार किया जाना चाहिए। इस सकारात्मक स्वीकृति के बावजूद समकालीन जनवादी गीतों को आलोचकीय तटस्थता का संत्रास भी झेलना पड़ रहा है। प्रायः जनवादी आलोचक भी जब कभी समकालीन कविता के स्वरूप और संभावना की जांच–पड़ताल या विश्लेषण–अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं, तो या तो गीत–रचना को नितांत सहूलियत से नजरअंदाज कर देते हैं अथवा बिल्कुल दयाभाव से उसकी महज याद भर कर लेते हैं। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। वस्तुतः इस परिघटना में साहित्य और सामान्य जन के बीच अलगाव की भ्रामक अवधारणा रखने वाली पूंजीवादी और निम्न पूंजीवादी मनोवृत्ति का प्रेत सिर पर चढ़कर बोल रहा होता है। इस विडम्बनापूर्ण परिस्थिति में जनवादी गीत–रचना एक सप्राण और विकासशील रचना–दृष्टि के रूप में निरन्तर विकसित हो रही है।

जनवादी गीत–रचना की रचना–प्रक्रिया काफी जटिल और दुहरी होती है। यहाँ भावों की गहराई, अनुभूति की सघनता और आकार में संक्षिप्तता पर विशेष बल दिया जाता है। क्रान्तिकारी वैचारिक अन्तर्वस्तु को लोकप्रिय और सहज प्रभावी अन्तर्वस्तु से अन्तर्ग्रथित करना पड़ता है। मगर कभी–कभी इस रचनात्मक द्वन्द्व को रचनाकारों द्वारा बड़े ही सरलीकृत ढ़ंग से ग्रहण किया जाता है। नतीजतन रचनाएँ अमूमन सपाटबयानी और वक्तव्यबाजी का शिकार होकर रचनाकारों की राजनीतिक अवधारणाओं का संवेदनाशून्य दस्तावेज बनकर रह जाती है

अथवा वैचारिक अन्तर्वस्तु की रिक्तता को ढँकने के लिए कला और शिल्प पर अधिक केन्द्रित होने के कारण रूपवाद की गिरफ्त में फँस जाती है। निर्विवाद है कि कला का सामूहिक संसार यथार्थ सामाजिक जीवन के सामूहिक संसार द्वारा पोषित होता है। इन्हीं कारणों से उनका निर्माण उन उपकरणों से होता है जो अपनी गठन तथा संवेगात्मक संबंध सामाजिक प्रयोगों से प्राप्त करते हैं। किन्तु समाज से कट जाने पर आत्मलीन एकाकी रचनाकारों के पास इसके सिवाय और कोई चारा नहीं रह जाता कि वे अपनी आन्तरिक और वैचारिक रिक्तता को ढँकने के निमित्त का और शिल्प पर अपना सारा ध्यान केन्द्रित करें। इस कलावाद और रूपवाद की उत्पत्ति तभी होती है, जब रचनाकार उस सामाजिक जीवन से अपने को पूरी तरह से काट लेता है जो साहित्य–सृजन का नियामक तत्व और कला की बीज–वस्तुओं का प्रधान स्रोत है। चूँकि कला सामाजिक संसार में ही अपना अस्तित्व रखती है, इसलिए गीत का निर्माण मात्र ध्वनियों और शब्दों के द्वारा कतई संभव नहीं है। इसका निर्माण एक व्यवस्थित शब्द–भण्डार से चुने गये शब्दों और समाज द्वारा स्वीकृत स्वर–ग्राम से निःसृत अर्थयुक्त ध्वनियों की अनुगूंज से होता है। ये सारी वस्तुएँ सामाजिक, संवेगात्मक और भावात्मक सम्बन्धों से युक्त होती हैं। कहने का तात्पर्य है कि सही जनवादी गीत की रचना तभी संभव है, जब युगानुरूप संघर्षशील क्रांतिकारी वैचारिक अन्तर्वस्तु के साथ रूप और शिल्प का सहज तादात्म्य हो।

साहित्य–सृजन की संपूर्ण प्रक्रिया और रचनाकार की समूची पीड़ा यथार्थ के साथ उसके हिंस्र संघर्ष में देखी जा सकती है ताकि इसके परिणामस्वरूप वह संसार की एक सही वस्तुगत तस्वीर गढ़ सके। इसीलिए तत्काल जनवादी गीत–रचना के सामने कई महत्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं। सत्य है कि समकालीन जनवादी गीत–रचनाओं में सामाजिक यथार्थ को अपने अनुगूंजात्मक प्रभाव से खण्ड–खण्ड रूप में व्यक्त किया जाता है। यह अलग बात है कि किसी एक रचनाकार की संपूर्ण गीत–यात्रा की अन्तर्यात्रा करके उसके सामाजिक जीवन–संघर्ष और उसके द्वारा निर्मित दुनिया का समग्र साक्षात्कार किया जा सकता है। किन्तु अब तक किसी एक ऐसे गीत की रचना संभव नहीं हुई है, जिसमें एक पूरे काल–खण्ड को उसके ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ में

परिप्रेक्ष्य में व्यक्त किया गया हो यह एक जोखिम भरी और श्रमसाध्य चुनौती है। इसीलिए बड़े ही अनुशासित और नियंत्रित होकर ही इस चुनौती को कबूल करने की आवश्यकता है।

सामाजिक संघर्ष के एक विशेष ऐतिहासिक काल–खण्ड में रचना–कर्म से सरोकार रखनेवाले समानधर्मा और समान विश्व–दृष्टिकोण से लैस रचनाकारों में तथ्यात्मक एकरूपता हो जाती है। ऐसी स्थिति में एक जागरूक रचनाकार की रचनात्मक शक्ति इस बात में निहित होती है कि वह जन–सामान्य के तात्कालिक सांस्कृतिक स्तर के अनुरूप अपनी स्वतंत्र काव्य–भाषा का निर्माण करे अन्यथा उसकी पहचान और अस्मिता सदैव खतरे में होगी। हम जानते हैं कि सजीव भाषा का निर्माण संघर्षशील मेहनतकश जनता अपनी आवश्यकताओं के तहत करती है और जनता की भाषा एक कच्चे माल की तरह होती है। एक सजग रचनाकार जनता की इस अनगढ़ भाषा को पहले आत्मसात् करता है फिर उसे तराशकर पुनः जनता को ही सौंप देता है। आज के जनवादी गीतकारों ने इस दिशा में ठोस पहल की है, जिसकी वजह से जनता और जनवादी गीत की भाषा में बहुत बड़ा अन्तराल नहीं है। फिर भी अलग–अलग गीतकारों की शब्द–योजना, बिम्ब–विधान और प्रतीक–संयोजन में काफी विविधता है और यही उनकी अलग–अलग पहचान की द्योतक है।

विचारों की अभिव्यक्ति जहाँ राजनीति तथा उससे मिलते–जुलते अन्य रूपों के द्वारा प्रत्यक्षतः अनुशासित होती है, वहाँ जनवादी गीत बिम्बों और प्रतीकों का आश्रय लेता है। बिम्बों के अभाव में गीत–रचना का अस्तित्व ही संकटग्रस्त हो सकता है। हाँ, बिम्ब अमूर्त्त कल्पना–लोक से नहीं, वरन् सीधे सामाजिक जीवन से प्राप्त किये जाते हैं। इसी कारण से जनवादी गीत की जीवन्तता और यथार्थपरकता अक्षुण्ण है। बिम्बों और प्रतीकों के स्थान पर महज राजनीतिक विचार एवं नुस्खे तथा जीव एवं प्राणवान जीवनानुभवों के स्थान पर केवल विचारों के आडम्बर से गीत–रचना मृत हो जाती है। इसलिए जरूरी है कि कला की मूलभूत चरित्र–संगति में ही राजनीति विचारधारा को ग्रहण किया जाय ताकि कला के साथ विचारों का संतुलन बरकरार रहे, क्योंकि जनवादी कला जीवन को ही अपना स्रोत मानती है और सीधे जीवन से प्राप्त अनुभवों और प्रेरणाओं को महत्त्व देती है। इसके लिये जीवन की भूमिकाओं में

गहरी पैठ की जरूरत है, न कि अमूर्त्त सामान्यीकरण की।

साहित्य का उद्देश्य खुद अपने को जानने में मनुष्यों की मदद करना, उनके आत्मविश्वास को दृढ़ बनाना, सत्यान्वेषण को सहारा देना, लोगों की अच्छाइयों को उद्घाटित करना और बुराइयों का उन्मूलन करना, लोगों के हृदय में हयादारी, गुस्सा और साहस पैदा करना, बड़े और दीर्घकालीन उद्देश्य के लिए शक्ति बटोरने में सहायता करना तथा सौंदर्य की पवित्र भावना से उनके जीवन को शुभ्र बनाना है। इसलिये साहित्य का कार्य केवल बदलते हुए मनुष्य को सूचना भर देना नहीं है, प्रत्युत उसका दायित्व उस संवेगात्मक क्रियाओं को चित्रित करने में है, जो मनुष्य के परिवर्तन को सूचित करें। अतः जनवादी गीत की सार्थकता मनुष्यों की संपूर्ण मूल्यवान व्यक्तिगत क्षमताओं को उभारते हुए मनुष्यों को प्राकृतिक शक्तियों पर विजय प्राप्त करके अपने जीवन को सुखी और सम्पन्न बनाने तथा अंततः संपूर्ण मानवता को एक मुकम्मल परिवार के रूप में देख सकने के स्वप्नों को साकार करने में मदद पहुंचाने में निहित है।

'मौसम हुआ कबीर' मेरे इसी उद्देश्य की पूर्ति की दिशा में एक लघु प्रयास है। इसमें संकलित गीत अमूनन वर्ष 1979 से 1984 के बीच रचे गये गीतों का प्रतिनिधित्व करते हैं। यद्यपि इनमें से अधिकांश विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं औंर जन–मंचों के माध्यम से प्रसारित होकर अपने पाठकों और श्रोताओं के भरपूर प्यार के हकदार हो चुके हैं। मगर ये एक जगह एकत्र होकर, अपनी समग्रता में, मेरी गीत–यात्रा के विभिन्न पड़ावों और विकास के सूचक हैं। अगर हमारे ये गीत अपने पाठकों और अध्येताओं को थोड़ी–सी भी राहत, ताकत और संतोष देने में सक्षम हुए तो मैं अपना श्रम और रचना–कर्म सार्थक मानूँगी।

■

शान्ति सुमन के गीतों में सामाजिक बदलाव की आकांक्षा है, जन-जागरण की चेतना है, जन-संघर्षों का वर्णन है और नए समाज के सपने भी हैं। इन सबमें अपने सामाजिक- राजनीतिक परिवेश के प्रति शान्ति सुमन की सजगता और जनपक्षधरता प्रकट है। उनकी दृष्टि जनता के मुक्ति-संघर्ष पर ही नहीं, उसके व्यापक जीवन-संघर्ष पर भी है। इसलिये उनके गीतों में ललकार और आह्वान से अधिक जन-जीवन के दुख-सुख, हर्ष-विषाद, विजय- पराजय के अनुभव हैं। उनमें जन-जीवन के यथार्थ और सपनों के चित्र उभरकर सामने आते हैं।

खुशी की बात है कि कई दूसरे गीतकारों की तरह शान्ति सुमन की संवेदनशीलता विचार धारा की आँच में सूख नहीं गई है, इसलिये उनके गीतों में विभिन्न मानवीय जन कठिन जीवन जीते हुए भी अपनी मानवीयता की रक्षा करता है। विचारधारा की सारी लड़ाई समाज को सचमुच मानवीय बनाने की ही लड़ाई है। इसलिये जन-जीवन में जीवित मानवीयता की रक्षा और उसके महत्त्व की पहचान कविता का दायित्व है।

शान्ति सुमन प्रायः समाज की वास्तविकताओं और जीवन के अनुभवों के बारे में बयान या व्याख्यान नहीं देतीं, वे चित्रों और संकेतों में अपनी बात कहती हैं। उनकी इस कला में बिम्बों, प्रतीकों और संकेतों के सहारे अर्थ का विस्तार होता है, लेकिन गीत सहजता की जमीन पर रहते हैं, क्योंकि बिम्ब, प्रतीक और संकेत जन-जीवन से आते हैं और उसी जीवन की भाषा तथा मुहावरों में रचे-बसे होते हैं।

- डॉ० मैनेजर पाण्डेय

Scanned by CamScanner

शिक्षा –

- एम० ए० (आधुनिक इतिहास), पी-एच०डी०, नेट (NET), रिसर्च एसोसिएट (यू० जी० सी०)
  पी-एच० डी० का विषय – The Famine of 1896-97 with special reference to Bihar
- रिसर्च एसोसिएटशिप का विषय – Hindi Poetry and Freedom Struggle : Resource Material

कृतियाँ –

1. सप्त स्वर – सह कविता संग्रह, 2002 2. उस दिन का इन्तजार, 2007 3. फूल गाछ की तरह (प्रकाश्य कविता संग्रह) The Famine of 1896-97 with special reference to Bihar-2004

लेखन –

विश्वविद्यालय और इसके बाहर की राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में कविता, कहानी, समीक्षा एवं साहित्यिक तथा ऐतिहासिक आलेखों का प्रकाशन। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के विभिन्न केन्द्रों से कविताओं का प्रसार

सम्पादन –

1. पठार की खुशबू (झारखण्ड की नारी कथाकारों की कहानियों का संग्रह) 2. आँख खोलती सुबह (जमशेदपुर के नवोदित कवियों की कविताओं के प्रकाशन में सम्पादन-सहयोग) 3. शान्ति सुमन की गीत-रचना : सौन्दर्य और शिल्प।

विशेष –

कविता, संगीत और लोक कलाओं में विशेष अभिरुचि।

सम्प्रति –

कोल्हान विश्वविद्यालय (झारखण्ड) के अंतर्गत जमशेदपुर वीमेन्स कॉलेज के इतिहास-विभाग में व्याख्याता, इग्नू में शिक्षण।

सम्पर्क –

द्वारा श्री अरविन्द, 36 आफीसर्स फ्लैट्स, जुबली रोड, नार्दर्न टाउन, जमशेदपुर-831001 (झारखण्ड)।
मो० – 08292675554

Scanned by CamScanner